# पुण्य

## धर्म की नींव

संकलन एवं अनुवाद

**भिक्खु कश्यप**

Puñña © 2023 by Bhikkhu Kashyap is licensed under
Attribution-NonCommercial-NoDerivatives 4.0 International.

CC BY-NC-ND 4.0

To view a copy of this license, visit: http://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/

ISBN: 978-93-94460-68-3

This book may be copied, shared or printed for non-commercial free distribution only, without permission from the author.

पुण्य कॉपीराइट © भिक्खु कश्यप २०२३

इस पुस्तक को कोई भी व्यक्ति मुफ़्त वितरण के लिए, लेखक की अनुमति के बिना, किसी भी संख्या में पूर्णतः या अंशतः प्रकाशित कर सकता है। इस पुस्तक का वाणिज्यिक उपयोग अनुचित है। इस पुस्तक में किसी तरह से शब्दों में संपादन या परिशोधन का अधिकार नहीं है। इस पुस्तक को अन्य पुस्तक में उद्धृत करने के लिए लेखक का नाम उल्लेख करना आवश्यक है। यदि आप इस पुस्तक को संशोधित करने या व्यावसायिक रूप से उपयोग करने की अनुमति प्राप्त करना चाहते हैं, तो कृपया लेखक से संपर्क करें।

सुझाव, प्रश्न अथवा टिप्पणी साझा करने के लिए संपर्क करें:

E-mail: kashyap.bhikkhu@gmail.com

।। सब्बदानं धम्मदानं जिनाति ।।

**आपके जैसे उदार दायकों के सहयोग से इस धार्मिक पुस्तिका का मुफ़्त वितरण संभव हो पाया है।**

**हम आपसे अनुरोध करते हैं कि इसे पढ़ें, और दूसरों तक पहुँचाने में अपना योगदान दें।**

Front Cover designed by DALL•E 3 by OpenAI (Artificial Intelligence)

Back Cover image by Fredrick Eankels (pexels.com)

“अभित्थरेथ कल्याणे, पापा चित्तं निवारये।
दन्धञ्हि करोतो पुञ्ञं, पापस्मिं रमती मनो।।”

«धम्मपद् पापवग्गो ११६»

अभी तुरन्त कल्याण करें,
पाप को चित्त से दूर करें।
पुण्य करने में जो देरी हो,
तो पाप में मन रम जाए।

# अध्याय सूची


परिचय........................................1

१. प्रमाद................................13

२. प्राथमिक अंतर्ज्ञान....................39

३. पुण्य.................................53

४. दान..................................71

५. शील.................................95

६. व्रत.................................107

७. भावना..............................133

८. अपार पुण्य.........................153

९. मरण................................161

आवाहन.....................................173

# परिचय

**पुण्य**! एक ऐसा शब्द, जिसे हम बचपन से सुनते चले आ रहे हैं। जिस पर दर्जनों पुस्तकें और सैकड़ों प्रवचन उपलब्ध हैं। शायद ही कोई पुण्य की संकल्पना से अनजान होगा। लेकिन कितने लोग वास्तव में जानते हैं कि इसका क्या अर्थ है? और क्यों इसे करना चाहिए?

कई लोग मानते हैं कि **वैतरणी नदी** को पार करने के लिए पुण्य की ज़रूरत होती है। यदि आपने उसके बारे में न सुना हो, तो एक उदार वर्णन ज़रूर सुन लें।

कहते हैं कि वैतरणी, मृत्युदेवता यमराज के द्वार पर बहने वाली, एक तिलिस्मी और भयानक नदी है। मरणोपरांत, यमदूत अथवा कोई दिव्य सत्व आकर सभी मृतकों को वैतरणी नदी तक पहुँचा देते हैं। आगे यमराज से मिलने और उससे फैसला सुनने के लिए, उन्हें इस नदी को पार करना पड़ता है। किंतु वैतरणी का शब्दार्थ ही है, 'जो पार नहीं होती!' अर्थात्, जिसे पार करना सरल नहीं है।

वह अंधकार में बहती, कोहरे से ढकी एक विराट नदी है, जो इस लोक और यमलोक के बीच स्थित है। उसके किनारे पर ही कई प्रकार के खतरनाक अवरोध[1] हैं। नदी का जल अत्यंत दुर्गंध करता, तेज़ाब जैसा, रक्त, पीब, और मलमूत्र से गाढ़ा हो चुका है। उसमें तैरती लाशें और कटे-फटे अंगों का अंबार लगा हुआ है। नदी की ऊपरी सतह विचित्र अग्नि से जलती रहती है। नदी के भीतर और बाहर कई प्रकार के भयानक जीव हमला करने के लिए बेताब रहते हैं। कई प्रकार के तिलिस्मी और भ्रामक रूप मृतकों को फँसाकर गुलाम बना लेते हैं।

यदि मृतक के जीवन में कुछ पुण्य हो, तो उसे वैतरणी पार करने में एक-एक पुण्य का बहुत उपयोग होता है। कालांतर में, एक चिड़चिड़ा नाविक आता है और भयभीत मृतकों को चप्पू से मारते-पीटते हुए छोटी-सी नाव में ठूंस-ठूंसकर भर देता है और नाव चला देता है। आगे का वर्णन जानना अच्छा नहीं है।

---

[1] भगवान बुद्ध द्वारा वैतरणी किनारे का वर्णन खुद्दकनिकाय के सुत्तनिपात ३:१० — कोकालिकसुत्त में मिलता है।

पुण्य के अभाव में, अनेक दुर्भाग्यशाली मृतक नाव तक में बैठने के हकदार नहीं होते हैं। मदद के लिए लंबी प्रतीक्षा करने के बाद, उन्हें अंततः स्वयं नदी में छलांग लगाकर तैरते हुए जाना पड़ता है। उनका वर्णन तो कभी न सुनें। पुण्यहीन मृतक यमद्वार से पहले ही नरक में पड़ जाते हैं।

पुण्यशालीयों को वैतरणी निर्मल और रमणीय दिखाई देती है। कोई दिव्य सत्व आकर उन्हें आकाश मार्ग से राजसी अंदाज में पार कराता है। अंततः पुण्यों के आधार पर ही मृतक यमद्वार तक पहुँचते हैं। आगे, यमराज उनकी पोल खोलकर उनके बिताए जीवन का परीक्षण करता है। सवाल-जवाब और फटकार-प्रशंसा के बाद कर्मों के आधार पर उनकी गति निर्धारित करता है। यमराज के फैसले के आधार पर उन्हें विभिन्न नर्कों में डाला जाता है या ऊपरी किसी लोक में भेजा जाता है।

हजारों वर्षों से आज भी देश-विदेश के करोड़ों लोग, केवल वैतरणी (पश्चिमी देशों के लिए Styx) नदी को पार करने के लिए ही बुढ़ापे में 'वैतरणीदान', 'गोदान' इत्यादि दानपुण्य करते हैं। उन लोगों के लिए पुण्य का उद्देश्य केवल मरणोपरांत यात्रा तक ही सीमित है।

पुण्य के लिए लोग कई कारणों से प्रेरित होते हैं। कुछ स्वर्गिक सुख की कामना में पुण्य करते हैं, तो कुछ मृत प्रियजनों से मिलने के लिए। कई तुरंत भोगसंपदा पाने के लिए, तो कोई परीक्षा या व्यवसाय में सफ़ल होने के लिए। कोई रोग या आपदा दूर करने के लिए, तो कोई नौकरी या छोकरी पाने के लिए। कोई नास्तिक इंसानियत के नाते करुणावश से, तो कोई अपनी मान-प्रतिष्ठा बचाने के लिए। कोई प्रसन्नता के मारे, तो कोई राहत और सुकून पाने के लिए। किसी को सामाजिक दबाव में पुण्य करना ही पड़ता है, तो कोई स्वयं प्रेरित होता है। बच्चा खुश हो तो औरों के साथ अपने खिलौने या खाजा बांटता है। कोई सतत पुण्य करता है, तो कोई ईद का चांद जैसे। कोई परहित में किए गए परोपकार को ही पुण्य मानते हैं, तो कोई आत्महित में किए परोपकार को।

कुल मिलाकर ऐसा कहा जा सकता है कि लोग दुःखी हो तो खुशियां पाने के लिए पुण्य करते हैं, और सुखी हो तो खुशियां बांटने के लिए। अर्थात्, खुशी ही पुण्य की मंज़िल है, और खुशियां बांटना ही पुण्यक्रिया। पुण्यक्रिया के नाम पर दुनिया के तमाम धर्म समुदाय 'दान एवं सेवा' तो जानते हैं, किंतु बुद्धों की नज़र में उतना अधूरा है।

पुण्य का सरल अर्थ है “भलाई”। उसकी परिभाषा में कहा जाता हैं, **“सन्तानं पुनाति विसोधेति!”** अर्थात्, अनन्त जन्म-जन्मांतरण के घूमते भवचक्र को धोकर स्वच्छ करने का पवित्र अवसर![2]

भगवान पुण्य को तीन क्रियाओं में वर्गीकृत करते हैं: **दान, शील और भावना**।

**दान** का धार्मिक अर्थ ‘त्याग’ है। अर्थात् अपने उपभोग को पराए के लिए त्याग देना। दान के ही साथ ‘संविभाग’ शब्द जुड़ा है। अर्थात्, अपने उपभोग का हिस्सा करके औरों के साथ बांटना। जो चित्त कंजूसी से मटमैला होकर संकुचित और भारी हो जाता है, वही त्याग से स्वच्छ धुलकर, विशाल और हल्का हो जाता है। हृदय पर एक जादुई टॉनिक-सा शीघ्र प्रभाव पड़ता है। स्वार्थ की कड़वी जीभ मिठास चखती है। और फ़लस्वरूप सुख, राहत एवं संतुष्टि का सहज अनुभव होता है। अहंकार ढहकर विनम्रता, मृदूता और मधुरता उसकी जगह लेती है। मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य में तत्काल सुधार होता है। आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की प्राप्ति होती है। उसी से जीवन में पुण्य की एक धमाकेदार शुरुआत होती है। दुनिया का बड़े से बड़ा भोगसुख भी निम्न त्यागसुख के आगे घुटने टेक देता है। तब सच्चे व्यक्ति को अंतर्बोध होता है कि ‘जीवन में अपनी किसी भी वस्तु को उपभोग करने का एक सुख है। लेकिन उसे स्वेच्छा से त्याग देने का सुख, हमेशा उससे कई गुना बड़ा होता है।[3]’

दान के साथ-साथ शील एवं भावना भी खुशियों के मंज़िल तक बढ़ते आवश्यक पुण्य-कदम हैं, जिनके अभाव में दुविधा हो सकती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति बहुत दान करता है, लेकिन अधार्मिक सोच रखता है या दुराचार करता है, तो संभव है कि वह अगले जन्म में ऐशोआराम में पलता कुत्ता या बिल्ली बन जाए। अर्थात्, सुख की राह में धर्म की सही जानकारी होना और सही दृष्टिकोण (सम्यकदृष्टि) होना अत्यावश्यक है।

पुण्य का अगला कदम **शील** भी त्याग का ही विस्तार है। भगवान उसे ‘महादान’ कहते हैं। उसमें ‘वेरमणि’ शब्द लगा होता है, यानि विरत रहना। कुछ अकरणीय कृत्य ऐसे होते हैं, जो पहले मज़ा देते हैं, फिर सज़ा देते हैं। उन्हें त्याग देना चाहिए। यदि शील

---

[2] पुण्य के पवित्र अवसर को मुखपृष्ठ पर ‘दिव्य कमलपुष्प’ से निरूपित किया गया है, जो भवचक्र में होते हुए भी एक तरह से बाहर ही है।

[3] भगवान के अनुसार, सोलह गुना।

का कठोर पालनकर्ता अपने 'व्रत' के प्रति अनजान हो, जैसे कि वह ज़रूरतमंद संबंधियों की यथाशक्ति 'तन मन धन' से मदद न करता हो, तो उसका शील अधूरा ही रहेगा, और पुण्य भी। धर्म में 'शील-व्रत' जुड़ा शब्द है, जो कर्तव्यता को दर्शाता है। अर्थात्, शील पालन कर आप किसी पर एहसान नहीं करते। बल्कि यह मानव का **कर्तव्य** है कि वह किसी का अहित न करे, कष्ट न दे। बल्कि उनकी मदद करें। अहितकर्ता पश्चात दण्डित होता है, जबकि हितकर्ता पुरस्कृत। यही सृष्टि की नियमितता है। यह नियम न किसी ईश्वर द्वारा रचा है, न किसी बुद्ध द्वारा अविष्कार किया है। समय के साथ तथाकथित ईश्वर बदल जाते हैं, बुद्ध बदल जाते हैं, ये दुनिया सिमट जाती है, और दूसरी दुनियाओं की उत्पत्ति होती है, किंतु धर्म की नियमितता सनातन बनी रहती है।

ब्रह्मांड की तमाम रचनाएँ **विज्ञान** (अर्थात्, चैतन्य या Consciousness) पर आधारित हैं, और सभी विज्ञान-आयाम में साथ जुड़ी हैं। कर्म उसकी मुद्रा है, सुख उसकी पूँजी, और दुःख उसका दण्ड! ब्रह्मांड में अणु-अणु तक सभी विज्ञान के नियमों के अंतर्गत होते हैं। जैसे ट्रैफिक नियम होते हैं। कोई चालक पालन न करे तो दूसरों को कष्ट होता है। भले ही दुर्घटना न घटे, तब भी पुलिस पीछे पड़ती है। लाइसेंस या गाड़ी जब्त कर दण्ड लगता है, या जेल भी हो सकती है। आपके विषम चलाने से पराए का नुकसान हो न हो, लेकिन आपका होता है।

उसी तरह **विषम** चलने से विज्ञान-आयाम में एक दुःख की लहर उत्पन्न होती है, जो आस-पास के जुड़े सत्वों को कष्ट पहुँचाती है। जो दुःख उत्पन्न करता है, वह अपने लिए दण्ड भी साथ उत्पन्न करता है। यमलोक की पुलिस पीछे पड़ती है। किसी भी क्षण सुख जब्त होकर भयंकर दण्ड लगता है, या जेलनुमा नर्क में भी डाला जाता है। दूसरी ओर, **सम** चलने से इसमें सुख की लहर उत्पन्न होती है, जो जुड़े सत्वों को राहत पहुँचाती है। जो सुख उत्पन्न करता है, वह अपने लिए पुरस्कार भी साथ उत्पन्न करता है, जो किसी भी समय छप्पर फाड़कर बरसता है। इसीलिए पुण्य को 'कमाई' जैसे देखना, प्रतीकात्मक रूप से नहीं, वरन वस्तुतः सत्य है।

और **भावना** का अर्थ है "हितकारक भावनाओं को बढ़ावा देना", जैसे कि सद्भावना, करुणा, शान्ति, एकाग्रता, अंतर्ज्ञान आदि। यदि कोई दानी हो और शीलव्रत का पालनकर्ता भी, किंतु 'भावना' न करता हो, तो संभव है उसे भविष्य में प्राप्त 'सुख ऐश्वर्य' मदहोश बनाकर उसकी दुर्गति करा दे। उदाहरणार्थ, जिन्हें कहते हैं, "अमीर बाप की बिगड़ी औलाद!" और जैसे कि हम अक्सर देखते हैं, विशेष रूप से शो बिजनेस से

जुड़े लोगों में, जो अपने पूर्व पुण्य के आधार पर महाधन एवं प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं, लेकिन वे इसे संभाल नहीं पाते हैं। जिनका दर्दनाक अन्त इसी जीवन में होते हुए दिखता है, तो परलोक की बात ही क्या!

किंतु भावना से दीर्घकाल (या अनंतकाल) की गारंटी मिलती है कि हमें भविष्य में ऐसा 'सुख ऐश्वर्य' प्राप्त होने पर भी समझदारी बनी रहेगी। ध्यान-साधना से प्राप्त होने वाला अंतर्ज्ञान (प्रज्ञा) हमारे अवचेतन मन में एक ऐसा तंत्र (इनबिल्ट मैकेनिज्म) विकसित कर देता है जो हमें भविष्य में भी सचेत रहने में मदद करते रहे, भले ही हम पूर्ण रूप से मदहोश हो जाएं। इस तरह दीर्घकालीन हित एवं सुख की प्राप्ति में 'दान, शील और भावना' तीनों ही अनिवार्य हैं। भगवान द्वारा बताई पुण्य की संकल्पना परिपूर्ण है, और सम्पूर्ण सुरक्षा प्रदान करती है।

हालांकि कुछ बौद्ध लोग, विशेषकर पश्चिमी देशों में, पुण्य करना हीन मानते हैं। उनका मानना है कि 'पुण्य का उद्देश्य केवल लाभ प्राप्त करना है, जो स्वार्थ और अहंकार को बढ़ाता है। जबकि परमार्थ मुक्ति-मोक्ष के लिए उच्चतम धर्मसाधना आवश्यक है, ताकि 'मैं-मेरे' का तादात्म्य भाव त्यागा जा सके।' क्योंकि वे अपने व्यस्त जीवन में समय की कमी महसूस करते हैं, इसलिए वे अपना अमूल्य समय 'हीनता' पर बर्बाद नहीं करना चाहते और सीधे उच्च अवस्थाओं तक पहुँचना चाहते हैं। जैसे कोई मूर्ख इमारत की ऊँची मंजिल पर जल्दी पहुँचने के लिए जमीन से छलांगे लगाए।

लेकिन, गहरी और मजबूत नींव के बिना, ऊँची से ऊँची इमारत भी डगमगाकर धराशाई हो सकती है। उसी तरह, ऊँची अवस्थाओं तक पहुँचने और उन पर स्थिर बने रहने के लिए एक मजबूत आधार होना आवश्यक है। एक पापी व्यक्ति को सीधे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। उसे पहले अपनी पापी-वृत्ति और अकुशल-स्वभाव का त्याग करना होगा, तथा उसकी जगह पर पुण्य और कुशलताओं को विकसित करना होगा। फिर, ऐसे पुण्य किए कुशल-व्यक्ति को अपने भीतर की मोह-मूढ़ता का त्याग करना होगा, तथा उसकी जगह पर अंतर्ज्ञान को विकसित करना होगा। तब ऐसे पुण्यशाली और अंतर्दृष्टिवान व्यक्ति का चित्त वाकई स्थिर होता है, एकाग्र होता है, और आर्यसत्य का दर्शन करता है। तब उसे विराग होता है और उसके विमुक्ति-विमोक्ष की संभावना खुलती है। जैसे कोई बुद्धिमान इमारत की ऊँची मंजिल पर पहुँचने के लिए धैर्यपूर्वक सीढ़ियों पर चढ़ते जाए।

पुण्य ही धर्म की नींव है। पुण्य ही सुख की इमारत है। पुण्य ही मुक्ति की सीढ़ी है। इस पुस्तक में आप जानेंगे कि वर्तमान जीवन में धर्म की नींव कैसे डाली जाती है। भविष्य के लिए सुख की इमारत कैसे खड़ी की जाती है। और त्रिकाल दुःखमुक्ति की सीढ़ी पर कैसे चढ़ा जाता है।

धर्म को लेकर आम लोगों में अनेक प्रासंगिक प्रश्न हैं, जो उनके दीर्घकालीन हित एवं सुख से संबन्धित होते हैं। किंतु जब मैं अन्य धर्मगुरुओं को उत्तर देते हुए सुनता हूँ, तो दया आती है। लगता है जैसे कोई अंधा, सांप को मारने के लिए आसपास की झाड़ी पर डंडे बरसा रहा हो। पता नही, डंडा सांप पर पड़ रहा है या नहीं। पता नहीं, सांप झाड़ी में है भी या नहीं। मरा तो मरा, वर्ना भाग जाएगा या दुबक जाएगा। उसी तरह निशाना चुका हुआ उत्तर सुनकर अनेक प्रश्नार्थी कन्धे उचका कर चले जाते हैं या भीड़ देखकर सहम जाते हैं।

और जब मैं धर्मगुरुओं को गंभीर मसले पर प्रवचन देते हुए देखता हूँ, तो लगता है जैसे किसी खेल में खोए नटखट बच्चे को अचानक होमवर्क पूछने पर वह इधर-उधर के बहाने और फ़ालतू कहानियां सुनाने लगा हो। उसी तरह वे जीवन से जुड़े असली मुद्दों की बात न कर इधर-उधर की गूढ़, रहस्यमयी एवं अबोध्य बातें करने लगते हैं।

और जब मैं अन्य धर्मग्रंथ पढ़ता हूँ, तो लगता है जैसे हाथों में कोई चिकनी मछली छटपटाते हुए फिसल रही हो। उसी तरह वे खूब सुंदर शब्दों में पुरातन किंतु अप्रासंगिक कथाएँ सुनाते हैं, आदर्शमयी किंतु अव्यवहारिक बातें करते हैं। ठीक-ठीक बताते नहीं हैं कि ऊँचे आदर्शों को वाकई जीवन में कैसे उतारें।

उसके विपरीत, भगवान बुद्ध द्वारा बताएँ धर्म को पढ़ने पर लगता है, मानो पलटी दुनिया घुमकर सीधी हो गई। जैसे अंधेरे में डूबे निराश घर में बिजली आने से रौनक लौट आयी। जैसे पुरानी रहस्यमयी पहेली सुलझ गई। जैसे रास्ता खोए भयभीत को मार्ग दिख गया। उसी तरह भगवान पेचीदा प्रश्नों पर भी ऐसा सीधा, स्पष्ट और सटीक उत्तर देते हैं, जैसे लगता है कि दुनिया का सर्वश्रेष्ठ योद्धा 'अखिलेस' आकर, झाड़ी में मात्र एक हल्का सरल वार कर, सांप का सीधा सिर कुचल दे। काम तमाम!

उसी तरह भगवान का धर्म इधर-उधर की निरर्थक बातें न कर, जीवन से जुड़े असली मुद्दों पर 'सीधी बात' करता है। दीर्घकालीन हित एवं सुख की बात 'साफ स्पष्ट अंदाज़' में रखता है। तथा विमुक्ति मार्ग के विभिन्न पड़ावों का 'सटीक शब्दों में वर्णन'

करता है। ऐसा धर्म जो केवल परलोक की बात न कर, अभी इस जीवन में भी तुरंत साफ़-साफ़ दिखाई पड़े। जो केवल आज ही नहीं, त्रिकाल में लागू करने योग्य हो। जो प्रासंगिक हो, व्यावहारिक हो, ऊँचे आदर्शों की स्वानुभूति कराए। जो सुखमार्ग पर आगे-आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए, अंततः सम्पूर्ण दुःखमुक्ति का साक्षात्कार कराए। धन्य है भगवान बुद्ध! धन्य है उनका बताया सद्धर्म! और भाग्यशाली हैं जो उसे सुन पाएँ, समझ पाएँ। अनन्त दुःखों से मुक्त हों जो इस पर चल पाएँ!

इस पुस्तक का पहला ड्राफ्ट मेरे मित्र सहब्रह्मचारी भिक्खु कोलित द्वारा अनुवाद किया गया था, जो वर्तमान प्रारूप एवं भाषा से बहुत भिन्न था। उन्होंने परमपूज्य गुरु **थानिस्सरो भिक्खु** की **Merit** पुस्तिका[4] से उसे तैयार किया था। किंतु जब उन्होंने मुझे ड्राफ्ट सौंपा, तो देखकर लगा कि वह केवल पश्चिमी मानसिकता के लिए ही बनाई गई है, जो भारतीयों के लिए उपयुक्त न होगी। तब मैने उसमें अनेक फेरबदल कर, अनेक सूत्रों एवं अध्यायों को जोड़-घटाकर, भाषा एवं प्रारूप सुधार कर इस पुस्तिका को अंजाम दिया। अब यह पुस्तक सर्वथा भिन्न एवं अनोखी है।

मैने 'पटिपदा' के ही अनुरूप इस पुस्तक में भी भगवान के प्रासंगिक उपदेशों को विषयानुरूप क्रमबद्ध कर एक स्वचलित प्रवाह देने का प्रयास किया है। उनका संकलन 'पालि पञ्चनिकाय' से किया गया है, जबकि कुछ चुनिंदा सूत्र विनयपिटक से शामिल है। इसमें थानिस्सरो भन्ते के अनेक अनुवादों से मदद ली गई है। उनके अलावा भिक्खु बोधि[5], भिक्खु सुजातो[6] के साथ राहुल सांकृत्यायन, भिक्खु आनन्द कौसल्यायन, और भिक्खु जगदीश कश्यप द्वारा हिंदी अनुवादों से भी मदद ली गई। उनके अलावा मूल पालि का सन्दर्भ लेते हुए, विभिन्न शब्दकोषों से भी उचित व्याख्याएँ ली गई। भिक्खु अभिभू और मेरी बहन की ओर से अनेक सुझाव स्वीकार किए गए। रह गई त्रुटियों के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार हूँ।

अपेक्षित है कि कुछ लोगों को प्रथम अध्याय में बड़ी दिक्कत हो। हो सकता है पढ़कर किसी के पैरों तले जमीन खिसक जाए। यदि ऐसा हो तो यकीन मानिए, वह आपके लिए एक वरदान साबित होगा। शायद वह ऐसी ही जमीन थी जिस पर कभी

[4] www.dhammatalks.org

[5] Wisdom Publications, United States of America

[6] www.suttacentral.net

खड़ा न होना ही अच्छा था। वहाँ से गिरने पर ही कोई अपने लिए एक बेहतर सुरक्षित जमीन चुनेगा।

सिक्के के दो पहलू होते हैं — भलाई हो तो बुराई भी है, सुख हो तो दुःख भी है, और स्वर्ग हो तो नर्क भी है। ज़ाहिर है कुछ लोग उसे सुनना पसंद नहीं करते हैं। इसलिए तमाम धर्मों के गुरुजन भी कुछ भक्तों को खोने के डर से उसका वर्णन करने से कतराते हैं। इसलिए अधिकांश लोगों ने उस पक्ष के बारे में ठीक से सुना ही नहीं हैं। ख़ैर, आपने सुना हो या न सुना हो, सत्य तो सत्य है, और वहाँ मौजूद है। कोई अनजान वहाँ भटकते हुए पहुँच सकता है, किंतु जानकार व्यक्ति के पास बचने का कोई मौका तो है। एक उदाहरण से समझें।

> भोला रेल से यात्रा कर रहा था। वह अपने कानों में हेडफोन लगाए, मोबाइल पर फिल्म देखने में मशगूल था। अचानक, एक यात्री ने उसे आवाज दी, "भाई, आप नहीं उतरेंगे?"
>
> भोला ने ध्यान नहीं दिया। यात्री ने फिर पूछा, "भाई साहब, आप को भला रेगिस्तान में क्या काम पड़ गया?"
>
> भोला ने मोबाइल से नजरें हटाए बिना कहा, "रेगिस्तान? नहीं। मैं कही नही जा रहा हूँ।"
>
> यात्री चौंक गया। उसने पूछा, "भाई, क्या आपको पता है कि यह ट्रेन अगले स्टेशन के बाद रेगिस्तान में रुकेगी?"
>
> भोला गुस्सा हो गया। उसने कहा, "अरे यार, रेगिस्तान वेगिस्तान कुछ नहीं होता! फ़िल्म देखने दो भाई!"
>
> यात्री दंग रह गया। वह स्टेशन पर उतर गया। उसने बाहर खिड़की से आखिरी आवाज़ लगाई, "भाई, बस इतना सुन लो कि पानी की बोतलें भर लो। वहाँ पानी की किल्लत है।"
>
> भोला फिल्म देखने में व्यस्त रहा। कुछ देर बाद, भोला ने उबासी देकर हेडफोन निकाल दिए और खिड़की से बाहर देखने लगा। गुजरती भीड़ और फेरीवालों के कोलाहल के बीच, उसे

अत्यंत धीमी आवाज में विचित्र भाषाओं में आकाशवाणी सुनाई दी। उसे कुछ समझ नहीं आया।

उसने कान में उँगली डालकर खूब हिलाया और शान्त हो गया, तब उसे अपनी भाषा में आकाशवाणी सुनाई दी, "टिंग टॉन्ग टिंग! यात्रीगण, कृपया ध्यान दें! प्लेटफार्म नंबर तीन की गाड़ी आज रात बारह बजकर तेरह मिनिट पर अंतिम स्टेशन थार मरुस्थल पर पहुँचेगी। यात्रियों से अनुरोध हैं कि वे स्वयं भोजन एवं पर्याप्त जल की व्यवस्था करें। धन्यवाद!"

भोला बदहवासी में उठ खड़ा हुआ, लेकिन उसके पैर जम-से गए। रेल धक्का देकर चल पड़ी, तो वह चीख पड़ा।

---

गौर करें कि पालि भाषा में **'संसार'** शब्द संज्ञा या सर्वनाम नहीं, बल्कि क्रिया होती है — जन्म-जन्मांतरण में अनन्त **संसरण की प्रक्रिया!** उसे 'चक्र' शब्द से भी जोड़ा जाता है — संसारचक्र भवचक्र दुःखचक्र, जो रुकता नहीं, थमता नहीं! अर्थात्, भले ही कोई भोला जैसे अनजान बेखबर बनकर पड़ा रहे, किंतु अपने गंतव्य से छूटेगा नहीं। जीवन एक यात्रा है। और हर कोई इस दिशा या उस दिशा में बढ़ रहा है, इधर या उधर जाकर बस रहा है। आप ने साथ चलते राहगीरों के साथ जो बर्ताव किया, वही आपकी जमापुँजी है, उसी के सहारे टिकट कटेगी। किस स्टेशन पर उतरना है, कोई स्वयं चुनता है, तो किसी को वहाँ उतार दिया जाता है। और आज भी आप अपने व्यस्त जीवन और नृत्यगीत से ध्यान हटाएँ, और कान देकर सुने तो संभव है आप को भी दिव्य आकाशवाणी सुनाई दे, जो मानवों को लगातार चेताने का प्रयास कर रही है।

पुण्य का स्वर्ग आमंत्रण हो या पाप का नर्क पैगाम — दोनों ही धर्म में अनिवार्य है। मेरी राय है कि किसी को अच्छा लगे न लगे, किंतु हर कोई पर्याप्त जानकारी तो रखें, तब सोच-समझकर निर्णय लें। गिरकर कोई ऐसा न बोलें कि "मुझे उस गड्ढे के बारे में किसी ने बताया ही नहीं था!" क्योंकि तब उसके पतन में हम धर्मगुरु भी भागीदार होंगे।

अधिकांश लोगों को भलाई का मार्ग पता होता है, तब भी कम ही लोग बुराई छोड़ पाते हैं। मनुष्यावस्था ऐसी ही है कि भलाई और बुराई दोनों ही हममें कूट-कूटकर भरी

होती है, और दोनों ही प्रकट होने के बार-बार अवसर मिलते हैं। भलाई पर चल पड़ने के लिए केवल 'मिठास का आकर्षण' ही प्रेरित नहीं करता, बल्कि 'कड़वाहट का प्रतिकर्षण' भी करता है। वाकई जिसने पाप के परिणाम देखे हो, वही पुण्य की महत्ता समझता है। जो घोर अंधेरा जानता हो, वही रोशनी की अहमियत समझता है। और उसी को पुण्य के प्रति संवेग जागता है।

बहरहाल, कुछ लोग परलोक का अस्तित्व नकारते हैं, क्योंकि वैज्ञानिकों के भौतिक उपकरण उसका पता नहीं लगा पाते। मुझे उनसे ख़ास सहानुभूति है, क्योंकि कुछ ही वर्षों पूर्व मैं भी उनमें शामिल था। किंतु स्वयं वैज्ञानिकों के अनुसार, उनके तमाम आधुनिक उपकरण कुल मिलाकर दुनिया का केवल ०.५% ही प्रत्यक्ष पता लगा सकते हैं। (हाँ, आपने सही पढ़ा! आधा प्रतिशत!) बचे ९९.५% का केवल 'अनुमान' है। (इसकी स्वयं पुष्टि करें।) हालांकि वह भी केवल इसी आयाम की बात है। भगवान के अनुसार (तथा स्ट्रिंग थियरी, मल्टीवर्स जैसे वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार) इसी दुनिया के दर्जनों आयाम खुलते हैं। उनका ०.००१% पता लगाना भी इस आयाम के उपकरणों के बस की बात नहीं! ख़ैर, मेरा भी 'अनुमान' है कि परलोक तो छोड़िए, वैज्ञानिक कभी 'विज्ञान'[7] का ही पता नहीं लगा पाएँगे। आगे चलकर गलत साबित हो जाऊँ, तो शायद मुझसे अधिक खुश कोई न होगा। विज्ञान के तो वैसे असंख्य आयाम हैं, किंतु भगवान उन्हें जोड़कर मोटा-मोटी ३१ आयाम में वर्गीकृत करते हैं। वही परलोक है। और चित्त को इन ३१ लोक-विज्ञान के आमिष से मुक्त कराना ही निर्वाण है।

अंततः भगवान ऐसे तार्किक लोगों को **सुरक्षित दांव**[8] खेलने का सुझाव देते हैं। अर्थात् उन्होंने सोचना चाहिए कि "दुनिया में कई धर्म और संत हैं जो स्वर्ग-नर्क, पुण्य-पाप के बारे में बात करते हैं। जो लोग इन बातों को झूठ मानते हैं, वे अक्सर मनमर्ज़ी से बुराई करने लगते हैं। क्योंकि उन्हें बुराई में कोई गलती नहीं दिखती। दूसरी ओर, जो

---

[7] विज्ञान का धार्मिक अर्थ है मानव-चेतना अथवा consciousness. वैज्ञानिकों के लिए चैतन्य को समझना एक अत्यंत जटिल समस्या है, जिसे वे वर्तमान सिद्धांतों के अनुसार न सुलझा पा रहे हैं, न कोई स्पष्ट सिद्धांत बना पा रहे है, न आपस में सहमति ही बना पा रहे हैं। अधिकांश वैज्ञानिक भौतिकवादी हैं, अर्थात वे मानते हैं कि सभी घटनाओं का आधार भौतिक ही होता है। वे मानते हैं कि चैतन्य भी मस्तिष्क का ही एक उत्पाद है, लेकिन किसी भौतिक वस्तु से व्यक्तिपरक मानसिक अनुभव कैसे उत्पन्न होते है, उसे समझ नहीं पाते हैं। वे स्वीकारते हैं कि चैतन्य को भौतिक ईकाई से मापना या उसके स्वरूप की व्याख्या करना कठिन है। जबकि कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि चैतन्य एक अलग आयाम है, और उसे भौतिक ईकाइयों से मापना असंभव है। बहरहाल, उस पर आम सहमति बनना कठिन है। इसलिए वे चैतन्य को "the Hard Problem" कहकर, उस पर बात करने से कतराते हैं।

[8] मज्झिमनिकाय ६० : अपण्णकसुत्त

लोग इन बातों को सच मानते हैं, वे बुराई छोड़ भलाई करने लगते हैं। क्योंकि उन्हें बुरे परिणाम का भय सताता है। परलोक की बातें छोड़ों! इसी वर्तमान जीवन में समाज के लोग दुराचारी की निंदा-भर्त्सना करते हैं। दुराचारी को पसंद नहीं किया जाता। सदाचारी को पसंद किया जाता है। उसे समाज में आदर, प्रशंसा और प्रेम मिलता है।

इसलिए अगर कर्म और परलोक जैसी बातें झूठी हैं, तब भी दुराचारी का एक ही दांव सही पड़ा, दूसरा गलत। अर्थात्, परलोक न होने से भविष्य सुरक्षित है, किंतु वर्तमान जीवन में ही वह निंदित होता है, नापसंद किया जाता है। लेकिन अगर सच हैं, तब उसका भविष्य भी सुरक्षित नहीं है — दुर्गति होकर नर्क जाएगा। अर्थात्, तब दुराचारी के दोनों ही दांव उल्टे पड़ते हैं।

दूसरी ओर, सदाचारी के लिए धर्म झूठ अथवा सच होने पर भी दोनों ही दांव सही पड़ते हैं। अर्थात्, वह इस लोक में भी प्रशंसित और सम्मानित होता है, तथा परलोक हो तो उसमें भी सद्गति होती है।" — भगवान कहते हैं कि इस तरह सोचकर तार्किक व्यक्ति जोखिम न उठाएँ। हमेशा भलाई एवं सदाचार का मार्ग चुनें। सुरक्षित दांव खेलकर अपना वर्तमान और भविष्य दोनों सुरक्षित रखें।

यह पुस्तक एक प्रवाह में है। प्रारंभिक कड़वाहट से गुजरकर बहते-बहते मीठी होती चली जाती है। कड़वाहट के पश्चात मीठा अधिक मीठा भी लगता है। कृपया धैर्य रखें और आगे तैरते जाएँ। सच्चाई जानने के लिए सच्चे धर्म को एक सच्चा मौका दें।

आशा है यह पुस्तक पहले पुरानी मदहोशी तोड़कर नीचे गिराएगी। तब धर्म की नई नींव रचने में हाथ बटाएगी। फिर सुख की भव्य इमारत खड़ी करने में आती बाधाओं को दूर करेगी। तब भीतर अपार पुण्य की जमापूँजी एवं सज्जा-सामग्री संचित करने के लिए प्रेरित करेगी। और अंततः त्रिकाल दुःख से संपूर्ण मुक्ति दिलाने में यशस्वी करेगी।

साधु साधु साधु।

💐 मेरी पुण्यशाली मां की स्मृति को समर्पित 💐

## ।। नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।।

( भगवान अरहन्त सम्यकसम्बुद्ध को नमन है )

# प्रमाद

**भगवान** ने कहा:

“भिक्षुओं! तीन तरह का **नशा** «माद» होता है। कौन से तीन? यौवन का नशा, आरोग्य का नशा, और जीवन का नशा।

**यौवन** [जवानी] के नशे में मदहोश होकर, कोई धर्म न सुना आम व्यक्ति काया से दुराचार करता है, वाणी से दुराचार करता है, एवं मन से दुराचार करता है। वह काया, वाणी एवं मन से दुराचार कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजता है।

**आरोग्य** [चंगाई] के नशे में मदहोश होकर, कोई धर्म न सुना आम व्यक्ति काया से दुराचार करता है, वाणी से दुराचार करता है, एवं मन से दुराचार करता है। वह काया, वाणी एवं मन से दुराचार कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजता है।

**जीवन** के नशे में मदहोश होकर, कोई धर्म न सुना आम व्यक्ति काया से दुराचार करता है, वाणी से दुराचार करता है, एवं मन से दुराचार करता है। वह काया, वाणी एवं मन से दुराचार कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजता है।”

«अंगुत्तरनिकाय ३:३९ : सुखुमालसुत्त»

**कौशल-नरेश प्रसेनजित** ने एक-ओर बैठते हुए भगवान से कहा:

“भन्ते! अभी मैं एकांत में था, तो मेरे चित्त में विचारों की शृंखला उठी, ‘इस दुनिया में अल्प ही लोग हैं, जो भोगसंपत्ति प्राप्त करने पर मदहोश नहीं होते, प्रमादी [=लापरवाह] नहीं होते, कामुकता के लिए लोभी नहीं होते, दूसरों से दुर्व्यवहार नहीं करते। बल्कि बहुत लोग हैं, जो भोगसंपत्ति प्राप्त करने पर मदहोश हो जाते हैं, प्रमादी हो जाते हैं, कामुकता के लिए लोभी हो जाते हैं, और दूसरों से दुर्व्यवहार करने लगते हैं।”

«संयुत्तनिकाय ३:२४ : अप्पकसुत्त»

**साल गांव के ब्राह्मण गृहस्थ** तब भगवान के पास गए। कुछ लोग भगवान को अभिवादन कर एक-ओर बैठ गए। कुछ लोग भगवान को नम्रतापूर्ण हालचाल पूछ कर एक-ओर बैठ गए। कुछ लोग हाथ जोड़, अंजलिबद्ध वंदन कर एक-ओर बैठ गए। कोई अपना नाम-गोत्र बता कर एक-ओर बैठ गए। तथा कोई चुपचाप ही एक-ओर बैठ गए। उन ब्राह्मण गृहस्थों ने एक-ओर बैठकर भगवान से कहा:

"हे गोतम! क्या कारण एवं परिस्थिति से कुछ सत्व मरणोपरांत काया छूटने पर पतन होकर दुर्गति हो, यातनालोक नर्क में उपजते हैं?"

"**अधर्मचर्या विषमचर्या**[9] के कारण, गृहस्थों, कुछ सत्व मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजते हैं।"

"हम गुरु गोतम द्वारा बताई संक्षिप्त बात का अर्थ नहीं समझते हैं, जिसका उन्होंने विश्लेषण नहीं किया। अच्छा होगा जो गुरु गोतम हमें धर्म सिखाएँ, जिससे हम उनकी संक्षिप्त बात का विस्तृत अर्थ समझ सके।"

"तब गृहस्थों, ध्यान देकर गौर से सुनों। मैं बताता हूँ।"

"जैसे आप कहें, गुरुजी!"

"गृहस्थों, काया से तीन तरह की, वाणी से चार तरह की, तथा मन से तीन तरह की अधर्मचर्या विषमचर्या होती हैं।

**काया** से तीन तरह की अधर्मचर्या विषमचर्या कैसे होती हैं?

• ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति **जीवहत्या** करता है — निर्दयी, रक्त से सने हाथ वाला, हत्या एवं हिंसा में जुटा, जीवों के प्रति निष्ठुर।

• कोई व्यक्ति **चुराता** है — गांव या जंगल से न दी गई, न सौंपी, पराई वस्तु को चोरी चुपके उठाता, ले लेता है।

• कोई व्यक्ति **व्यभिचारी** होता है। वह उनसे संबन्ध बनाता है — जो माता से संरक्षित हो, पिता से संरक्षित हो, भाई से संरक्षित हो, बहन से संरक्षित हो, रिश्तेदार से संरक्षित हो, गोत्र से संरक्षित हो, धर्म से संरक्षित हो, जिसका पति [या पत्नी] हो,

---

[9] **विषम** — जैसे कोई स्थान या रास्ता सम नहीं होकर, दुर्गम और ऊबड़-खाबड़ होता है तो वहाँ रहने या गुजरने वाले को कष्ट होता है। जैसे कोई संगीत सम नहीं बजकर, बेसुर और बेताल बजता है तो श्रोता को कष्ट होता है। जैसे कोई गाड़ी सम नहीं चलकर, इधर-उधर टकराते, धक्के खाते और हिचकोले खाते चलती है तो सवार को कष्ट होता है। उसी तरह जब कोई समचर्या, समबर्ताव और समआचरण नहीं करता है, बल्कि विषम करता है तो लोगों को कष्ट होता है।

जिससे संबन्ध दण्डनिय हो, अथवा जिसे अन्य पुरुष ने फूल से नवाजा [=सगाई या प्रेमसंबन्ध] हो। ऐसे तीन तरह से काया द्वारा अधर्मचर्या विषमचर्या होती हैं।

**वाणी** से चार तरह की अधर्मचर्या विषमचर्या कैसे होती हैं?

• ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति **झूठ** बोलता है। जब उसे नगरबैठक, गुटबैठक, रिश्तेदारों की सभा, अथवा किसी संघ या न्यायालय में बुलाकर गवाही देने कहा जाए, "आईये! बताएँ श्रीमान! आप क्या जानते है?" तब यदि वह न जानता हो तो कहता है, "मैं जानता हूँ।" यदि जानता हो तो कहता है, "मैं नहीं जानता हूँ।" यदि उसने न देखा हो तो कहता है, "मैंने ऐसा देखा है।" यदि उसने देखा हो तो कहता है, "मैंने ऐसा नहीं देखा।" इस तरह वह आत्महित में, परहित में, अथवा ईनाम की चाह में झूठ बोलता है।

• कोई व्यक्ति **फूट डालनेवाली बातें** करता है। यहाँ सुनकर वहाँ बताता है, ताकि वहाँ दरार पड़े। वहाँ सुनकर यहाँ बताता है, ताकि यहाँ दरार पड़े। वह साथ रहते लोगों को बांटता, टूटे रिश्तों में झगड़ा कराता, गुटबंदी चाहता, गुटबंदी में रत होता, गुटबंदी का मजा लेता, ऐसे बोल बोलता है कि गुटबंदी हो।

• कोई व्यक्ति **कटु वचन** बोलता है। वह ऐसी बातें बोलता है, जो कठोर हो, तीखी हो, दूसरे को कड़वी लगे, कटु लगे, क्रोध जगे, समाधि [मनोस्थिरता, एकाग्रता] भंग हो।

• कोई व्यक्ति **बकवास** करता है। वह बेसमय, बिना तथ्यों के, निरर्थक, न धर्म अनुकूल, न विनय अनुकूल, बिना मूल्य की बातें बोलता है। ऐसे चार तरह से वाणी द्वारा अधर्मचर्या विषमचर्या होती हैं।

**मन** से तीन तरह की अधर्मचर्या विषमचर्या कैसे होती हैं?

• ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति **लालची** होता है। वह पराई संपत्ति की लालसा रखता है, 'काश, वह पराई चीज़ मेरी हो जाए!'

• कोई व्यक्ति **दुर्भावनापूर्ण** चित्त का होता है। वह मन में दुष्ट संकल्प पालता है, 'यह सत्व मर जाए, कट जाए, कुचला जाए! इसका विनाश हो! अस्तित्व उजड़ जाए!'

• कोई व्यक्ति **मिथ्यादृष्टि** धारण करता है। वह विपरीत दृष्टिकोण से देखता है — 'न दान [का फ़ल] है, न चढ़ावा है, न आहुती है। न सुकृत्य या दुष्कृत्य कर्मों का फ़ल-परिणाम है। न लोक है, न [मरणोपरांत] परलोक। न मां है, न पिता [का विशेष ऋण]। न

स्वयं से उत्पन्न «ओपपातिक» सत्व हैं, और न ही ऐसे श्रमण या ब्राह्मण, जो सम्यक-साधना कर सही प्रगति करते हुए अभिज्ञता का साक्षात्कार करने पर लोक-परलोक होने की घोषणा करते हैं।' ऐसे तीन तरह से मन द्वारा अधर्मचर्या विषमचर्या होती हैं। तथा गृहस्थों, ऐसी अधर्मचर्या विषमचर्या के कारण कुछ सत्व मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजते हैं।"

«मज्झिमनिकाय ४१ : सालेय्यकसुत्त»

**तोदेय्यपुत्र कुमार सुभ** तब भगवान के पास गया और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। एक-ओर बैठकर उसने भगवान से कहा:

"हे गोतम! क्या कारण एवं परिस्थिति से मनुष्यावस्था में आकर **मानवों में हीनता या उत्कृष्टता** प्रकट होती हैं? मानवों में अल्पायुता दिखती है या दीर्घायुता दिखती है, बहुरोगीता दिखती है या अल्परोगीता दिखती है, कुरूपता दिखती है या सौंदर्यता दिखती है, प्रभावहीनता दिखती है या प्रभावशीलता दिखती है, दरिद्रता दिखती है या ऐश्वर्यता दिखती है, नीचकुलीनता दिखती है या उच्चकुलीनता दिखती है, दुष्प्रज्ञता दिखती है या महाप्रज्ञता दिखती है? क्या कारण एवं परिस्थिति से मनुष्यावस्था में आकर मानवों में हीनता या उत्कृष्टता प्रकट होती हैं?"

"कुमार! सत्व स्वयं कर्म के कर्ता, कर्म के वारिस, कर्म से पैदा, कर्म से बंधे, कर्म के शरणागत हैं। वे जो भी कर्म करते हैं, कल्याणकारी अथवा पापपूर्ण, उसी के उत्तराधिकारी होते हैं।"

"मैं गुरु गोतम द्वारा बताई संक्षिप्त बात का अर्थ नहीं समझता हूँ, जिसका उन्होंने विश्लेषण नहीं किया। अच्छा होगा जो गुरु गोतम मुझे धर्म सिखाएँ, जिससे मैं उनकी संक्षिप्त बात का विस्तृत अर्थ समझ पाऊँ।"

"तब कुमार, ध्यान देकर गौर से सुनों। मैं बताता हूँ।"

"जैसे आप कहें, गुरुजी!"

"ऐसा होता है कुमार! कोई स्त्री या पुरुष **जीवहत्या** करते हैं — निर्दयी, रक्त से सने हाथ वाले, हत्या एवं हिंसा में जुटे, जीवों के प्रति निष्ठुर। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **अल्पायु** होते हैं। यही अल्पायुता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **जीवों को प्रताड़ित** करते हैं — हाथ से, पत्थर से, डंडे से या शस्त्र से। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **बहुरोगी** होते हैं। यही बहुरोगीता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **क्रोधी, बड़े व्याकुल** होते हैं — छोटी-सी बात पर भी क्रोधित होते, कुपित होते, विद्रोह करते, विरोध करते हैं, तथा गुस्सा, द्वेष एवं खीज प्रकट करते हैं। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **कुरूप** होते हैं। यही कुरूपता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **ईर्ष्यालु** होते हैं — पराए को मिलता लाभ सत्कार, आदर सम्मान, वंदन पूजन से जलते हैं, कुढ़ते हैं, ईर्ष्या करते हैं। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **प्रभावहीन** होते हैं। यही प्रभावहीनता [अल्पसक्षमता] की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **दाता नहीं** होते हैं — श्रमण एवं ब्राह्मणों को भोजन पान, वस्त्र वाहन, माला गन्ध लेप, बिस्तर निवास दीपक आदि दान नहीं देते हैं। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **दरिद्र** होते हैं। यही दरिद्रता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **अहंकारी** होते हैं — वंदनीय लोगों को वंदन नहीं करते, खड़े होने योग्य के लिए खड़े नहीं होते, आसन देने योग्य को आसन नहीं देते, रास्ता छोड़ने योग्य के लिए रास्ता नहीं छोड़ते हैं। तथा सत्कारयोग्य आदरणीय सम्माननीय या पूजनीय लोगों का सत्कार आदर सम्मान या पूजा नहीं करते हैं। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **नीचकुलीन** होते हैं। यही नीचकुलीनता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष जाकर श्रमण या ब्राह्मण को **पूछते नहीं** हैं — 'भन्ते! क्या कुशल होता है? क्या अकुशल होता है? क्या दोषपूर्ण होता है? क्या निर्दोष होता है? क्या [स्वभाव] विकसित करना चाहिए? क्या विकसित नहीं करना चाहिए? किस तरह के कर्म मुझे दीर्घकालीन अहित एवं दुःख की ओर ले जाएँगे? और किस तरह के

कर्म मुझे दीर्घकालीन हित एवं सुख की ओर ले जाएँगे?' वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **दुष्प्रज्ञ** [दुर्बुद्धि प्राप्त] होते हैं। यही दुष्प्रज्ञता की ओर बढ़ता रास्ता है।

इस तरह कुमार, अल्पायुता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को अल्पायु बनाता है। बहुरोगीता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को बहुरोगी बनाता है। कुरूपता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को कुरूप बनाता है। प्रभावहीनता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को प्रभावहीन बनाता है। दरिद्रता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को दरिद्र बनाता है। नीचकुलीनता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को नीचकुलीन बनाता है। दुष्प्रज्ञता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को दुष्प्रज्ञ बनाता है।

सत्व स्वयं कर्म के कर्ता, कर्म के वारिस, कर्म से पैदा, कर्म से बंधे, कर्म के शरणागत हैं। और कर्म से ही मानवों में हीनता या उत्कृष्टता[10] का भेद होता है।"

«मज्झिमनिकाय १३५ : चूळकम्मविभङ्गसुत्त»

**यो दण्डेन अदण्डेसु, अप्पदुट्ठेसु दुस्सति।**
**दसन्नमञ्ञतरं ठानं, खिप्पमेव निगच्छति।**
"जो निर्दोष निहत्थे पर, दण्ड से प्रहार करे
दस में किसी स्थान[11] पर, जाकर गिर पड़े —
**वेदनं फरुसं जानिं, सरीरस्स च भेदनं।**
**गरुकं वापि आबाधं, चित्तक्खेपञ्च पापुणे।**
**राजतो वा उपसग्गं , अब्भक्खानञ्च दारुणं।**
**परिक्खयञ्च ञातीनं, भोगानञ्च पभङ्गुरं।।**
**अथ वास्स अगारानि, अग्गि डहति पावको।**
**कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो, निरयं सोपपज्जति।।**
कटु पीड़ाएँ, तबाही हो, या उसका शरीर टूट जाए,
रोग गंभीर लग जाए, या उसका चित्त बहक जाए।
राजदंड तकलीफ़ हो, या भयंकर फटकार मिले उसे,
सगेसंबन्धी का विनाश हो, या भोगसंपत्ति लुट जाए।

[10] यहाँ केवल हीनता के कारण एवं परिस्थिति पढ़ें। उत्कृष्टता के लिए तीसरा अध्याय 'पुण्य' देखें।

[11] निहत्थे निर्दोष पर दण्डप्रहार करने के दस कर्मफ़ल, अभी इसी जीवन में मिलते हैं। किंतु भगवान द्वारा जोड़ा ग्यारहवां — 'नर्क में प्रकट होना', परलोक में मिलता है।

जो घर आवास हो उसके, अग्नि कर दे खाक उन्हें।
काया छूटने पर वह दुष्प्रज्ञ, नर्क में प्रकट हो जाए।”

«धम्मपद दण्डवग्गो १३७-१४०»

**कोधो वो वसमायातु, मा च मित्तेहि वो जरा**
**अगरहियं मा गरहित्थ, मा च भासित्थ पेसुणं;**
**अथ पापजनं कोधो,पब्बतोवाभिमद्दती**

“क्रोध को वश में रखें, मित्रता न टूटने पाएँ।
निष्पाप को ना कोसें, न विभाजित करती बात कहें।
क्रोध कुचल देता दुर्जन को, जैसे ऊपर गिरता पर्वत हो।”

«संयुत्तनिकाय ११:२४ : अच्चयसुत्त»

## अकुशल विपाक

• **जीवहत्या** में लिप्त होना, [स्वभाव] विकसित करना, बार-बार करना — नर्क ले जाता है, पशुयोनी दिलाता है, या भूखा प्रेत बनाता है। जीवहत्या के तमाम [घोर] परिणामों में सबसे हल्का परिणाम मनुष्यावस्था में मिले, तब अल्पायुता मिलती है।

• **चोरी** में लिप्त होना, विकसित करना, बार-बार करना — नर्क ले जाता है, पशुयोनी दिलाता है, या भूखा प्रेत बनाता है। चोरी के तमाम परिणामों में सबसे हल्का परिणाम मनुष्यावस्था में मिले, तब धनसंपत्ति की हानि होती है।

• **व्यभिचार** में लिप्त होना, विकसित करना, बार-बार करना — नर्क ले जाता है, पशुयोनी दिलाता है, या भूखा प्रेत बनाता है। व्यभिचार के तमाम परिणामों में सबसे हल्का परिणाम मनुष्यावस्था में मिले, तब प्रतिद्वंदिता एवं शत्रुता मिलती है।

• **झूठ बोलने** में लिप्त होना, विकसित करना, बार-बार करना — नर्क ले जाता है, पशुयोनी दिलाता है, या भूखा प्रेत बनाता है। झूठ बोलने के तमाम परिणामों में सबसे हल्का परिणाम मनुष्यावस्था में मिले, तब मिथ्या आरोपण होता है।

• **फूट डालने वाले वचन** में लिप्त होना, विकसित करना, बार-बार करना — नर्क ले जाता है, पशुयोनी दिलाता है, या भूखा प्रेत बनाता है। फूट डालने वाले वचन के तमाम परिणामों में सबसे हल्का परिणाम मनुष्यावस्था में मिले, तब मित्रता टूटती है।

• **कठोर वचन** में लिप्त होना, विकसित करना, बार-बार करना — नर्क ले जाता है, पशुयोनी दिलाता है, या भूखा प्रेत बनाता है। कटु वचन के तमाम परिणामों में सबसे हल्का परिणाम मनुष्यावस्था में मिले, तब अनचाहे वचन सुनना पड़ता है।

• **निरर्थक वचन** में लिप्त होना, विकसित करना, बार-बार करना — नर्क ले जाता है, पशुयोनी दिलाता है, या भूखा प्रेत बनाता है। निरर्थक वचन के तमाम परिणामों में सबसे हल्का परिणाम मनुष्यावस्था में मिले, तब अस्वीकार्य वचन सुनना पड़ता है।

• **शराब मद्य आदि मदहोश करने वाले नशेपते** में लिप्त होना, विकसित करना, बार-बार करना — नर्क ले जाता है, पशुयोनी दिलाता है, या भूखा प्रेत बनाता है। नशेपते के तमाम परिणामों में सबसे हल्का परिणाम मनुष्यावस्था में मिले, तब उन्माद [विक्षिप्तता] होता है।

«अंगुत्तरनिकाय ८:४० : दुच्चरितविपाकसुत्त»

“भिक्षुओं! **मूर्ख के तीन लक्षण** होते हैं, चिन्ह होते हैं, गुण होते हैं। कौन से तीन? मूर्ख बुरा विचारी होता है, बुरा बोलता है, और बुरा कृत्य करता है।

यदि मूर्ख ऐसा न होता, तो विद्वान उसे कैसे जान पातें कि “यह मूर्ख असत्पुरुष [बेईमान] है”? चूंकि मूर्ख बुरा विचारी होता है, बुरा बोलता है, और बुरा कृत्य करता है, इसलिए विद्वान उसे जान पाते हैं कि “यह मूर्ख असत्पुरुष है!”

मूर्ख इसी जीवन में तीन तरह से ‘दुःख एवं पीड़ा’ का अनुभव करता है। जब लोग सभा में बैठकर, रास्ते के किनारे बैठकर, या चौराहे पर बैठकर [दुराचार से] जुड़ी प्रासंगिक बात पर चर्चा करने लगे — तब जो मूर्ख जीवहत्या, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलता एवं शराब मद्य आदि मदहोश करनेवाला नशापता करता हो, वह सोचता है, “लोग जिस प्रासंगिक बात पर चर्चा कर रहे हैं, वह [हरकतें] मुझमें भी पायी जाती हैं! और मैं उनमें लिप्त होते भी देखा जाता हूँ!” मूर्ख इसी जीवन में इस पहले दुःख-पीड़ा का अनुभव करता है।

फिर, मूर्ख, किसी चोर या अपराधी के पकड़े जाने पर दंडस्वरूप तरह-तरह से यातनाएँ झेलते हुए देखता है — जैसे चाबुक़ से पिटते हुए, कोड़े लगते हुए, मुग्दर, बेंत या डंडों से पिटते हुए, हाथ कटते, पैर कटते, हाथ-पैर दोनों कटते हुए, कान कटते, नाक कटते, कान-नाक दोनों कटते हुए, या खोपड़ी निकालकर गर्म लोहा डलते हुए, सिर की चमड़ी उतार खोपड़ी को कंकड़ों से रगड़ते हुए, चिमटे से मुँह खुलवा भीतर अँगारें या दीपक जलते हुए, शरीर पर तेलबत्ती लपेट आग लगते हुए, हाथ पर तेलबत्ती लपेट आग लगते हुए, गले से कलाई तक की चमड़ी खींचकर उतरते हुए, गले से कुल्हे तक की चमड़ी भी खींचकर उतरते हुए, कोहनियों और घुटनों में खूँटा ठोककर ज़मीन पर लेटते हुए, दोनों-ओर से नुक़िले काँटे घुसेड़ चमड़ी, माँस और नसें नचोटते हुए, सारे शरीर की चमड़ी को सिक्के-सिक्के भर छिलते हुए, शरीर को पीट-पीटकर कंघी फेरते हुए, एक-करवट लिटाकर कानों में खूँटा गड़ते हुए, बिना चमड़ी को हानि पहुँचाये भीतर हड्डी पीसते हुए, उबलता तेल डलते हुए, कुत्तों द्वारा नोच-नोचकर भोजन बनते हुए, खूँटी घुसाकर सुली पर लटकते हुए, तथा तलवार से सिर कटते हुए। — तब वह सोचता है, "चोर या अपराधी जिन पापकर्मों के चलते पकड़ा गया और उसे शासनकर्ता [पुलिस या लोगों] ने तरह-तरह से यातनाएँ दी, वह [हरकतें] मुझमें भी पायी जाती हैं! और मैं उनमें लिप्त होते भी देखा जाता हूँ!" मूर्ख इसी जीवन में इस दूसरे दुःख-पीड़ा का अनुभव करता है।

फिर, जब मूर्ख [अकेला] कुर्सी पर बैठा हो, पलंग पर बैठा हो, या जमीन पर बैठा हो, तब उसके पूर्व पापकर्म — काया से दुराचार, वाणी से दुराचार एवं मन से दुराचार — उसपर घिर आते हैं, बिछ जाते हैं, उसे ढक देते हैं। जैसे संध्या होते जमीन पर महापर्वत चोटी की छाया घिर आती है, बिछ जाती है, उसे ढक देती है। उसी तरह जब मूर्ख कुर्सी, पलंग या जमीन पर बैठा हो, तब उसके पूर्व पापकर्म — काया से दुराचार, वाणी से दुराचार एवं मन से दुराचार — उसपर घिर आते हैं, बिछ जाते हैं, उसे ढक देते हैं। तब मूर्ख को लगता है, "अरे! मैने न कल्याणकर्म किए, न कुशलकर्म किए, न ही भयभीत को आसरा दिया। बल्कि मैने पाप किए, क्रूरता की, गलतियां की! जो लोग कल्याण नहीं करते, कुशल नहीं करते, भयभीत को आसरा नहीं देते; बल्कि पाप, क्रूरता एवं गलतियां करते हैं — जो गति उनकी होती हैं, वही गति मेरी भी होगी!" तब ऐसा लगने पर उसे अफ़सोस होता है, वह ढ़ीला पड़ता है, विलाप करता है, छाती पीटता है, बावला हो जाता है। मूर्ख इसी जीवन में इस तीसरे दुःख-पीड़ा का अनुभव करता है।

तब मूर्ख काया से दुराचार करते हुए, वाणी से दुराचार करते हुए, एवं मन से दुराचार करते हुए मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजता है। यदि कोई उचित तरह से बोल पड़े, "बिलकुल अनिच्छित! बिलकुल अप्रिय! बिलकुल अनचाहा!", तब ऐसा कहना **नर्क** के बारे में उचित होगा। यहाँ तक कि भिक्षुओं, नर्क के दुःख की उपमा देना भी सरल नहीं है।"

तब एक भिक्षु ने कहा, "किंतु, भन्ते! क्या तब भी कोई उपमा दी जा सकती है?"

"दी जा सकती है, भिक्षु! कल्पना करो कि कोई चोर पकड़ा जाए और राजा के आगे पेश किया जाए। [सैनिक कहें:] "महाराज! यह अपराधी चोर है। आपको जो उचित लगे, सो दंड दें।"

राजा कहता है, "सैनिकों, इसे ले जाओ और सुबह में सौ-भाले भोंको!"

तब उसे सुबह में सौ-भाले भोंक दिया जाता है। तब राजा दोपहर में पूछता है, "सैनिकों, क्या हाल है उसका?"

"अब भी जीवित है, महाराज!"

"जाओ, उसे दोपहर में [पुनः] सौ-भाले भोंको!"

तब उसे दोपहर में सौ-भाले भोंक दिया जाता है। तब राजा संध्या में पूछता है, "सैनिकों, क्या हाल है उसका?"

"अब भी जीवित है, महाराज!"

"जाओ, उसे संध्या में [पुनः] सौ-भाले भोंको!"

तब उसे संध्या में सौ-भाले भोंक दिया जाता है। तो क्या लगता है, भिक्षुओं? क्या उसे **तीन सौ** भाले भोंक दिए जाने के कारण दुःख-पीड़ा होगी?"

"भन्ते! मात्र एक-भाला भोंका जाए, तब भी भयंकर दुःख-पीड़ा होगी। तो तीन सौ-भालों का कहना ही क्या!"

तब भगवान ने एक पत्थर उठाया और भिक्षुओं से कहा, "तो क्या लगता है, भिक्षुओं? क्या बड़ा है — मेरे हाथ का यह पत्थर अथवा पर्वतराज हिमालय?"

"भन्ते! भगवान ने जो पत्थर उठाया, वह पर्वतराज हिमालय के आगे गिना भी नहीं जाएगा! वह एक अंश भी नहीं है! दोनों में कोई तुलना ही नहीं है!"

"उसी तरह, भिक्षुओं! पुरुष को तीन-सौ भाले भोंके जाने पर जो दुःख-पीड़ा होगी, वह नर्क के दुःख के आगे गिने भी नहीं जाएँगे! वे एक अंश भी नहीं हैं! दोनों में कोई तुलना ही नहीं हैं!

भिक्षुओं, मैं तुम्हें नर्क के बारे में तरह-तरह से बता सकता हूँ। किंतु तब भी नर्क के दुःख का पूर्ण वर्णन करना सरल नहीं है। जैसे दो घर हो, द्वारों के साथ। कोई अच्छी आँखों वाला पुरुष दोनों के मध्य खड़ा होकर लोगों को एक घर से दूसरे में प्रवेश करते हुए, निकलते हुए एवं घूमते-भटकते हुए देखे। उसी तरह मैं अपने विशुद्ध हुए अलौकिक दिव्यचक्षु से सत्वों को गुजरते-उपजते हुए देखता हूँ, और मुझे पता चलता है कि वे कर्मानुसार ही कैसे हीन या उच्च, सुंदर या कुरूप, भाग्यशाली या अभाग़े हैं: 'अरे, कैसे ये सत्व — काया **सदाचार** में संपन्न, वाणी सदाचार में संपन्न, एवं मन सदाचार में संपन्न, जिन्होंने आर्यजनों का अनादर नहीं किया, सम्यकदृष्टि धारण की एवं सम्यकदृष्टि के प्रभाव में सुकृत्य किए — वे मरणोपरांत सद्गति होकर देवताओं के साथ स्वर्ग में उपजे... अथवा मानवलोक में जन्म लिए।

और कैसे ये सत्व — काया **दुराचार** में संपन्न, वाणी दुराचार में संपन्न, एवं मन दुराचार में संपन्न, जिन्होंने आर्यजनों का अनादर किया, मिथ्यादृष्टि धारण की एवं मिथ्यादृष्टि के प्रभाव में दुष्कृत्य किए — वे मरणोपरांत काया छूटने पर प्रेतलोक में उत्पन्न हुए... अथवा पशुयोनी में उत्पन्न हुए... अथवा यातनालोक नर्क में उपजे।'

तब उन्हें नर्कपाल बाहें पकड़ कर यमराज के आगे तरह-तरह से उपस्थित करते हैं, "देव! यह पुरुष न मां का सम्मानकर्ता है, न पिता का! न श्रमण [साधु संन्यासी] का सम्मानकर्ता है, न ब्राह्मण का! न ही कुलपरिवार के ज्येष्ठ [उम्र में बड़े] लोगों का ही सम्मानकर्ता है! देव, इसे दण्ड का आदेश दें!"

तब यमराज उस पुरुष से **प्रथम देवदूत** के बारे में पूछताछ करता है, "अरे भले पुरुष! क्या तुमने प्रथम देवदूत को मानवों में प्रकट होते नहीं देखा?"

"नहीं देखा, देव!"

"अरे भले पुरुष! क्या तुमने मानवों में किसी नवजात शिशु को स्वयं के मलमूत्र में पड़े, सोते नहीं देखा?"

"देखा, देव!"

“तब, भले पुरुष! क्या तुम्हें होश जागकर, प्रौढ़ता आकर ऐसा नहीं लगा, “मैं भी **जन्म-धर्म** से घिरा हूँ! जन्म-धर्म नहीं लांघा हूँ! अच्छा होगा जो अब मैं काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म में लग जाऊँ!”

“ऐसा नहीं लगा, देव! मैं मदहोश था, देव!”

“अरे भले पुरुष! तुमने मदहोश रहकर काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म नहीं किए। और तुम जितना मदहोश रहे, उतना ज़रूर निपटा जाएगा! क्योंकि तुम्हारे वे पापकर्म — न तुम्हारी मां से हुए, न पिता से, न भाई से हुए, न बहन से, न मित्र-सहचारियों से हुए, न तुम्हारे परिवारजन-रिश्तेदारों से, और न ही [आरक्षक] देवताओं से हुए! तुम्हारे वे पापकर्म स्वयं तुमसे हुए, और अब तुम ही उसका परिणाम भोगोगे!”

प्रथम देवदूत के बारे में पूछताछ करने, स्पष्टीकरण मांगने एवं फटकारने पश्चात, यमराज उस पुरुष से **द्वितीय देवदूत** के बारे में पूछताछ करता है, “अच्छा भले पुरुष! क्या तुमने द्वितीय देवदूत को मानवों में प्रकट होते नहीं देखा?”

“नहीं देखा, देव!”

“अरे भले पुरुष! क्या तुमने मानवों में किसी अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष के बूढ़े या बूढ़ी को नहीं देखा, जिसका ऊपरी शरीर टेढ़ा-मेढ़ा, झुका हुआ हो, लट्ठ के सहारे चलता या खड़ा हो, लकवा मारे, दर्द पीड़ा में त्रस्त हो चुके, दांत टूट चुके, केश भूरे पड़ चुके, अर्ध गंजा या पूर्ण गंजा हो चुके, काया पूर्णतः झुर्रीदार एवं धब्बेदार हो चुकी हो?”

“देखा, देव!”

“तब, भले पुरुष! क्या तुम्हें होश जागकर, प्रौढ़ता आकर ऐसा नहीं लगा, “मैं भी **जीर्ण-धर्म** से घिरा हूँ! जीर्ण-धर्म नहीं लांघा हूँ! अच्छा होगा जो अब मैं काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म में लग जाऊँ!”

“ऐसा नहीं लगा, देव! मैं मदहोश था, देव!”

“अरे भले पुरुष! तुमने मदहोश रहकर काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म नहीं किए। और तुम जितना मदहोश रहे, उतना ज़रूर निपटा जाएगा! क्योंकि तुम्हारे वे पापकर्म — न तुम्हारी मां से हुए, न पिता से, न भाई से हुए, न बहन से, न मित्र-सहचारियों से हुए, न तुम्हारे परिवारजन-रिश्तेदारों से, और न ही देवताओं से हुए! तुम्हारे वे पापकर्म स्वयं तुमसे हुए, और अब तुम ही उसका परिणाम भोगोगे!”

द्वितीय देवदूत के बारे में पूछताछ करने, स्पष्टीकरण मांगने एवं फटकारने पश्चात, यमराज उस पुरुष से **तृतीय देवदूत** के बारे में पूछताछ करता है, "अच्छा भले पुरुष! क्या तुमने तृतीय देवदूत को मानवों में प्रकट होते नहीं देखा?"

"नहीं देखा, देव!"

"अरे भले पुरुष! क्या तुमने मानवों में किसी बीमार, गंभीर रोग से ग्रस्त, दर्द पीड़ा में कराहते, स्वयं के मलमूत्र में सने, दूसरों द्वारा उठाए, लिटाए जाते को नहीं देखा?"

"देखा, देव!"

"तब, भले पुरुष! क्या तुम्हें होश जागकर, प्रौढ़ता आकर ऐसा नहीं लगा, "मैं भी **रोग-धर्म** से घिरा हूँ! रोग-धर्म नहीं लांघा हूँ! अच्छा होगा जो अब मैं काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म में लग जाऊँ!"

"ऐसा नहीं लगा, देव! मैं मदहोश था, देव!"

"अरे भले पुरुष! तुमने मदहोश रहकर काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म नहीं किए। और तुम जितना मदहोश रहे, उतना ज़रूर निपटा जाएगा! क्योंकि तुम्हारे वे पापकर्म — न तुम्हारी मां से हुए, न पिता से, न भाई से हुए, न बहन से, न मित्र-सहचारियों से हुए, न तुम्हारे परिवारजन-रिश्तेदारों से, और न ही देवताओं से हुए! तुम्हारे वे पापकर्म स्वयं तुमसे हुए, और अब तुम ही उसका परिणाम भोगोगे!"

तृतीय देवदूत के बारे में पूछताछ करने, स्पष्टीकरण मांगने एवं फटकारने पश्चात, यमराज उस पुरुष से **चतुर्थ देवदूत** के बारे में पूछताछ करता है, "अच्छा भले पुरुष! क्या तुमने चतुर्थ देवदूत को मानवों में प्रकट होते नहीं देखा?"

"नहीं देखा, देव!"

"अरे भले पुरुष! क्या तुमने मानवों में किसी चोर या अपराधी के पकड़े जाने पर दंडस्वरूप तरह-तरह से यातनाएँ झेलते हुए नहीं देखा — जैसे चाबुक़ से पिटते हुए, कोड़े लगते हुए, मुग्दर, बेंत या डंडों से पिटते हुए... [तरह-तरह से उत्पीड़न] नहीं देखा?"

"देखा, देव!"

"तब, भले पुरुष! क्या तुम्हें होश जागकर, प्रौढ़ता आकर ऐसा नहीं लगा, "जो पापकर्म करता है, इसी जीवन में तरह-तरह से यातनाएँ झेलता है, तब **मरणोपरांत परलोक** में क्या होता होगा? अच्छा होगा जो अब मैं काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म में लग जाऊँ!"

“ऐसा नहीं लगा, देव! मैं मदहोश था, देव!”

“अरे भले पुरुष! तुमने मदहोश रहकर काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म नहीं किए। और तुम जितना मदहोश रहे, उतना ज़रूर निपटा जाएगा! क्योंकि तुम्हारे वे पापकर्म — न तुम्हारी मां से हुए, न पिता से, न भाई से हुए, न बहन से, न मित्र-सहचारियों से हुए, न तुम्हारे परिवारजन-रिश्तेदारों से, और न ही देवताओं से हुए! तुम्हारे वे पापकर्म स्वयं तुमसे हुए, और अब तुम ही उसका परिणाम भोगोगे!”

चतुर्थ देवदूत के बारे में पूछताछ करने, स्पष्टीकरण मांगने एवं फटकारने पश्चात, यमराज उस पुरुष से **पंचम देवदूत** के बारे में पूछताछ करता है, “अच्छा भले पुरुष! क्या तुमने पंचम देवदूत को मानवों में प्रकट होते नहीं देखा?”

“नहीं देखा, देव!”

“अरे भले पुरुष! क्या तुमने मानवों में कोई लाश नहीं देखी — एक दिन पुरानी, दो दिन पुरानी, या तीन दिन पुरानी — फूल चुकी, नीली पड़ चुकी, पीब रिसती हुई?”

“देखी, देव!”

“तब, भले पुरुष! क्या तुम्हें होश जागकर, प्रौढ़ता आकर ऐसा नहीं लगा, “मैं भी **मरण-धर्म** से घिरा हूँ! मरण-धर्म नहीं लांघा हूँ! अच्छा होगा जो अब मैं काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म में लग जाऊँ!”

“ऐसा नहीं लगा, देव! मैं मदहोश था, देव!”

“अरे भले पुरुष! तुमने मदहोश रहकर काया, वाणी एवं मन से कल्याणकर्म नहीं किए। और तुम जितना मदहोश रहे, उतना ज़रूर निपटा जाएगा! क्योंकि तुम्हारे वे पापकर्म — न तुम्हारी मां से हुए, न पिता से, न भाई से हुए, न बहन से, न मित्र-सहचारियों से हुए, न तुम्हारे परिवारजन-रिश्तेदारों से, और न ही देवताओं से हुए! तुम्हारे वे पापकर्म स्वयं तुमसे हुए, और अब तुम ही उसका परिणाम भोगोगे!”

पंचम देवदूत के बारे में पूछताछ करने, स्पष्टीकरण मांगने एवं फटकारने पश्चात, यमराज मौन हो जाता है।

तब नर्कपाल उसे ले जाकर **पञ्चविध बन्धन** नामक यातना देते हैं — एक तप्त-लाल कील उसके एक हाथ में ठोंकते हैं, दूसरी तप्त-लाल कील उसके दूसरे हाथ में ठोंकते हैं, तीसरी तप्त-लाल कील उसके एक पैर में ठोंकते हैं, चौथी तप्त-लाल कील उसके दूसरे पैर में ठोंकते हैं, और पाँचवी तप्त-लाल कील उसके सीने में ठोंकते हैं। तब

उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तब नर्कपाल उसे लिटाकर आरी से काटते हैं। तब उसका सिर नीचे, पैर ऊपर पकड़कर कुल्हाड़ी से काटते हैं। तब उसे रथ से बांधकर, 'जलती दहकती धधकती' भूमि पर घसीट ले जाते हैं एवं वापस ले आते हैं। तब उसे 'जलते दहकते धधकते' विशालकाय पर्वत पर चढ़ने लगाते हैं एवं उतरने लगाते हैं। तब उसका सिर नीचे, पैर ऊपर पकड़कर, 'जलते दहकते धधकते' तप्त-लाल तांबे की कढ़ाई में डुबोते हैं। वह बुलबुले, झाग छोड़ते हुए उबलता है। तब उसे बुलबुले, झाग छोड़ते, उबालते हुए सीधा डुबोते हैं, फिर उल्टा डुबोते हैं, फिर आड़ा-तिरछा डुबोते हैं। तब उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तब नर्कपाल उसे उठाकर, **महानर्क** में फेंक देते हैं। और, महानर्क, भिक्षुओं —

चतुर्कोणीय चतुर्द्वारीय, प्रत्येक विभाग मापा हुआ,
घिरा ऊँची लोह-दीवार से, लोह-छत से ढका हुआ।
तप्त-लाल लोह-भूमि, जलती धधकती हुई,
रहती है सदैव खड़ी, सौ योजन फैली हुई।

भीतर पूर्वी-दीवार से उठती लौ पश्चिमी-दीवार पर टकराती है। पश्चिमी-दीवार से उठती लौ पूर्वी-दीवार पर टकराती है। उत्तरी-दीवार से उठती लौ दक्षिणी-दीवार पर टकराती है। दक्षिणी-दीवार से उठती लौ उत्तरी-दीवार पर टकराती है। भूमि से उठती लौ छत पर टकराती है। छत से उठती लौ भूमि पर टकराती है। वहाँ उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तब दीर्घकाल बीतने पर एक समय आता है, जब महानर्क का **पूर्वी-द्वार** खुलता है। तुरंत वह तेज दौड़ पड़ता है। और जब वह तुरंत तेज दौड़ता है, तब उसकी छवि [ऊपरी त्वचा] जलती है, चर्म [भीतरी त्वचा] जलता है, मांस जलता है, नसें जलती हैं, हड्डियां भी जलते हुए धुआं देने लगती हैं। वह पकड़े जाने पर पूर्ववत हो जाता है, अथवा पहुँचने पर द्वार लग जाता है। तब उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तब दीर्घकाल बीतने पर एक समय आता है, जब महानर्क का **पश्चिमी-द्वार** खुलता है। तुरंत वह तेज दौड़ पड़ता है... **उत्तरी-द्वार** खुलता है। तुरंत वह तेज दौड़ पड़ता है... **दक्षिणी-द्वार** खुलता है। तुरंत वह तेज दौड़ पड़ता है। और जब वह तुरंत तेज दौड़ता है, तब उसकी छवि जलती है, चर्म जलता है, मांस जलता है, नसें जलती हैं, हड्डियां भी जलते हुए धुआं देने लगती हैं। वह पकड़े जाने पर पूर्ववत हो जाता है, अथवा पहुँचने पर द्वार लग जाता है। तब उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तब दीर्घकाल बीतने पर एक समय आता है, जब महानर्क का पूर्वी-द्वार [पुनः] खुलता है। तुरंत वह तेज दौड़ पड़ता है। और जब वह तुरंत तेज दौड़ता है, तब उसकी छवि जलती है, चर्म जलता है, मांस जलता है, नसें जलती हैं, हड्डियां भी जलते हुए धुआं देने लगती हैं। वह पकड़े जाने पर पूर्ववत हो जाता है, अथवा द्वार से बाहर निकलता है। किंतु महानर्क के समानांतर, बगल में विशाल **गूहनर्क** [विष्ठा] है। वह उसमें गिरता है। और उस गूहनर्क में अनेक सुईमुख वाले जीव उसकी छवि में छेद करते हैं। छवि बिंधकर चर्म में छेद करते हैं। चर्म बिंधकर मांस में छेद कर करते हैं। मांस बिंधकर नसों में छेद करते हैं। नसें बिंधकर हड्डियों में छेद करते हैं। और हड्डियां बिंधकर अस्थिमज्ज चूसने लगते हैं। तब उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

गूहनर्क के समानांतर, बगल में विशाल तप्त **कोयलानर्क** है। वह उसमें गिरता है। तब उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तप्त कोयलानर्क के समानांतर, बगल में विशाल **सिंबलिवन** है — एक योजन [१ योजन ≈ १६ किलोमीटर] ऊँचा, सोलह-ऊंगली लंबे कांटों से बिछा हुआ, 'जलता दहकता धधकता'। वह उसमें प्रवेश करता है। तब उसे ऊपर चढ़ाते हैं एवं उतारते हैं। तब उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

सिंबलिवन के समानांतर, बगल में विशाल **तलवार-पत्तीवन** है। वह उसमें प्रवेश करता है। वहाँ पवन से हिलती पत्तियां उसके हाथ काटती हैं, पैर काटती हैं, हाथ-पैर दोनों काटती हैं, कान काटती हैं, नाक काटती हैं, कान-नाक दोनों काटती हैं। तब उसे

तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तलवार-पत्तीवन के समानांतर, बगल में विशाल **खाराजल नदी** है। वह उसमें गिरता है। वह उसे नीचे बहा ले जाती है, ऊपर बहा ले जाती है, नीचे-ऊपर दोनों ओर बहा ले जाती है। तब उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तब नर्कपाल हुक डालकर उसे बाहर निकालते हैं, और जमीन पर रखते हुए पूछते हैं, "अरे, भले पुरुष! क्या इच्छा है तुम्हारी?"

"मैं भूखा हूँ, मान्यवर!" वह उत्तर देता है।

तब नर्कपाल 'जलते दहकते धधकते' तप्त-लाल चिमटे से उसका मूंह खोलते हैं, और भीतर एक 'जलता दहकता धधकता' **तांबे का गोला** डालते हैं — जो उसके होठ जलाता है, मूंह जलाता है, गला जलाता है, पेट जलाता है, और उसकी आँतें-अँतड़ियाँ लेकर पिछवाड़े से बाहर निकलता है। तब उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तब नर्कपाल उसे पूछते हैं, "अरे भले पुरुष! अब क्या इच्छा है तुम्हारी?"

"मैं प्यासा हूँ, मान्यवर!" वह उत्तर देता है।

तब नर्कपाल 'जलते दहकते धधकते' तप्त-लाल चिमटे से उसका मूंह खोलते हैं, और भीतर 'जलता दहकता धधकता' **पिघला तांबा** उड़ेलते हैं — जो उसके होठ जलाता है, मूंह जलाता है, गला जलाता है, पेट जलाता है, और उसकी आँतें-अँतड़ियाँ लेकर पिछवाड़े से बाहर निकलता है। तब उसे तीव्र, तेज एवं कटु दुःख-पीड़ा महसूस होती है। तब भी वह मरता नहीं है, जब तक उसके पापकर्म खत्म नहीं हो जाते।

तब नर्कपाल उसे उठाकर, **पुनः महानर्क** में फेंक देते हैं।

भिक्षुओं, मैं तुम्हें नर्क के बारे में तरह-तरह से बता सकता हूँ। किंतु तब भी नर्क के दुःख का पूर्ण वर्णन करना सरल नहीं है।[12]

---

[12] पिछले कई वर्षों से दुनिया भर के आधुनिक अस्पतालों में एक अनोखी घटना सामने आई है। जब मरीज़ के दम तोड़ने पर डॉक्टरों द्वारा 'शॉक थेरपी' देकर उन्हें पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जाता है, तो ऐसे लाखों पुनर्जीवित मामलों में जब अनेक लोगों ने होश संभाला है, तो उन्होंने स्वर्ग, नर्क और प्रेतलोक का एक-जैसा वर्णन दर्ज़ कराया है। इन अनुभवों को डॉक्टर "NDE" कहते हैं, जिसका अर्थ है "निकट-मृत्यु अनुभव"।

भिक्षुओं! पशुओं में **तृणभक्षी** प्राणी होते हैं, जो ताज़ी या सूखी घास चाटकर, दातों से खाते हैं — जैसे हाथी, अश्व, गाय, गधे, बकरियां, मृग इत्यादि। जो मूर्ख पूर्व पेटू [भुक्कड़] था और पापकर्म किया था, वह मरणोपरांत काया छूटने पर तृणभक्षी पशुयोनि में उत्पन्न होता है।

पशुओं में **गूहभक्षी** प्राणी होते हैं, जो दूर से विष्ठा सूँघकर दौड़ पड़ते हैं, “यहाँ खाएँगे! यहाँ खाएँगे!” — जैसे मुर्गे, सूअर, कुत्ते, सियार इत्यादि। जो मूर्ख पूर्व पेटू था और पापकर्म किया था, वह मरणोपरांत गूहभक्षी पशुयोनि में उत्पन्न होता है।

पशुओं में ऐसे प्राणी होते हैं, जो **अंधकार में** पैदा होते, अंधकार में जीते, और अंधकार में ही मरते हैं — जैसे कीट, कृमि, केंचुए इत्यादि। जो मूर्ख पूर्व पेटू था और पापकर्म किया था, वह मरणोपरांत अंधकार में ही पैदा होने, जीने और मरने वाले पशुयोनि में उत्पन्न होता है।

पशुओं में ऐसे प्राणी होते हैं, जो **जल में** पैदा होते, जल में जीते, और जल में ही मरते हैं — जैसे मछलियां, कछुएँ, मगरमच्छ इत्यादि। जो मूर्ख पूर्व पेटू था और पापकर्म किया था, वह मरणोपरांत जल में ही पैदा होने, जीने और मरने वाले पशुयोनि में उत्पन्न होता है।

पशुओं में ऐसे प्राणी होते हैं, जो **गंदगी में** पैदा होते, गंदगी में जीते, और गंदगी में ही मरते हैं — जैसे सड़ती मछली में, सड़ती लाश में, सड़ते भोजन में, पाखाने में, या गडर नाली में इत्यादि। जो मूर्ख पूर्व पेटू था और पापकर्म किया था, वह मरणोपरांत गंदगी में ही पैदा होने, जीने और मरने वाले पशुयोनि में उत्पन्न होता है।

भिक्षुओं, मैं तुम्हें पशुयोनी के बारे में तरह-तरह से बता सकता हूँ। किंतु तब भी पशुयोनी के दुःख का पूर्ण वर्णन करना सरल नहीं है।

कल्पना करों कि कोई पुरुष महासमुद्र में एक जुआ [बैल का योगबन्ध] फेंके, जिसमे एक छेद हो। तब पूर्वी-पवन उसे पश्चिम में बहाएँ, पश्चिमी-पवन उसे पूर्व में बहाएँ, उत्तरी-पवन उसे दक्षिण में बहाएँ, तथा दक्षिणी-पवन उसे उत्तर में बहाएँ। तब कल्पना करों कि उस महासमुद्र में एक **अंधा कछुआ** रहता हो, जो प्रत्येक सौ वर्ष बीतने पर केवल एक-

---

NDE का वैज्ञानिक अध्ययन पिछले कई दशकों से जारी है। इस विषय पर हजारों शोध पत्र प्रकाशित हुए हैं और सैकड़ों पुस्तकें लिखी गई हैं। इन अध्ययनों से पता चला है कि NDE एक वास्तविक घटना है, जो किसी विशेष धर्म या धारणा से जुड़ी नहीं है। NDE का अनुभव करने वाले लोगों में प्रतिष्ठित वैज्ञानिक, न्यूरोसर्जन, डॉक्टर, इंजीनियर और हजारों नास्तिक लोग भी शामिल हैं।

बार सतह पर आता हो। तो क्या लगता है, भिक्षुओं? क्या वह महासमुद्र में तैरता, सौ वर्षों में एक-बार ऊपर आने वाला अंधा कछुआ, कभी उस जुए में गर्दन डाल पाएगा?"

"भन्ते, दीर्घकाल बीतने पर कदाचित एक अवसर ऐसा आ सकता है।"

"भिक्षुओं! मैं कहता हूँ कि शीघ्र ही वह अंधा कछुआ उस जुए में गर्दन डाल देगा, बजाए कि नर्क गए मूर्ख को पुनः मनुष्यता प्राप्त हो। ऐसा क्यों? क्योंकि वहाँ न धर्मचर्या, न समचर्या, न कुशलक्रिया, न ही पुण्यक्रिया होती है। वहाँ आपसी भक्षण होता है, भिक्षुओं, दुर्बल का भक्षण होता है।

जब दीर्घकाल बीतने पर कदाचित एक समय आए भी कि मूर्ख को पुनः मनुष्यता प्राप्त हो — तब वह नीचकुलीन परिवार में जन्म लेता है, जैसे चण्डालकुल [बहिष्कृत], निषादकुल [शिकारी], वेनकुल [बांस-काम करने वाले], रथकारकुल [बढई], वा पुक्कुसकुल [मैला उठाने वाले] जैसे अत्यंत दरिद्र, अल्प अन्नपान एवं भोजन वाले, कठिनाई से गुज़ारा होने वाले, कठिनाई से खाद्य एवं वस्त्र प्राप्त होने वाले कुलपरिवार। साथ ही वह कुरूप होता है, भद्दा दिखता है, विकृत होता है, रोगी होता है, अंधा होता है, लूला होता है, लंगड़ा होता है, लक़वाग्रस्त होता है। तथा उसे न अन्न मिलता है न पान, न वस्त्र मिलता है न गाड़ी, न माला न गन्ध न लेप मिलते हैं, न पलंग न आवास मिलते हैं, न ही दीपक। वह [उस कठिन जीवन में] काया से दुराचार, वाणी से दुराचार एवं मन से दुराचार करता है। और मरणोपरांत पुनः पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजता है।

जैसे भिक्षुओं! कोई **जुआरी** हो जो प्रथम-दांव में ही अपनी पत्नी, बच्चे, घर, जमीन, संपत्ति सब-कुछ गँवा दे और स्वयं गुलाम बनकर रह जाए। तब भी ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण दांव — जिसमे कोई अपनी पत्नी, संतान, घर, जमीन, संपत्ति सब-कुछ गँवा दे और स्वयं गुलाम बनकर रह जाए — अल्पमात्र ही होगा! किंतु कोई मूर्ख उससे भी अधिक अनर्थकारी, महादुर्भाग्यपूर्ण दांव खेलता है, जब वह काया से दुराचार, वाणी से दुराचार एवं मन से दुराचार करता है, और मरणोपरांत पतन होकर यातनालोक नर्क में उपजता है। यह मूर्खता की पराकाष्ठा है।

एक बार, भिक्षुओं! यमराज को विचार आया, "जो लोक में पाप, अकुशल कर्म करते हैं, उन्हें ऐसे तरह-तरह से यातनाएँ दी जाती हैं। अरे! काश, मैं मनुष्यता प्राप्त करूँ! और लोक में तथागत अर्हंत सम्यकसम्बुद्ध उत्पन्न हो! और मुझे उस भगवान का साक्षात्कार हो! और भगवान मुझे धर्म सिखाएँ! और मैं धर्म समझ पाऊँ!"

यह भिक्षुओं, मैं किसी श्रमण या ब्राह्मण से सुनकर नहीं कह रहा हूँ। बल्कि जो मैने स्वयं देखा, स्वयं पता किया, स्वयं समझा, वह तुम्हें बता रहा हूँ!” ऐसा भगवान ने कहा। ऐसा कहकर सुगत ने, शास्ता ने आगे कहा:

“चेताया देवदूतों से, तरुण जो मदहोश रहे
दीर्घकाल वो शोक करे, आकर हीनकाया में।
किंतु भला सत्पुरुष यहाँ, चेताया देवदूतों से,
न रहे मदहोश वो, आर्यधर्म के प्रति कभी।
भय देखे वो आसक्ति में, जन्म-मरण संभावना में,
अनासक्त विमुक्त हो, जन्म-मरण के अन्त से।
सुरक्षा पाकर सुखी हो, इसी जीवन में निर्वृत्त हो,
शत्रुता खतरे लांघ सभी, सारे दुःख से बच निकले।”

«मज्झिमनिकाय १२९ + १३० : बालपण्डितसुत्त + देवदूतसुत्त»

**पापोपि पस्सति भद्रं, याव पापं न पच्चति।**
**यदा च पच्चति पापं, अथ पापो पापानि पस्सति।।**

पापी सौभाग्य देखता,
जब तक उसके पाप न पकते।
किंतु पाप जब पक जाते,
तब पापी दुर्भाग्य देखता।

**मावमञ्ञेथ पापस्स, न मन्तं आगमिस्सति।**
**उदबिन्दुनिपातेन, उदकुम्भोपि पूरति।**
**बालो पूरति पापस्स, थोकं थोकम्पि आचिनं।।**

पाप को छोटा न समझो,
[सोचते हुए] ‘मुझ तक न आएगा’।
बूंद-बूंद से घड़ा भरता,
थोड़ा-थोड़ा संचय कर,
मूर्ख पाप से भर जाता।

«धम्मपद पापवग्गो ११९, १२१»

**इध सोचति पेच्च सोचति, पापकारी उभयत्थ सोचति।**
**सो सोचति सो विहञ्ञति, दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो॥**
यहाँ पछताता, पश्चात [परलोक में] पछताता।
पापकर्ता दोनों में पछताता है।
अपनी कर्मदुषितता देखकर पछताता, पीड़ित होता है।

**इध तप्पति पेच्च तप्पति, पापकारी उभयत्थ तप्पति।**
**"पापं मे कत"न्ति तप्पति, भिय्यो तप्पति दुग्गतिं गतो॥**
यहाँ तड़पता, पश्चात तड़पता।
पापकर्ता दोनों में तड़पता है।
'पाप किया मैंने!' कहते तड़पता।
दुर्गति जाकर और खूब तड़पता है।

«धम्मपद यमकवग्गो १५, १७»

**केसि अश्वदमन-सारथी** तब भगवान के पास गया, और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। भगवान ने कहा, "केसि, तुम दमनयोग्य घोड़ों के प्रसिद्ध सारथी हो। तुम कैसे घोड़ों को प्रशिक्षित करते हो?"

"भन्ते! मैं दमनयोग्य घोड़ों को मृदुता से, कठोरता से, मृदुता एवं कठोरता दोनों से प्रशिक्षित करता हूँ।"

"किंतु यदि वे न मृदूता से, न कठोरता से, न मृदुता एवं कठोरता दोनों से ही प्रशिक्षित हो, तब उनके साथ क्या करते हो?"

"भन्ते! यदि वे न मृदूता से, न कठोरता से, न मृदुता एवं कठोरता दोनों से ही प्रशिक्षित हो, तब मैं उन्हें मार देता हूँ। ऐसा क्यों? [सोचते हुए:] 'कही मेरा आचार्य-कुल कलंकित न हो!'

और भन्ते! भगवान लोक में सर्वोपरि पुरुषदमन-सारथी हैं! वे कैसे दमनयोग्य पुरुषों को प्रशिक्षित करते हैं?"

“केसि! मैं भी दमनयोग्य पुरुषों को मृदुता से, कठोरता से, मृदुता एवं कठोरता दोनों से प्रशिक्षित करता हूँ।

**मृदुता से** सिखाता हूँ — ‘काया से सदाचार ऐसा होता हैं। काया सदाचार का सुखद फ़ल ऐसा होता हैं। वाणी से सदाचार ऐसा होता हैं। वाणी सदाचार का सुखद फ़ल ऐसा होता हैं। मन से सदाचार ऐसा होता हैं। मन सदाचार का सुखद फ़ल ऐसा होता हैं। देवता ऐसे होते हैं। मनुष्य ऐसे होते हैं।’

**कठोरता से** सिखाता हूँ — ‘काया से दुराचार ऐसा होता हैं। काया दुराचार का दुखद परिणाम ऐसा होता हैं। वाणी से दुराचार ऐसा होता हैं। वाणी दुराचार का दुखद परिणाम ऐसा होता हैं। मन से दुराचार ऐसा होता हैं। मन दुराचार का दुखद परिणाम ऐसा होता हैं। नर्क ऐसे होते हैं। पशुयोनि ऐसी होती हैं। प्रेतलोक ऐसे होते हैं।’

मृदुता एवं कठोरता, **दोनों से** सिखाता हूँ — ‘काया वाणी एवं मन से सदाचार... सुखद फ़ल... देवता मनुष्य ऐसे होते हैं। तथा काया वाणी एवं मन से दुराचार... दुखद परिणाम... नर्क पशुयोनि प्रेतलोक ऐसे होते हैं।’”

“किंतु भन्ते! यदि वे न मृदूता से, न कठोरता से, न मृदुता एवं कठोरता दोनों से ही प्रशिक्षित हो, तब भगवान उनके साथ क्या करते हैं?”

“केसि! यदि वे न मृदूता से, न कठोरता से, न मृदुता एवं कठोरता दोनों से ही प्रशिक्षित हो, तब मैं उन्हें मार देता हूँ!”

“किंतु, भन्ते! भगवान के लिए तो जीवहत्या योग्य नहीं है! तब भी कैसे भगवान कह रहे हैं, ‘मैं उन्हें मार देता हूँ’?”

“सच है केसि! तथागत के लिए जीवहत्या योग्य नहीं है। किंतु जब दमनयोग्य पुरुष न मृदूता से, न कठोरता से, न मृदुता एवं कठोरता दोनों से ही प्रशिक्षित हो, तब तथागत उसे बात करने अथवा अनुशासन के लायक नहीं समझते हैं। तब उसके जानकार सहब्रह्मचारी भी उसे बात करने अथवा अनुशासन के लायक नहीं समझते हैं। इसका अर्थ है — उसका धर्मविनय में संपूर्ण विनाश!”

“हाँ, सच है भन्ते! कैसे उसका धर्मविनय में संपूर्ण विनाश न होगा, जब तथागत उसे बात करने अथवा अनुशासन के लायक न समझें, तथा जानकार सहब्रह्मचारी भी उसे बात करने अथवा अनुशासन के लायक न समझें?”

«अंगुत्तरनिकाय ४:१११ : केसिसुत्त»

[भन्ते सारिपुत्र **ब्राह्मण धनञ्जानि उपासक** के बारे में सुनते हैं कि आजकल वह प्रमादी होकर जीवनयापन करने लगा है। राजा के सहारे, वह ब्राह्मणों एवं वैश्य गृहस्थों को लूटता है, तो ब्राह्मणों एवं वैश्य गृहस्थों के सहारे, राजा को लूटता है। उसकी पत्नी — श्रद्धावान उपासिका, जो श्रद्धावान कुलपरिवार से आई थी, मर गई। तो उसने पुनर्विवाह कर ऐसी स्त्री ले आया — जो न श्रद्धावान उपासिका थी, न ही श्रद्धावान कुलपरिवार से थी। तब ऐसा सुनकर भन्ते सारिपुत्र करुणचित्त से उसके प्रदेश में जाकर, उसे मिलने बुलाते हैं।]

तब ब्राह्मण धनञ्जानि सारिपुत्र भन्ते के पास गया और मैत्रीपूर्ण हालचाल लेकर एक-ओर बैठ गया। तब सारिपुत्र भन्ते से उससे कहा,

"धनञ्जानि, आजकल अप्रमादी तो रहते हो?"

"हमें कहा से अप्रमाद मिलेगा, गुरुजी? जब माता-पिता को पालना हैं, पत्नी एवं संतानों को पालना हैं, दास-नौकरों को पालना हैं, मित्र-सहचारियों के प्रति जिम्मेदारी हैं, रिश्तेदार-संबन्धियों के प्रति जिम्मेदारी हैं, अतिथियों के प्रति जिम्मेदारी हैं, मृतपूर्वजों के प्रति जिम्मेदारी हैं, देवताओं के प्रति जिम्मेदारी हैं, राजा के प्रति जिम्मेदारी हैं, और इस काया को भी राहत और पोषण देना हैं।"

"क्या लगता है तुम्हें, धनञ्जानि? ऐसा हो कि कोई पुरुष अपनी माता-पिता के लिए अधर्मचर्या विषमचर्या करे। तब अधर्मचर्या विषमचर्या के कारण मरणोपरांत नर्कपाल आकर उसे नर्क खींच ले जाएँ। तब उसके कहने पर कि "अरे नर्कपालों! मैने जो अधर्मचर्या विषमचर्या की, अपने माता-पिता के लिए की! इसलिए नर्कपालों, मुझे नर्क में मत डालों!" — क्या उसे कुछ छूट मिलेगी? या उसके माता-पिता के कहने पर कि "अरे नर्कपालों! हमारे पुत्र ने जो अधर्मचर्या विषमचर्या की, हमारे लिए की! इसलिए, नर्कपालों! उसे नर्क में मत डालों!"— क्या उसे कुछ छूट मिलेगी?"

"नहीं, गुरुजी! नर्कपाल उनके चीखते रहने के बावजूद उसे नर्क में डाल देंगे।"

"और क्या लगता है तुम्हें, धनञ्जानि? ऐसा हो कि कोई पुरुष अपनी पत्नी एवं संतान के लिए... दास-नौकरों के लिए... मित्र-सहचारियों के लिए... रिश्तेदार-संबन्धियों के लिए... अतिथियों के लिए... मृतपूर्वजों के लिए... देवताओं के लिए... राजा के लिए... इस काया को राहत और पोषण देने के लिए अधर्मचर्या विषमचर्या करे। तब अधर्मचर्या विषमचर्या के कारण मरणोपरांत नर्कपाल आकर उसे नर्क खींच ले जाएँ। तब उसके कहने पर कि "अरे नर्कपालों! मैने जो अधर्मचर्या विषमचर्या की, अपने पत्नी एवं संतान के लिए की... दास-नौकरों के लिए की... मित्र-सहचारियों के लिए की...

रिश्तेदार-संबन्धियों के लिए की... अतिथियों के लिए की... मृतपूर्वजों के लिए की... देवताओं के लिए की... राजा के लिए की... इस काया को राहत और पोषण देने के लिए के लिए की! इसलिए नर्कपालों! मुझे नर्क में मत डालों!" — क्या उसे कुछ छूट मिलेगी? या उसके पत्नी एवं संतान... दास-नौकरों... मित्र-सहचारियों... रिश्तेदार-संबन्धियों... अतिथियों... मृतपूर्वजों... देवताओं... राजा के कहने पर कि "अरे नर्कपालों! इसने जो अधर्मचर्या विषमचर्या की, हमारे लिए की! इसलिए, नर्कपालों! उसे नर्क में मत डालों!"— क्या उसे कुछ छूट मिलेगी?"

"नहीं, गुरुजी! नर्कपाल उनके चीखते रहने के बावजूद उसे नर्क में डाल देंगे।"

"तब क्या लगता है, धनञ्जानि? क्या श्रेष्ठ है? कोई पुरुष अपने माता-पिता के लिए अधर्मचर्या विषमचर्या करे, अथवा धर्मचर्या समचर्या करे?"

"कोई अपने माता-पिता के लिए अधर्मचर्या विषमचर्या करे — यह कदापि श्रेष्ठ नहीं है, सारिपुत्र गुरुजी। बल्कि कोई अपने माता-पिता के लिए धर्मचर्या समचर्या करे — यही श्रेष्ठ है! अधर्मचर्या विषमचर्या की तुलना में धर्मचर्या समचर्या श्रेष्ठ है।"

"धनञ्जानि, पुरुष अपने माता-पिता का पालन किसी अर्थपूर्ण और धर्मपूर्ण कार्य द्वारा कर सकता है — पाप से दूर रहकर, पुण्यमार्ग पर चलकर पुण्यकार्यों को करते हुए!

और क्या लगता है तुम्हें, धनञ्जानि? क्या श्रेष्ठ है? कोई पुरुष अपने पत्नी एवं संतान के लिए... दास-नौकरों के लिए... मित्र-सहचारियों के लिए... रिश्तेदार-संबन्धियों के लिए... अतिथियों के लिए... मृतपूर्वजों के लिए... देवताओं के लिए... राजा के लिए... इस काया को राहत और पोषण देने के लिए अधर्मचर्या विषमचर्या करे, अथवा उनके लिए धर्मचर्या समचर्या करे?"

"कोई अपने पत्नी एवं संतान के लिए... दास-नौकरों के लिए... मित्र-सहचारियों के लिए... रिश्तेदार-संबन्धियों के लिए... अतिथियों के लिए... मृतपूर्वजों के लिए... देवताओं के लिए... राजा के लिए... इस काया को राहत और पोषण देने के लिए कोई अधर्मचर्या विषमचर्या करे, यह कदापि श्रेष्ठ नहीं है, सारिपुत्र गुरुजी। बल्कि कोई उनके लिए धर्मचर्या समचर्या करे — यही श्रेष्ठ है! अधर्मचर्या विषमचर्या की तुलना में धर्मचर्या समचर्या श्रेष्ठ है।"

“पुरुष अपने पत्नी एवं संतान... दास-नौकरों का पालन किसी अर्थपूर्ण और धर्मपूर्ण कार्य द्वारा कर सकता है... मित्र-सहचारियों... रिश्तेदार-संबन्धियों... अतिथियों... मृतपूर्वजों... देवताओं... राजा के प्रति जिम्मेदारी किसी अर्थपूर्ण और धर्मपूर्ण कार्य द्वारा पूर्ण कर सकता है... या इस काया को राहत और पोषण दे सकता है — पाप से दूर रहकर, पुण्यमार्ग पर चलकर पुण्यकार्यों को करते हुए!”

तब ब्राह्मण धनञ्जानि सारिपुत्र भन्ते की बात पर अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने अनुमोदन किया और आसन से उठकर चला गया।[13]

«मज्झिमनिकाय ९७ : धनञ्जानिसुत्त»

**कौशल-नरेश प्रसेनजीत** दिन के मध्यस्थ भगवान के पास गया और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। भगवान ने कहा:

“महाराज! भला दिन के मध्यस्थ कहाँ से आ रहे है?”

“भन्ते! मैं अभी ऐसे क्षत्रिय राजयोद्धाओं के रोजमर्रा के मामलों में फंसा हुआ था, जो सत्ता के नशे में धुत रहते हो, कामुकता के लोभ में डूबे रहते हो, अपने प्रदेश में स्थिर नियंत्रण प्राप्त कर चुके हो, और इस पृथ्वी के बड़े क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर राजशासन चलाते हो।”

“कल्पना करें, महाराज। एक सच्चा विश्वसनीय पुरुष पूर्व-दिशा से आकर कहे, ‘महाराज, मैं पूर्व-दिशा से आया हूँ। वहाँ मैंने एक महापर्वत देखा, बादलों तक ऊँचा, जो इस दिशा में सभी सत्वों को रौंदते हुए आ रहा है। देखिए, आपको क्या करना है।’ तब एक सच्चा विश्वसनीय पुरुष पश्चिम-दिशा से... एक उत्तर-दिशा से... एक दक्षिण-दिशा से आकर कहे, ‘महाराज, मैं दक्षिण-दिशा से आया हूँ। वहाँ मैंने एक महापर्वत देखा, बादलों तक ऊँचा, जो इस दिशा में सभी सत्वों को रौंदते हुए आ रहा है। देखिए, आपको क्या करना है।’ महाराज, यदि इस तरह महाविपत्ति आए, मानव-जीवन की महातबाही हो, जब मानव-जीवन पाना दुर्लभ है, तब आपको क्या करना चाहिए?”

“भन्ते! जब इस तरह महाविपत्ति आए, मानव-जीवन की महातबाही हो, जब मानव-जीवन पाना दुर्लभ है, तब कोई क्या कर सकता है, बजाय धर्मचर्या के, समचर्या के, कुशलक्रिया के, पुण्यक्रिया के?”

[13] तब कुछ दिनों पश्चात ब्राह्मण धनञ्जानि मृत्युशय्या पर पड़ा। उसके साथ क्या हुआ, अंतिम अध्याय ‘मरण’ में पढ़ें।

“महाराज, मैं आपको सूचित करता हूँ, घोषणा करता हूँ कि ‘बुढ़ापा और मृत्यु’ आपकी ओर रौंदते हुए बढ़ रहे हैं। तब आपको क्या करना चाहिए?”

“भन्ते! जब बुढ़ापा और मृत्यु मेरी ओर रौंदते हुए बढ़ रहे हैं, तब मैं क्या कर सकता हूँ, बजाय धर्मचर्या के, समचर्या के, कुशलक्रिया के, पुण्यक्रिया के?”

«संयुत्तनिकाय ३:२५ : पब्बतूपमसुत्त»

★ ★ ★

अध्याय दो

# प्राथमिक अंतर्ज्ञान

**भगवान** ने कहा:

"ऐसा होता है कि दुःख से हारा, चित्त से बेकाबू, **एक** व्यक्ति — अफ़सोस करता है, ढ़ीला पड़ता है, विलाप करता है, छाती पीटता है, बावला हो जाता है। किंतु दुःख से हारा, चित्त से बेकाबू, **दूसरा** व्यक्ति — बाहर ख़ोज करने निकल पड़ता है। [सोचते हुए] 'कौन इस दुःख को ख़त्म करने के एक-दो उपाय जानता है?'

मैं कहता हूँ, दुःख के फ़लस्वरूप बावलापन आता है अथवा ख़ोज होती है।"

«अंगुत्तरनिकाय ६:६३ : निब्बेधिकसुत्त»

"**अंतर्ज्ञान** प्राप्त करने का यह रास्ता है — कोई स्त्री या पुरुष जाकर श्रमण या ब्राह्मण से पूछते हैं, 'भन्ते! क्या कुशल होता है? क्या अकुशल होता है? क्या दोषपूर्ण होता है? क्या निर्दोष होता है? क्या [स्वभाव] विकसित करना चाहिए? क्या विकसित नहीं करना चाहिए? किस तरह के कर्म मुझे दीर्घकालीन अहित एवं दुःख की ओर ले जाएँगे? और किस तरह के कर्म मुझे दीर्घकालीन हित एवं सुख की ओर ले जाएँगे?'"

«मज्झिमनिकाय १३५ : चूळकम्मविभङ्गसुत्त»

**कौशल-नरेश प्रसेनजीत** अपने महल से उतर भगवान के पास गया और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। बैठते हुए उसने भगवान से कहा:

"अभी भन्ते! मैं महारानी मल्लिका के साथ ऊपर महल में था। मैने उससे पूछा, 'मल्लिका! क्या तुम्हें तुमसे अधिक कोई प्रिय है?'

तो उसने उत्तर दिया: 'नहीं, महाराज! मुझे मुझसे अधिक कोई प्रिय नहीं! और महाराज, आपका क्या कहना है? क्या आपको आपसे अधिक कोई प्रिय है?'

‘नहीं, मल्लिका। मुझे भी मुझसे अधिक कोई प्रिय नहीं!’”

तब उसका अर्थ जानते हुए भगवान ने सहज उद्गार किया:

“तमाम दिशाएँ दौड़ाएँ हृदय को,
कोई न मिलें प्रिय अधिक स्वयं से।
पराए भी प्रिय होते स्वयं को,
न परहिंसा करें यदि प्रेम स्वयं से।”

«उदान ५:१ : पियतरसुत्त»

“कोई आर्यश्रावक इस तरह चिंतन करता है —

• “मुझे जीवन से प्रेम है, मौत से नहीं। मुझे सुख से प्रेम है, दर्द से नफ़रत। यदि मेरी कोई हत्या करे तो मेरे लिए न प्रिय होगा, न मनचाहा। और यदि मैं किसी पराए की हत्या करूँ, जिसे जीवन से प्रेम हो, मौत से नहीं; जिसे सुख से प्रेम हो, दर्द से नफ़रत, तो उसके लिए भी न प्रिय होगा, न मनचाहा। जो मेरे लिए अप्रिय अनचाहा है, वही पराए के लिए भी अप्रिय अनचाहा है। जो मेरे लिए अप्रिय अनचाहा हो, वही मैं पराए पर कैसे थोप सकता हूँ?”

— इस तरह चिंतन कर वह जीवहत्या से विरत रहता है। दूसरे को भी जीवहत्या से विरत रखता है। तथा जीवहत्या से विरत रहने की प्रशंसा करता है। इस तरह उसका काया-आचरण «तिकोटिपरिसुद्ध» तीन तरह से परिशुद्ध होता है।

आगे, वह इस तरह चिंतन करता है —

• “यदि कोई मुझसे वह चुरा ले, जो मैने उसे दिया न हो, तो मेरे लिए न प्रिय होगा, न मनचाहा...”

• “यदि कोई मेरी पत्नी [या पुत्री] के साथ व्यभिचार करे, तो मेरे लिए न प्रिय होगा, न मनचाहा...”

• “यदि कोई झूठ बोलकर मेरा अहित करे, तो मेरे लिए न प्रिय होगा, न मनचाहा...”

• “यदि कोई फूट डालनेवाली बातें कर मुझे मित्रों [या रिश्तेदारों] से विभाजित करे, तो मेरे लिए न प्रिय होगा, न मनचाहा...”

• "यदि कोई कटु बोलकर मुझे संबोधित करे, तो मेरे लिए न प्रिय होगा, न मनचाहा..."

• "यदि कोई निरर्थक बोलकर मुझे संबोधित करे, तो मेरे लिए न प्रिय होगा, न मनचाहा। और यदि मैं निरर्थक बोलकर किसी पराए को संबोधित करूँ, तो उसके लिए भी न प्रिय होगा, न मनचाहा। जो मेरे लिए अप्रिय अनचाहा है, वही पराए के लिए भी अप्रिय अनचाहा है। जो मेरे लिए अप्रिय अनचाहा हो, वही मैं पराए पर कैसे थोप सकता हूँ?"

— इस तरह चिंतन कर वह निरर्थक बोलने से विरत रहता है। दूसरे को निरर्थक बोलने से विरत रखता है। तथा निरर्थक बोलने से विरत रहने की प्रशंसा करता है। इस तरह उसका वाणी-आचरण तीन तरह से परिशुद्ध होता है।"

«संयुत्तनिकाय ५५:७ : वेळुद्वारेय्यसुत्त»

**सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बे भायन्ति मच्चुनो।**
**अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये।।**
सभी दण्ड से थर्राते, सभी मृत्यु से डरते हैं।
स्वयं पर उपमा लगाकर, न हत्या करें, न घात करें।
**सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बेसं जीवितं पियं।**
**अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये।।**
सभी दण्ड से थर्राते, सभी को जीवन प्रिय हैं।
स्वयं पर उपमा लगाकर, न हत्या करें, न घात करें।
**सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन विहिंसति।**
**अत्तनो सुखमेसानो, पेच्च सो न लभते सुखं।।**
सुख चाहते जीवों पर, जो दण्ड से हिंसा करे,
वह स्वयं जब सुख चाहे, न सुख मिले पश्चात उसे।
**सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन न हिंसति।**
**अत्तनो सुखमेसानो, पेच्च सो लभते सुखं।।**
सुख चाहते जीवों पर, जो दण्ड से न हिंसा करे,
वह स्वयं जब सुख चाहे, सुख मिले पश्चात उसे।

**मावोच फरुसं कञ्चि, वुत्ता पटिवदेय्यु तं।**
**दुक्खा हि सारम्भकथा, पटिदण्डा फुसेय्यु तं।।**
कटु न किसी से बोलें, पलटकर बोल आ गिरे
दु:ख है विवादित बातें, पलटकर दण्ड आ पड़े।
**सचे नेरेसि अत्तानं, कंसो उपहतो यथा।**
**एस पत्तोसि निब्बानं, सारम्भो ते न विज्जति।।**
न गूंज उठे जब कोई, कांस के बर्तन जैसे
प्राप्त करे निर्वाण जो, उसमें विवाद न पता चले।

«धम्मपद दण्डवग्गो १२९-१३४»

**केशपुत्र के कालाम**[14] तब भगवान के पास गए। कुछ लोग भगवान को अभिवादन कर एक-ओर बैठ गए। कुछ लोग भगवान को नम्रतापूर्ण हालचाल पूछ कर एक-ओर बैठ गए। कुछ लोग हाथ जोड़, अंजलिबद्ध वंदन कर एक-ओर बैठ गए। कोई अपना नाम-गोत्र बता कर एक-ओर बैठ गए। तथा कोई चुपचाप ही एक-ओर बैठ गए। उन्होंने एक-ओर बैठकर भगवान से कहा:

"भन्ते! कुछ श्रमण एवं ब्राह्मण [हमारे गांव] केशपुत्र आते हैं। तब वे अपनी धारणा «वाद» का खुलासा कर गुणगान करते हैं। किंतु अन्य किसी की धारणा हो, तो वे विरोध करते हैं, अपशब्द कहते हैं, घृणा दिखाते हैं, निंदा करते हैं। और तब अन्य श्रमण एवं ब्राह्मण केशपुत्र आते हैं। वे अपनी धारणा का खुलासा कर गुणगान करते हैं। किंतु वे भी अन्य किसी की धारणा हो, तो विरोध करते हैं, अपशब्द कहते हैं, घृणा दिखाते हैं, निंदा करते हैं। वे हमें बिलकुल उलझन एवं संदेह में डाल देते हैं। तो भन्ते, इनमें कौन पूज्य श्रमण एवं ब्राह्मण सत्य बोलते हैं, और कौन झूठ बोलते हैं?"

"ज़रूर उलझन होगी, कालामों! ज़रूर संदेह होगा! संदेह का कारण हो, तभी उलझन होती है। जब ऐसा हो कालामों, तब —

[14] **कालाम सुत्त** एक महत्वपूर्ण सूत्र है जो आधुनिक दुनिया में बहुत लोकप्रिय है। दुर्भाग्य से, इसका अनुवाद अक्सर गलत तरीके से किया जाता है। कुछ लोग पुरानी परंपराओं को तोड़ने के लिए तथागत की वाणी को तोड़-मरोड़कर अपने तरीके से प्रस्तुत करते हैं। यह एक गंभीर पाप है क्योंकि यह सद्धर्म का आपत्तिजनक मिथ्याकरण है। कुछ गलत अनुवादों में लिखा होता है कि "कोई भी बात तभी मानें, जब आपकी तर्कबुद्धि को सही लगे।" जबकि तथागत तर्कबुद्धि को भी त्यागने कहते हैं। वे कहते हैं कि हमें अपने भीतर के धर्मस्वभाव 'लोभ द्वेष मोह' पर ध्यान देना चाहिए, और उन्हें कुशल अथवा अकुशल इत्यादि में वर्गीकृत कर, अकुशल का त्याग करना चाहिए। तथा हमें पञ्चशील का पालन करना चाहिए। तथागत ने कई सूत्रों में कहा है कि हमें लोक-परलोक का दांव सुरक्षा के साथ खेलना चाहिए। हमें जोखिम नहीं उठाना चाहिए। तर्क को सही मानकर "बिन्दास" होना मूर्खता है।

**«मा अनुस्सवेन»** न सुनी-सुनाई बात मानो,

**«मा परम्पराय»** न [चली आ रही] परंपरागत बात मानो,

**«मा इतिकिराय»** न अटकलेबाजी मानो,

**«मा पिटकसम्पदानेन»** न शास्त्र-ग्रंथों की बात मानो,

**«मा तक्कहेतु»** न तर्कसंगत कारण मानो,

**«मा नयहेतु»** न अनुमानित कारण मानो,

**«मा आकारपरिवितक्केन»** न समतुल्य परिस्थिति में लागू होने वाली बात मानो,

**«मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया»** न अपनी धारणा से मेल खाने वाली बात मानो,

**«मा भब्बरूपताय»** न संभावित बात मानो,

**«मा समणो नो गरूति»** न श्रमण गुरु के सम्मानार्थ मानो।

बल्कि कालामों, जब तुम्हें स्वयं पता चले — 'यह स्वभाव **अकुशल** है। यह स्वभाव **दोषपूर्ण** है। यह स्वभाव **ज्ञानियों द्वारा निंदित** है। यह स्वभाव मानने से, उस पर चलने से **अहित** होता है, **दुःख** आता है' — तब तुम्हें वह स्वभाव त्याग देना चाहिए।

क्या लगता है, कालामों? जब किसी व्यक्ति के भीतर **लोभ** उपजता हो, तो वह उसके हित के लिए उत्पन्न होगा अथवा अहित के लिए?"

"अहित के लिए, भन्ते!"

"और कोई लालची लोभ के वशीभूत, लोभचित्त से बेकाबू होकर — जीवहत्या करे, चोरी करे, पराई औरत के पीछे जाए, झूठ बोले, और यह दुसरों से भी करवाए, तो क्या वह उसके दीर्घकालीन अहित और दुःख के लिए होगा?"

"हाँ, भन्ते!"

"और कालामों! जब किसी व्यक्ति के भीतर **द्वेष** उपजता हो, तो वह उसके हित के लिए उत्पन्न होगा अथवा अहित के लिए?"

"अहित के लिए, भन्ते!"

"और कोई दुष्ट द्वेष के वशीभूत, द्वेषचित्त से बेकाबू होकर — जीवहत्या करे, चोरी करे, पराई औरत के पीछे जाए, झूठ बोले, और यह दुसरों से भी करवाए, तो क्या वह उसके दीर्घकालीन अहित और दुःख के लिए होगा?"

"हाँ, भन्ते!"

“और कालामों! जब किसी व्यक्ति के भीतर **भ्रम** उपजता हो, तो वह उसके हित के लिए उत्पन्न होगा अथवा अहित के लिए?”

“अहित के लिए, भन्ते!”

“और कोई मूढ़ भ्रम के वशीभूत, भ्रमित चित्त से बेकाबू होकर — जीवहत्या करे, चोरी करे, पराई औरत के पीछे जाए, झूठ बोले, और यह दुसरों से भी करवाए, तो क्या वह उसके दीर्घकालीन अहित और दुःख के लिए होगा?”

“हाँ, भन्ते!”

“क्या लगता है, कालामों? यह स्वभाव कुशल हैं अथवा अकुशल?”

“अकुशल, भन्ते!”

“दोषपूर्ण है अथवा निर्दोष?”

“दोषपूर्ण, भन्ते!”

“ज्ञानियों द्वारा निंदित है अथवा प्रशंसित?”

“निंदित, भन्ते!”

“उसे मानने से, उस पर चलने से अहित होता है, दुःख आता है अथवा नहीं? या क्या लगता है?”

“उसे मानने से, उस पर चलने से अहित होता है, भन्ते! दुःख आता है। ऐसा ही हमें लगता है।”

“इसलिए कहता हूँ, कालामों। न सुनी-सुनाई बात मानो, न परंपरागत बात मानो, न अटकलेबाजी मानो, न शास्त्र-ग्रंथों की बात मानो, न तर्कसंगत कारण मानो, न अनुमानित कारण मानो, न समतुल्य परिस्थिति में लागू होती बात मानो, न अपनी धारणा से मेल खाती बात मानो, न संभावित बात मानो, न श्रमण गुरु के सम्मानार्थ मानो। बल्कि कालामों, जब तुम्हें स्वयं पता चले — ‘यह स्वभाव अकुशल है। यह स्वभाव दोषपूर्ण है। यह स्वभाव ज्ञानियों द्वारा निंदित है। यह स्वभाव मानने से, उस पर चलने से अहित होता है, दुःख आता है’ — तब तुम्हें वह स्वभाव त्याग देना चाहिए।

और कालामों! जब तुम्हें स्वयं पता चले — ‘यह स्वभाव **कुशल** है। यह स्वभाव **निर्दोष** है। यह स्वभाव **ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित** है। यह स्वभाव मानने से, उस पर चलने

से **हित** होता है, **सुख** आता है' — तब तुम्हें वह स्वभाव धारण कर उसी में रहना चाहिए।

क्या लगता है, कालामों? जब किसी व्यक्ति के भीतर **निर्लोभता** उपजती हो... **निर्द्वेषता** उपजती हो... **निर्भ्रमता** उपजती हो, तो वह उसके हित के लिए उत्पन्न होगी अथवा अहित के लिए?"

"हित के लिए, भन्ते!"

"और कोई निर्लोभी न लोभ के वशीभूत, न लोभचित्त से बेकाबू होकर... [अथवा] कोई निर्द्वेषी न द्वेष के वशीभूत, न द्वेषचित्त से बेकाबू होकर... [अथवा] कोई निर्भ्रमी न भ्रम के वशीभूत, न भ्रमचित्त से बेकाबू होकर — जीवहत्या न करे, चोरी न करे, पराई औरत के पीछे न जाए, झूठ न बोले, और न ही दुसरों से करवाए, तो क्या वह उसके दीर्घकालीन हित और सुख के लिए होगा?"

"हाँ, भन्ते!"

"और क्या लगता है, कालामों? यह स्वभाव कुशल है अथवा अकुशल?"

"कुशल, भन्ते!"

"दोषपूर्ण है अथवा निर्दोष?"

"निर्दोष, भन्ते!"

"ज्ञानियों द्वारा निंदित है अथवा प्रशंसित?"

"प्रशंसित, भन्ते!"

"उसे मानने से, उस पर चलने से हित होता है, सुख आता है अथवा नहीं? या क्या लगता है?"

"उसे मानने से, उस पर चलने से हित होता है, भन्ते! सुख आता है। ऐसा ही हमें लगता है।"

"इसलिए कहता हूँ, कालामों। न सुनी-सुनाई बात मानो, न परंपरागत बात मानो, न अटकलेबाजी मानो, न शास्त्र-ग्रंथों की बात मानो, न तर्कसंगत कारण मानो, न अनुमानित कारण मानो, न समतुल्य परिस्थिति में लागू होती बात मानो, न अपनी धारणा से मेल खाती बात मानो, न संभावित बात मानो, न श्रमण गुरु के सम्मानार्थ मानो। बल्कि कालामों, जब तुम्हें स्वयं पता चले — 'यह स्वभाव कुशल है। यह स्वभाव

निर्दोष है। यह स्वभाव ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित है। यह स्वभाव मानने से, उस पर चलने से हित होता है, सुख आता है' — तब तुम्हें वह स्वभाव धारण कर उसी में रहना चाहिए।

अब, जो आर्यश्रावक होता है, कालामों! इस तरह लालसा छोड़, दुर्भावना छोड़, मूढ़ता छोड़, सचेत एवं स्मरणशील होकर **सद्भाव चित्त... करुण चित्त... प्रसन्न चित्त... तटस्थ चित्त** को एक-दिशा में फैलाकर व्याप्त करता है। उसी तरह दूसरी-दिशा में... तीसरी-दिशा में... चौथी-दिशा में... ऊपर... नीचे... तत्र सर्वत्र... संपूर्ण ब्रह्मांड में निर्बैर निर्द्वेष, विस्तृत विराट असीम चित्त फैलाकर परिपूर्णतः व्याप्त करता है।

इस तरह आर्यश्रावक निर्बैर चित्त से, दुर्भावहीन चित्त से, अदुषित चित्त से, विशुद्ध चित्त से **इसी जीवन में चार आश्वासन** अर्जित करता है —

• 'यदि [मरणोपरांत] वाकई परलोक है तथा सुकृत्य एवं दुष्कृत्य का फ़ल-परिणाम है, तब मैं इस [कुशल] आधार पर मरणोपरांत सद्गति पाकर स्वर्ग में उत्पन्न होऊँगा!' — यह प्रथम आश्वासन वह अर्जित करता है।

• 'यदि परलोक नहीं होता तथा सुकृत्य एवं दुष्कृत्य का फ़ल-परिणाम भी नहीं होता है, तब मैं इसी जीवन में निर्बैर रहकर, दुर्भावहीन रहकर, कष्टमुक्त रहकर स्वयं की सुखपूर्वक देखभाल करूँगा!' — यह द्वितीय आश्वासन वह अर्जित करता है।

• 'यदि बुरा करने से वाकई पाप होता है, तब मैंने किसी के प्रति बुरा इरादा नहीं रखा है। जब पाप न किया हो, तो मुझे दुःख कहाँ से छुएगा?' — यह तृतीय आश्वासन वह अर्जित करता है।

• 'यदि बुरा करने से पाप नहीं होता है, तब मैं स्वयं को [धार्मिक अथवा सामाजिक] दोनों ही ओर से परिशुद्ध मान सकता हूँ!' — यह चतुर्थ आश्वासन वह अर्जित करता है।"

«अंगुत्तरनिकाय ३:६६ : केसमुत्तिसुत्त»

[भगवान पुत्र **राहुल** को प्राथमिक अंतर्ज्ञान विकसित करने की देशना देते हुए कहते हैं:]

"क्या लगता है तुम्हें, राहुल? दर्पण क्यों होता है?"

"भन्ते! आत्म-निरीक्षण के लिये।"

"उसी तरह, राहुल! आत्म-निरीक्षण कर, पुनर्निरीक्षण कर काया से कर्म करना चाहिये। आत्म-निरीक्षण कर, पुनर्निरीक्षण कर वाणी से कर्म करना चाहिये। आत्म-निरीक्षण कर, पुनर्निरीक्षण कर मन से कर्म करना चाहिये।

(शरीर से कर्म)

• जब काया से कार्य करना हो, तो **करने पूर्व** [भविष्यकाल के लिए] आत्म-निरीक्षण करना चाहिये — 'जो मैं करना चाहता हूँ, कहीं मुझे पीड़ा [आत्मपीड़ा] तो नहीं होगी? या पराए को पीड़ा [परपीड़ा] तो नहीं होगी? या [दोनों को] आपसी पीड़ा तो नहीं होगी? क्या वह कार्य अकुशल तो नहीं, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद होगा?'

पुनर्निरीक्षण कर यदि पता चले — 'यह काया-कर्म अकुशल है, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद होगा!' तब राहुल! ऐसा कर्म तुम्हारे लिए सर्वथा अयोग्य है। ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये। किंतु यदि पता चले — 'कुशल है, जो परिणामतः सुख, फ़लस्वरूप सुखद होगा!' तब ऐसा कार्य करना चाहिए।

• काया से कार्य **करते हुए** [वर्तमानकाल के लिए] आत्म-निरीक्षण करना चाहिये — 'जो मैं कर रहा हूँ, कहीं मुझे.. या पराए को.. या आपसी पीड़ा तो नहीं हो रही है? क्या वह अकुशल तो नहीं, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हो रहा है?'

पुनर्निरीक्षण कर यदि पता चले — 'यह अकुशल है, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हो रहा है!' तब उसे तुरंत रोककर त्याग देना चाहिए। किंतु यदि पता चले — 'कुशल है, जो परिणामतः सुख, फ़लस्वरूप सुखद हो रहा है!' तब ऐसा कार्य जारी रखना चाहिए।

• काया से कार्य **करने पश्चात** [भूतकाल के लिए] आत्म-निरीक्षण करना चाहिये — 'मैंने जो किया, कहीं मुझे.. या पराए को.. या आपसी पीड़ा तो नहीं हुई? क्या वह अकुशल तो नहीं था, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हुआ!'

पुनर्निरीक्षण कर यदि पता चले — 'वह अकुशल था, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हुआ!' तब ऐसे कृत्य को गुरु समक्ष, या जानकर सब्रह्मचारी [या बुद्धिमान धर्ममित्र] के समक्ष कह देना चाहिये, खोल देना चाहिये। यूं कहकर, खोलकर भविष्य में संयम बरतना चाहिये। किंतु यदि पता चले — 'कुशल था, जो परिणामतः सुख, फ़लस्वरूप सुखद हुआ!' तब प्रसन्न होना चाहिए, ख़ुश होना चाहिए। और दिन-रात ऐसे कुशल धर्मों में अभ्यासरत रहना चाहिए।

(वाणी से कर्म)

• जब वाणी से कुछ कहना हो, तो **कहने पूर्व** आत्म-निरीक्षण करना चाहिये — 'जो मैं कहना चाहता हूँ, कहीं मुझे.. या पराए को.. या आपसी पीड़ा तो नहीं होगी? क्या वचन अकुशल तो नहीं, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद होगा?'

पुनर्निरीक्षण कर यदि पता चले — 'यह वाणी-कर्म अकुशल है, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद होगा!' तब राहुल! ऐसे वचन तुम्हारे लिए सर्वथा अयोग्य है। ऐसा कोई वचन नहीं कहना चाहिये। किंतु यदि पता चले — 'कुशल है, जो परिणामतः सुख, फ़लस्वरूप सुखद होगा!' तब ऐसे वचन कहना चाहिए।

• वाणी से **कहते हुए** आत्म-निरीक्षण करना चाहिये — 'जो मैं कह रहा हूँ, कही मुझे.. या पराए को.. या आपसी पीड़ा तो नहीं हो रही है? क्या वह अकुशल तो नहीं, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हो रहा है?'

पुनर्निरीक्षण कर यदि पता चले — 'यह अकुशल है, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हो रहा है!' तब उसे तुरंत रोककर त्याग देना चाहिए। किंतु यदि पता चले — 'यह कुशल है, जो परिणामतः सुख, फ़लस्वरूप सुखद हो रहा है!' तब ऐसे कहना जारी रखना चाहिए।

• वाणी से **कहने पश्चात** आत्म-निरीक्षण करना चाहिये — 'मैंने जो यह कह दिया, कही मुझे.. या पराए को.. या आपसी पीड़ा तो नहीं हुई? क्या वह अकुशल तो नहीं था, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हुआ?'

पुनर्निरीक्षण कर यदि पता चले — 'यह अकुशल था, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हुआ!' तब ऐसे वचन को गुरु समक्ष, या बुद्धिमान धर्ममित्र के समक्ष कह देना चाहिये, खोल देना चाहिये। यूं कहकर, खोलकर भविष्य में संयम बरतना चाहिये। किंतु यदि पता चले — 'कुशल था, जो परिणामतः सुख, फ़लस्वरूप सुखद हुआ!' तब प्रसन्न होना चाहिए, ख़ुश होना चाहिए। और दिन-रात ऐसे कुशल धर्मों में अभ्यासरत रहना चाहिए।

(मन से कर्म)

• जब मन से कुछ सोचना हो, तो **सोचने पूर्व** आत्म-निरीक्षण करना चाहिये — 'जो मैं सोचना चाहता हूँ, कही मुझे.. या पराए को.. या आपसी पीड़ा तो नहीं होगी? क्या वह अकुशल तो नहीं, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद होगा?'

पुनर्निरीक्षण कर यदि पता चले — 'यह मनो-कर्म अकुशल है, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद होगा!' तब राहुल! ऐसा सोचना तुम्हारे लिए सर्वथा अयोग्य है। ऐसा कुछ सोचना नहीं चाहिये। किंतु यदि पता चले — 'कुशल है, जो परिणामतः सुख, फ़लस्वरूप सुखद होगा!' तब ऐसा सोचना चाहिए।

• मन से कुछ **सोचते हुए** आत्म-निरीक्षण करना चाहिये — 'जो मैं सोच रहा हूँ, कही मुझे.. या पराए को.. या आपसी पीड़ा तो नहीं हो रही है? क्या वह अकुशल तो नहीं, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हो रहा है?'

पुनर्निरीक्षण कर यदि पता चले — 'यह अकुशल है, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हो रहा है!' तब राहुल! उसे तुरंत रोककर त्याग देना चाहिए। किंतु यदि पता चले — 'कुशल है, जो परिणामतः सुख, फ़लस्वरूप सुखद हो रहा है!' तब ऐसा कुछ सोचना चाहिए।

• मन से कुछ **सोचने पश्चात** आत्म-निरीक्षण करना चाहिये — 'मैंने जो सोचा, कही मुझे.. या पराए को.. या आपसी पीड़ा तो नहीं हुई? क्या वह अकुशल तो नहीं था, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हुआ!'

पुनर्निरीक्षण कर यदि पता चले — 'यह अकुशल था, जो परिणामतः दुःख, फ़लस्वरूप दुखद हुआ!' तब राहुल! ऐसे सोचने से मन खिन्न होना चाहिये, लज्जित होना चाहिये, घृणित होना चाहिये। ऐसे मन खिन्न हो, लज्जित हो, घृणित हो भविष्य में संयम बरतना चाहिये। किंतु यदि पता चले — 'कुशल था, जो परिणामतः सुख, फ़लस्वरूप सुखद हुआ!' तब प्रसन्न होना चाहिए, ख़ुश होना चाहिए। और दिन-रात ऐसे कुशल धर्मों में अभ्यासरत रहना चाहिए।

राहुल! जो श्रमण एवं ब्राह्मणों ने **अतीतकाल** में अपने काया, वाणी एवं मनो कर्म परिशुद्ध किए, सभी ने इसी तरह आत्म-निरीक्षण कर, पुनर्निरीक्षण कर किए। जो श्रमण एवं ब्राह्मण **भविष्यकाल** में अपने काया, वाणी एवं मनो कर्म परिशुद्ध करेंगे, सभी इसी तरह आत्म-निरीक्षण कर, पुनर्निरीक्षण कर करेंगे। तथा जो श्रमण एवं ब्राह्मण **वर्तमानकाल** में अपने काया, वाणी एवं मनो कर्म परिशुद्ध कर रहे हैं, सभी इसी तरह आत्म-निरीक्षण कर, पुनर्निरीक्षण कर रहे हैं।

इसलिये राहुल, तुम्हें सीखना चाहिये — 'मैं भी इसी तरह आत्म-निरीक्षण कर, पुनर्निरीक्षण कर अपने काया, वाणी एवं मनो कर्म परिशुद्ध करूँगा।'"

«मज्झिमनिकाय ६१ : अम्बलट्ठिकराहुलोवादसुत्त»

“यदि **अनचाहा** कार्य हो, किंतु करने से अर्थ साध्य [=लाभ] होता हो — तब उसी से पता चलता है कि कर्ता मूर्ख है अथवा बुद्धिमान। उसमें निश्चयबद्धता, दृढ़ता एवं पराक्रमी पुरुषार्थ है अथवा नहीं। क्योंकि इस तरह मूर्ख कभी चिंतन नहीं करते हैं कि ‘भले ही अनचाहा कार्य है, किंतु उसे करने से अर्थ साध्य होता है।’ इसलिए मूर्ख ऐसा अनचाहा कार्य नहीं करते हैं और उनका अनर्थ होता है।

किंतु इस तरह बुद्धिमान चिंतन करता है कि ‘भले ही अनचाहा कार्य है, किंतु उसे करने से अर्थ साध्य होता है।’ तब बुद्धिमान ही ऐसा अनचाहा कार्य करता है और अपना लक्ष्य साध लेता है।

और यदि **मनचाहा** कार्य हो, किंतु करने से अनर्थ होता हो — तब उसी से पता चलता है कि कर्ता मूर्ख है अथवा बुद्धिमान। उसमें निश्चयबद्धता, दृढ़ता एवं पराक्रमी पुरुषार्थ है अथवा नहीं। क्योंकि इस तरह मूर्ख कभी चिंतन नहीं करते हैं कि ‘भले ही मनचाहा कार्य है, किंतु उसे करने से अनर्थ होता है।’ इसलिए मूर्ख ऐसा मनचाहा कार्य करते हैं और उनका अनर्थ होता है।

किंतु इस तरह बुद्धिमान चिंतन करता है कि ‘भले ही मनचाहा कार्य है, किंतु उसे करने से अनर्थ होता है।’ तब बुद्धिमान ऐसा मनचाहा कार्य नहीं करता है और अपना लक्ष्य साध लेता है।”

«अंगुत्तरनिकाय ४:११५ : ठानसुत्त»

**मत्तासुखपरिच्चागा, पस्से चे विपुलं सुखं।**
**चजे मत्तासुखं धीरो, सम्पस्सं विपुलं सुखं।।**
थोड़े सुख के परित्याग से, दिखे यदि विपुल सुख।
त्याग दे थोड़ा सुख, विद्वान, देखते हुए विपुल सुख।।

«धम्मपद पकिण्णकवग्गो २९०»

**अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।**
**अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं।।**
स्वयं ही अपने मालिक है। भला कौन पराया मालिक होगा?
स्वयं ही सुअभ्यस्त हो, तो मालिक प्राप्त हो दुर्लभ।।

«धम्मपद अत्तवग्गो १६०»

**अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति।**

**तस्मा संयममत्तानं, अस्सं भद्रंव वाणिजो।।**

स्वयं ही अपने मालिक है। स्वयं ही रचते अपनी दिशा।

रखे काबू स्वयं पर, जैसे व्यापारी उत्तम अश्व पर।।

«धम्मपद भिक्षुवग्गो ३८०»

**अत्तना हि कतं पापं, अत्तना संकिलिस्सति।**

**अत्तना अकतं पापं, अत्तनाव विसुज्झति।**

**सुद्धी असुद्धि पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये।।**

स्वयं ही पाप करे, दूषित होए स्वयं ही।

पाप स्वयं अकृत रखे, पवित्र होए स्वयं ही।

न कोई अन्य को पवित्र करे, शुद्ध-अशुद्ध होए स्वयं ही।।

«धम्मपद अत्तवग्गो १६५»

स्वयं को स्वयं फटकारें, स्वयं का निरीक्षण करें।

ऐसा स्वरक्षित स्मृतिमान, तब सुख से विहार करें।।

«धम्मपद भिक्षुवग्गो ३७९»

**अहिंसका ये मुनयो, निच्चं कायेन संवुता।**

**ते यन्ति अच्चुतं ठानं, यत्थ गन्त्वा न सोचरे।।**

जो मुनि अहिंसक हो, काया में सदैव संयत रहे।

जहाँ जाकर न शोक हो, ऐसा अच्युत स्थान पाए।।

«धम्मपद कोधवग्गो २२५»

**सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।**

**येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं बुद्धगता..**

**धम्मगता.. सङ्घगता.. कायगता सति।।**

सदा जागृत गोतम के शिष्य, सु-प्रबुद्ध बनते हैं।

दिन अथवा रात हो, सदैव बुद्ध में..

धम्म में.. संघ में.. काया में स्मरणशील रहते हैं।

«धम्मपद पकिण्णकवग्गो २९६-२९९»

**ददतो पुञ्ञं पवड्ढति, संयमतो वेरं न चीयति।**
**कुसलो च जहाति पापकं, रागदोसमोहक्खया सनिब्बुतो।**

दायक के पुण्य बढ़ते जाए।
संयमी के बैर न संचित हो।
पाप पीछे छोड़कर, ऐसा कुशल
राग-द्वेष-भ्रम ख़त्म कर निर्वृत हो।

«उदान ८:५ : चुन्दसुत्त»

★ ★ ★

# पुण्य

**साल गांव के ब्राह्मण गृहस्थों** ने एक-ओर बैठकर भगवान से कहा:

“हे गोतम! क्या कारण एवं परिस्थिति से कुछ सत्व मरणोपरांत काया छूटने पर सद्गति होकर स्वर्ग उपजते हैं?”

“**धर्मचर्या समचर्या** के कारण, गृहस्थों, कुछ सत्व मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग उपजते हैं। काया से तीन तरह की, वाणी से चार तरह की, तथा मन से तीन तरह की धर्मचर्या समचर्या होती हैं।

**काया से** तीन तरह की धर्मचर्या समचर्या कैसे होती हैं?

• ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति हिंसा त्यागकर **जीवहत्या से विरत** रहता है — डंडा एवं शस्त्र फेंक चुका, शर्मिला एवं दयावान, समस्त जीवहित के प्रति करुणामयी।

• कोई व्यक्ति ‘न सौंपी चीज़ें’ त्यागकर **चुराने से विरत** रहता है। गांव या जंगल से न दी गई, न सौंपी, पराई वस्तु चोरी की इच्छा से नहीं उठाता, नहीं लेता है। बल्कि मात्र सौंपी चीज़ें ही उठाता, स्वीकारता है। पावन जीवन जीता है, चोरी चुपके नहीं।

• वह कामुक मिथ्याचार त्यागकर **व्यभिचार से विरत** रहता है। वह उनसे संबन्ध नहीं बनाता है — जो माता से संरक्षित हो, पिता से संरक्षित हो, भाई से संरक्षित हो, बहन से संरक्षित हो, रिश्तेदार से संरक्षित हो, गोत्र से संरक्षित हो, धर्म से संरक्षित हो, जिसका पति [या पत्नी] हो, जिससे संबन्ध दण्डनिय हो, अथवा जिसे अन्य पुरुष ने फूल से नवाजा [=सगाई या प्रेमसंबन्ध] हो। ऐसे तीन तरह से काया द्वारा धर्मचर्या समचर्या होती हैं।

**वाणी से** चार तरह की धर्मचर्या समचर्या कैसे होती हैं?

• ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति झूठ बोलना त्यागकर **असत्यवचन से विरत** रहता है। जब उसे नगरबैठक, गुटबैठक, रिश्तेदारों की सभा, अथवा किसी संघ या न्यायालय में बुलाकर गवाही देने कहा जाए, "आईये! बताएँ श्रीमान! आप क्या जानते है?" तब यदि न जानता हो तो कहता है "मैं नहीं जानता!" यदि जानता हो तो कहता है "मैं जानता हूँ!" यदि उसने न देखा हो तो कहता है "मैंने नहीं देखा!" यदि देखा हो तो कहता है "मैंने ऐसा देखा!" इस तरह वह आत्महित में, परहित में, अथवा ईनाम की चाह में झूठ नहीं बोलता है।

• कोई व्यक्ति विभाजित करनेवाली बातें त्यागकर **फूट डालनेवाली बातों से विरत** रहता है। यहाँ सुनकर वहाँ नहीं बताता, ताकि वहाँ दरार पड़े। वहाँ सुनकर यहाँ नहीं बताता, ताकि यहाँ दरार पड़े। बल्कि वह बटे हुए लोगों का मेल कराता, साथ रहते लोगों को जोड़ता, एकता चाहता, भाईचारे में रत रहता, मेलमिलाप में प्रसन्न होता। ऐसे बोल बोलता है कि सामंजस्यता बढ़े।

• कोई व्यक्ति तीखा बोलना त्यागकर **कटु वचन से विरत** रहता है। वह ऐसे मीठे बोल बोलता है — जो राहत दे, कर्णमधुर लगे, हृदय छू ले, स्नेहपूर्ण हो, सौम्य हो, अधिकांश लोगों को अनुकूल एवं स्वीकार्य लगे।

• कोई व्यक्ति बकवास त्यागकर **निरर्थक वचन से विरत** रहता है। वह समय पर, तथ्यों के साथ, अर्थपूर्ण [हितकारक], धर्मानुकूल, विनयानुकूल बोलता है। बहुमूल्य लगे ऐसे सटीक वचन बोलता है — तर्क के साथ, नपेतुले शब्दों में, सही समय पर, सही दिशा में, ध्येय के साथ। ऐसे चार तरह से वाणी द्वारा धर्मचर्या समचर्या होती हैं।

**मन से** तीन तरह की धर्मचर्या समचर्या कैसे होती हैं?

• ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति **लालची नहीं** होता है। वह पराई संपत्ति की लालसा नहीं रखता है, 'काश, वह पराई चीज़ मेरी हो जाए!'

• कोई व्यक्ति **सद्भाव चित्त का** होता है। वह मन में भला संकल्प पालता है, 'यह सत्व बैरमुक्त हो! पीड़ामुक्त हो! कष्टमुक्त हो! सुखपूर्वक अपना ख्याल रखें!'

• कोई व्यक्ति **सम्यकदृष्टि** धारण करता है। वह सीधे दृष्टिकोण से देखता है — 'दान होता है, चढ़ावा होता है, आहुती होती है। सुकृत्य या दुष्कृत्य कर्मों का फ़ल-

परिणाम होता है। लोक होता है, परलोक होता है। मां होती है, पिता होते है। स्वयं से उत्पन्न सत्व होते हैं। और ऐसे श्रमण एवं ब्राह्मण होते हैं, जो सम्यक साधना कर सही प्रगति करते हुए अभिज्ञता का साक्षात्कार करने पर लोक-परलोक होने की घोषणा करते हैं।' ऐसे तीन तरह से मन द्वारा धर्मचर्या समचर्या होती हैं। तथा गृहस्थों, ऐसी धर्मचर्या समचर्या के कारण कुछ सत्व मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग उपजते हैं।

गृहस्थों, यदि ऐसा धर्मचारी समचारी आकांक्षा करे, 'काश! मैं मरणोपरांत काया छूटने पर महासंपत्तिशाली [क्षत्रिय] राजपरिवार में... या महासंपत्तिशाली ब्राह्मणों में... या महासंपत्तिशाली [वैश्य] गृहस्थों में जन्म लूँ,' तो संभव है, मरणोपरांत वह उन्हीं के साथ जन्म लेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धर्मचारी समचारी है।

गृहस्थों, यदि ऐसा धर्मचारी समचारी आकांक्षा करे, 'काश! मैं मरणोपरांत चार महाराज[15] देवताओं में... तैतीस देवताओं में... याम देवताओं में... तुषित देवताओं में... निर्माणरति देवताओं में... परनिर्मित वशवर्ती देवताओं में जन्म लूँ,' तो संभव है, मरणोपरांत वह उन्हीं के साथ जन्म लेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धर्मचारी समचारी है।

यदि गृहस्थों, ऐसा धर्मचारी समचारी आकांक्षा करे, 'काश! मैं मरणोपरांत ब्रह्म-काया वाले देवताओं में... आभावान [प्रकाशमान] देवताओं में... सीमित आभावान देवताओं में... असीम आभावान देवताओं में... आभस्वर [प्रस्फुटित होती आभा] देवताओं में... सीमित दीप्तिमान देवताओं में... असीम दीप्तिमान देवताओं में... दीप्तिमान कृष्ण देवताओं में... वेहफ़्फ़ल [आकाशफ़ल] देवताओं में... अविह [पतन न होने वाले] देवताओं में... अतप्प [निश्चिंत] देवताओं में... सुदर्शन देवताओं में... सुदर्शी देवताओं में... अकनिष्ठ [अद्वितीय] देवताओं में [चार ज्ञान से प्राप्त ब्रह्मलोक] जन्म लूँ!' तो संभव है, मरणोपरांत वह उन्हीं में जन्म लेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धर्मचारी समचारी है।

---

[15] कहा जाता है कि पृथ्वी की चारों दिशाओं में **गन्धर्व, यक्ष, कुम्भण्ड और नाग** नामक चार तरह के देवतागण रहते हैं। इनमें से कुछ अराजक सत्व मानवों को कष्ट भी देते हैं। पालि त्रिपिटक के अनुसार, इन चार देवतागणों के चार महाराज हैं। ये महाराज तैतीस देवताओं के महाराज **देवेंद्र सक्क** (अर्थात् सक्षम — इंद्र का व्यक्तिगत नाम) के आदेशानुसार अपना राजपाट चलाते हैं।

- पूर्व दिशा में गंधर्वों का महाराज **धृतराष्ट्र** (धतरट्ठ) है।
- दक्षिण दिशा में कुम्भण्डों का महाराज **विरुल्हक** (विरुळ्ह) है।
- पश्चिम दिशा में नागों का महाराज **विरुपाक्ष** (विरुपाक्ख) है।
- उत्तर दिशा में यक्षों का महाराज **कुबेर या वैष्णव** (वेस्सवण्ण) है।

इन चार महाराजाओं ने आकर भगवान बुद्ध को अपने अराजक सत्वों से रक्षा हेतु 'आटानाटिय रक्षामंत्र' दिया था। यह मंत्र दीघनिकाय आटानाटियसुत्त में वर्णित है।

गृहस्थों, यदि ऐसा धर्मचारी समचारी आकांक्षा करे, ‘काश! मैं मरणोपरांत अनन्त आकाश आयाम में पहुँचे देवताओं में... अनन्त चैतन्यता आयाम में पहुँचे देवताओं में... शून्य [कुछ नहीं] आयाम में पहुँचे देवताओं में... न नज़रिया न अ-नज़रिया आयाम में पहुँचे देवताओं में [=अरूप आयाम ब्रह्मलोक] जन्म लूँ,’ तो संभव है, मरणोपरांत वह उन्हीं के साथ जन्म लेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धर्मचारी समचारी है।

यदि गृहस्थों, ऐसा धर्मचारी समचारी आकांक्षा करे, ‘काश! मैं इसी जीवन में आस्रव [बहाव] समाप्त कर, स्वयं प्रत्यक्ष जानकर, साक्षात्कार कर, आस्रवमुक्त चेतोविमुक्ति अंतर्ज्ञानविमुक्ति में प्रवेश पाकर रहूँ,’ तो संभव है, वह इसी जीवन में आस्रव समाप्त कर, स्वयं प्रत्यक्ष जानकर, साक्षात्कार कर, आस्रवमुक्त चेतोविमुक्ति अंतर्ज्ञानविमुक्ति में प्रवेश पाकर रहेगा। [=अर्हंत अवस्था] ऐसा क्यों? क्योंकि वह धर्मचारी समचारी है।”

जब ऐसा कहा गया, तब साल गांव के ब्राह्मण गृहस्थ कह पड़े, “अतिउत्तम, भन्ते! अतिउत्तम! जैसे कोई पलटे को सीधा करे, छिपे को खोल दे, भटके को मार्ग दिखाए, या अँधेरे में दीप जलाकर दिखाए, ताकि अच्छी आँखोंवाला स्पष्ट देख पाए — उसी तरह भगवान ने धर्म को अनेक तरह से स्पष्ट कर दिया। हम बुद्ध की शरण जाते हैं! धर्म एवं संघ की! भगवान हमें आज से लेकर प्राण रहने तक शरणागत उपासक धारण करें!”

«मज्झिमनिकाय ४१ : सालेय्यकसुत्त»

भगवान ने **तोदेय्यपुत्र कुमार सुभ** को आगे कहा:

“• कुमार! ऐसा होता है कि कोई स्त्री या पुरुष **जीवहत्या से विरत** रहते हैं — डंडा एवं शस्त्र फेंक चुके, शर्मिले एवं दयावान, समस्त जीवहित के प्रति करुणामयी! वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **दीर्घायु** होते हैं। यही दीर्घायुता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **जीवों को प्रताड़ित नहीं** करते हैं — न हाथ से, न पत्थर से, न डंडे से, न ही शस्त्र से। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **अल्परोगी** होते हैं। यही अल्परोगीता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **न क्रोधी, न ही व्याकुल** होते हैं — बड़ी बात पर भी न क्रोधित होते, न कुपित होते, न विद्रोह करते, न ही विरोध करते हैं। न गुस्सा, न द्वेष, न ही खीज प्रकट करते हैं। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **सुंदर** होते हैं। यही सौंदर्यता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **ईर्ष्यालु नहीं** होते हैं — पराए को मिलता लाभ सत्कार, आदर सम्मान, वंदन पूजन से न जलते हैं, न कुढ़ते हैं, न ही ईर्ष्या करते हैं। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **प्रभावशाली** होते हैं। यही प्रभावशीलता [बहुसक्षमता] की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **दाता** होते हैं — श्रमण एवं ब्राह्मणों को भोजन पान, वस्त्र वाहन, माला गन्ध लेप, बिस्तर निवास दीपक आदि दान देते हैं। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **ऐश्वर्यशाली** होते हैं। यही ऐश्वर्यता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष **अहंकारी नहीं** होते हैं — बल्कि वंदनीय लोगों को वंदन करते, खड़े होने योग्य के लिए खड़े होते, आसन देने योग्य को आसन देते, रास्ता छोड़ने योग्य के लिए रास्ता छोड़ते हैं। तथा सत्कारयोग्य आदरणीय सम्माननीय या पूजनीय लोगों का सत्कार आदर सम्मान या पूजा करते हैं। वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **उच्चकुलीन** होते हैं। यही उच्चकुलीनता की ओर बढ़ता रास्ता है।

• और कोई स्त्री या पुरुष जाकर श्रमण या ब्राह्मण को **पूछते** हैं — 'भन्ते! क्या कुशल होता है? क्या अकुशल होता है? क्या दोषपूर्ण होता है? क्या निर्दोष होता है? क्या [स्वभाव] विकसित करना चाहिए? क्या विकसित नहीं करना चाहिए? किस तरह के कर्म मुझे दीर्घकालीन अहित एवं दुःख की ओर ले जाएँगे? और किस तरह के कर्म मुझे दीर्घकालीन हित एवं सुख की ओर ले जाएँगे?' वे ऐसा कर्म कर, उपक्रम कर मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजते हैं। मनुष्यता में लौटने पर जहाँ कही जन्म हो, **महाप्रज्ञावान** [बड़ी सद्बुद्धि प्राप्त] होते हैं। यही महाप्रज्ञता की ओर बढ़ता रास्ता है।

इस तरह कुमार, दीर्घायुता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को दीर्घायु बनाता है। अल्परोगीता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को अल्परोगी बनाता है। सौंदर्यता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को सुंदर बनाता है। प्रभावशीलता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को प्रभावशाली बनाता है। ऐश्वर्यता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को ऐश्वर्यशाली बनाता है। उच्चकुलीनता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को उच्चकुलीन बनाता है। महाप्रज्ञता की ओर बढ़ता रास्ता मानवों को महाप्रज्ञावान बनाता है।

और इस तरह सत्व स्वयं कर्म के कर्ता, कर्म के वारिस, कर्म से पैदा, कर्म से बंधे, कर्म के शरणागत हैं। और कर्म से ही सत्वों में हीनता या उत्कृष्टता का भेद होता है।"

यह सुनकर तोदेय्यपुत्र कुमार सुभ कह पड़ा, "अतिउत्तम, हे गोतम! अतिउत्तम! जैसे कोई पलटे को सीधा करे, छिपे को खोल दे, भटके को मार्ग दिखाए, या अँधेरे में दीप जलाकर दिखाए, ताकि अच्छी आँखोंवाला स्पष्ट देख पाए — उसी तरह गुरु गोतम ने धर्म को अनेक तरह से स्पष्ट कर दिया। मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ! धर्म एवं संघ की! गुरु गोतम मुझे आज से लेकर प्राण रहने तक शरणागत उपासक धारण करें!"

«मज्झिमनिकाय १३५ : चूळकम्मविभङ्गसुत्त»

"भिक्षुओं! **बुद्धिमान के तीन लक्षण** होते हैं, चिन्ह होते हैं, गुण होते हैं। कौन से तीन? बुद्धिमान भला विचारी होता है, भला बोलता है, और भला कृत्य करता है।

यदि बुद्धिमान ऐसा न होता, तो विद्वान उसे कैसे जान पाते कि "यह बुद्धिमान सत्पुरुष है"? चूंकि बुद्धिमान भला विचारी होता है, भला बोलता है, और भला कृत्य करता है, इसलिए विद्वान उसे जान पाते हैं कि "यह बुद्धिमान सत्पुरुष है!"

बुद्धिमान इसी जीवन में तीन तरह से 'राहत एवं संतुष्टि' का अनुभव करता है। जब लोग सभा में बैठकर, रास्ते के किनारे बैठकर, या चौराहे पर बैठकर [दुराचार से] जुड़ी प्रासंगिक बात पर चर्चा करने लगे — तब जो बुद्धिमान जीवहत्या से विरत, चोरी से विरत, व्यभिचार से विरत, झूठ बोलने से विरत और शराब मद्य आदि मदहोश करने वाले नशेपते से विरत रहता हो, वह सोचता है, "लोग जिस प्रासंगिक बात पर चर्चा कर रहे हैं, वह [हरकतें] मुझमें नहीं पायी जाती हैं! और मैं उनमें लिप्त होते नहीं देखा जाता हूँ!" बुद्धिमान इसी जीवन में इस पहले राहत-संतुष्टि का अनुभव करता है।

फिर, बुद्धिमान, किसी चोर या अपराधी के पकड़े जाने पर दंडस्वरूप तरह-तरह से यातनाएँ झेलते हुए देखता है — जैसे चाबुक़ से पिटते हुए, कोड़े लगते हुए, मुग्दर, बेंत या डंडों से पिटते हुए, हाथ कटते, पैर कटते... [इत्यादि तरह-तरह के उत्पीड़न] — तब वह सोचता है, "चोर या अपराधी जिन पापकर्मों के चलते पकड़ा गया और उसे शासनकर्ता [पुलिस या लोगों] ने तरह-तरह से यातनाएँ दी, वह [हरकतें] मुझमें नहीं पायी जाती हैं! और मैं उनमें लिप्त होते नहीं देखा जाता हूँ!" बुद्धिमान इसी जीवन में इस दूसरे राहत-संतुष्टि का अनुभव करता है।

फिर, जब बुद्धिमान [अकेला] कुर्सी पर बैठा हो, पलंग पर बैठा हो, या जमीन पर बैठा हो, तब पूर्व कल्याणकर्म — काया से सदाचार, वाणी से सदाचार एवं मन से सदाचार — उसपर घिर आते हैं, बिछ जाते हैं, उसे ढक देते हैं। जैसे संध्या होते जमीन पर महापर्वत चोटी की छाया घिर आती है, बिछ जाती है, उसे ढक देती है। उसी तरह जब बुद्धिमान कुर्सी, पलंग या जमीन पर बैठा हो, तब पूर्व कल्याणकर्म — काया से सदाचार, वाणी से सदाचार एवं मन से सदाचार — उसपर घिर आते हैं, बिछ जाते हैं, उसे ढक देते हैं। तब बुद्धिमान को लगता है, "मैने पाप नहीं किए, क्रूरता नहीं की, गलतियां नहीं की। बल्कि मैने कल्याणकर्म किए है, कुशल कर्म किए है, भयभीत को आसरा दिया है। जो लोग पाप, क्रूरता एवं गलतियां नहीं करते, बल्कि कल्याण करते हैं, कुशल करते हैं, भयभीत को आसरा देते हैं — जो गति उनकी होती हैं, वही गति मेरी भी होगी!" तब ऐसा लगने पर उसे अफ़सोस नहीं होता, वह ढ़ीला नहीं पड़ता, विलाप नहीं करता, छाती नहीं पीटता, बावला नहीं हो जाता। बुद्धिमान इसी जीवन में इस तीसरे राहत-संतुष्टि का अनुभव करता है।

तब वह बुद्धिमान काया से सदाचार करते हुए, वाणी से सदाचार करते हुए, एवं मन से सदाचार करते हुए मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजता है। अब यदि कोई उचित तरह से बोल पड़े, "अत्यंत इच्छित! अत्यंत प्रिय! अत्यंत मनचाहा!", तब ऐसा कहना स्वर्ग के बारे में उचित होगा। यहाँ तक कि भिक्षुओं, स्वर्ग के सुख की उपमा भी देना सरल नहीं है।"

तब एक भिक्षु ने कहा, "किंतु, भन्ते! क्या तब भी कोई उपमा दी जा सकती है?"

"दी जा सकती है, भिक्षु! कल्पना करो कि कोई **चक्रवर्ती सम्राट** हो, सात रत्नों एवं चार शक्तियों से संपन्न, और वह सुख एवं खुशी अनुभव करता हो।

**सात रत्न** क्या होते हैं, भिक्षुओं? जब कोई क्षत्रिय राजा, राजतिलक हुआ नरेश, पूर्णिमा उपोसथ के दिन सिर धोकर महल के ऊपरी उपोसथकक्ष में जाए। और वहाँ **दिव्य चक्ररत्न** प्रादुर्भुत हो — हजार तीली के साथ, नेमी के साथ, नाभी के साथ, अपने सम्पूर्ण आकार की परिपूर्णता के साथ! उसे देखकर क्षत्रिय राजा, राजतिलक हुए नरेश को लगता है, "अब मैने यह सुना है कि जब कोई क्षत्रिय राजा, राजतिलक हुआ नरेश, पूर्णिमा उपोसथ के दिन सिर धोकर महल के ऊपरी उपोसथकक्ष में जाए, और यदि वहाँ दिव्य चक्ररत्न प्रादुर्भुत हो — हजार तीली के साथ, नेमी के साथ, नाभी के साथ, अपने सम्पूर्ण आकार की परिपूर्णता के साथ — तब वह राजा 'चक्रवर्ती सम्राट' बनता है। क्या तब मैं चक्रवर्ती सम्राट बनूंगा?"

तब वह क्षत्रिय राजा, राजतिलक हुआ नरेश, अपने आसन से उठ कर बाए हाथ में जलपात्र ले, दाएँ हाथ से उस चक्ररत्न पर जल छिड़कते हुए कहता है, "प्रवर्तन करो, श्री चक्ररत्न! सर्वविजयी हो, श्री चक्ररत्न!"

तब वह चक्ररत्न प्रवर्तित होते [घूमते] **पूर्व-दिशा** में आगे बढ़ने लगता है। और चक्रवर्ती सम्राट अपनी चार अंगोवाली सेना के साथ उसका पीछा करता है। वह चक्ररत्न जिस प्रदेश में थम जाएँ, वहाँ चक्रवर्ती सम्राट अपनी चार अंगोवाली सेना के साथ आवास लेता है। तब पूर्व-दिशा के विरोधी राजा आकर चक्रवर्ती सम्राट को कहते हैं, "आईयें, महाराज! स्वागत है, महाराज! आज्ञा करें, महाराज! आदेश दें, महाराज!"

चक्रवर्ती सम्राट कहता है, "जीवहत्या ना करें! चोरी ना करें! व्यभिचार ना करें! झूठ ना बोलें! मद्य ना पिएँ! [इसके अलावा] जो खाते हैं, खाएँ!" तब पूर्व-दिशा के विरोधी राजा चक्रवर्ती सम्राट के आगे समर्पण करते हैं।

इस तरह चक्ररत्न आगे बढ़ते हुए पूर्वी महासमुद्र में डुबकी लगाकर पुनः उबरता है, और प्रवर्तित होते **दक्षिण-दिशा** में आगे बढ़ने लगता है। और चक्रवर्ती सम्राट अपनी चार अंगोवाली सेना के साथ उसका पीछा करता है।... तब दक्षिण-दिशा के विरोधी राजा चक्रवर्ती सम्राट के आगे समर्पण करते हैं। तब चक्ररत्न आगे बढ़ते हुए दक्षिण महासमुद्र में डुबकी लगाकर पुनः उबरता है, और प्रवर्तित होते **पश्चिम-दिशा** में आगे बढ़ने लगता है। और चक्रवर्ती सम्राट अपनी चार अंगोवाली सेना के साथ उसका पीछा करता है।... तब पश्चिम-दिशा के विरोधी राजा चक्रवर्ती सम्राट के आगे समर्पण करते हैं। तब चक्ररत्न आगे बढ़ते हुए पश्चिम महासमुद्र में डुबकी लगाकर पुनः उबरता है, और प्रवर्तित होते **उत्तर-दिशा** में आगे बढ़ने लगता है। और चक्रवर्ती सम्राट अपनी चार अंगोवाली सेना के

साथ उसका पीछा करता है।... तब उत्तर-दिशा के विरोधी राजा चक्रवर्ती सम्राट के आगे समर्पण करते हैं।

इस तरह चक्ररत्न पृथ्वी पर महासमुद्रों तक सर्वविजयी होकर राजधानी लौटता है, और चक्रवर्ती सम्राट के राजमहल अंतःपुर द्वार के ऊपर अक्ष लगाकर थम जाता है, जैसे अंतःपुर द्वार की शोभा बढ़ा रहा हो। ऐसा होता है चक्ररत्न, जो चक्रवर्ती सम्राट के लिए प्रादुर्भूत होता है।

फिर, चक्रवर्ती सम्राट के लिए **हाथीरत्न** प्रादुर्भुत होता है — संपूर्ण सफ़ेद, सात तरह से प्रतिस्थापित, ऋद्धिमानी, आकाश से भ्रमण करने वाला, 'उपोसथ' नामक हाथीराज! उसे देखते ही चक्रवर्ती सम्राट के चित्त में विश्वास प्रकट होता है, "बहुत शुभ होगी इस हाथी की सवारी, जो यह काबू में आए!" तब हाथीरत्न काबू में आ जाता है, जैसे कोई उत्कृष्ट जाति का राजसी हाथी दीर्घकाल तक भलीभांति काबू में रहा हो। और चक्रवर्ती सम्राट हाथीरत्न को परखने के लिए उस पर सुबह में सवार हो जाता है, और संपूर्ण पृथ्वी का महासमुद्र तक भ्रमण कर प्रातः आहार [नाश्ते] के समय तक राजधानी लौट आता है। ऐसा होता है हाथीरत्न, जो चक्रवर्ती सम्राट के लिए प्रादुर्भूत होता है।

फिर, चक्रवर्ती सम्राट के लिए **अश्वरत्न** प्रादुर्भुत होता है — संपूर्ण सफ़ेद, चमकता काला सिर, मूंजघास जैसे अयाल [गर्दन के बाल], ऋद्धिमानी, आकाश से भ्रमण करने वाला, 'वलाहक' [=गर्जनमेघ] नामक अश्वराज! उसे देखते ही चक्रवर्ती सम्राट के चित्त में विश्वास प्रकट होता है, "बहुत शुभ होगी इस घोड़े की सवारी, जो यह काबू में आए!" तब अश्वरत्न काबू में आ जाता है, जैसे कोई उत्कृष्ट जाति का राजसी घोड़ा दीर्घकाल तक भलीभांति काबू में रहा हो। और चक्रवर्ती सम्राट अश्वरत्न को परखने के लिए उस पर सुबह में सवार हो जाता है, और संपूर्ण पृथ्वी का महासमुद्र तक भ्रमण कर प्रातः आहार [नाश्ते] के समय तक राजधानी में लौट आता है। ऐसा होता है अश्वरत्न, जो चक्रवर्ती सम्राट के लिए प्रादुर्भूत होता है।

फिर, चक्रवर्ती सम्राट के लिए **मणिरत्न** प्रादुर्भुत होता है — वैदुर्य मणि, शुभ जाति का, अष्टपहलु, सुपरिष्कृत! उस मणिरत्न की आभा एक योजन [लगभग १६ किलोमीटर] तक फैलती है। और चक्रवर्ती सम्राट मणिरत्न को परखने के लिए उसे राजध्वज के शीर्ष पर नियुक्त कर, रात के घोर अंधकार में अपनी चार अंगोवाली सेना की व्यूहरचना में आगे बढ़ता है। तब उसकी आभा को दिन समझते हुए आसपास के

सभी गांवों की जनता दिवसकार्य शुरू कर देते हैं। ऐसा होता है मणिरत्न, जो चक्रवर्ती सम्राट के लिए प्रादुर्भूत होता है।

फिर, चक्रवर्ती सम्राट के लिए **स्त्रीरत्न** प्रादुर्भुत होता है — अत्यंत रुपमती, सुहावनी, सजीली, परमवर्ण एवं परमसौंदर्य से संपन्न! न बहुत लंबी, न बहुत नाटी, न बहुत पतली, न बहुत मोटी, न बहुत साँवली, न बहुत गोरी! मानव-सौंदर्यता लांघ चुकी, किंतु दिव्य-सौंदर्यता न प्राप्त की! उस स्त्रीरत्न का काया स्पर्श ऐसा लगता है, जैसे रूई या रेशम का गुच्छा हो! उस स्त्रीरत्न के अंग शीतकाल में उष्ण रहते हैं एवं उष्णकाल में शीतल! उस स्त्रीरत्न की काया से चंदन-सी गन्ध आती है, तथा मुख से कमलपुष्प-सी गन्ध। वह स्त्रीरत्न चक्रवर्ती सम्राट के पूर्व उठती, पश्चात सोती, सेवा के लिए लालायित रहती, मनचाहा आचरण करती, तथा प्रिय बातें करती है। वह स्त्रीरत्न मन से भी चक्रवर्ती सम्राट के प्रति निष्ठा [वफ़ा] का उल्लंघन नहीं करती, तो काया से कैसे करेगी? ऐसा होता है स्त्रीरत्न, जो चक्रवर्ती सम्राट के लिए प्रादुर्भूत होता है।

फिर, चक्रवर्ती सम्राट के लिए **गृहस्थरत्न** प्रादुर्भुत होता है — जिसे पूर्वकर्म के फ़लस्वरूप दिव्यचक्षु प्राप्त होता है, जिससे वह छिपे हुए खज़ाने, मालकियत अथवा बिना मालकियत वाले, देख पाता है। वह गृहस्थरत्न चक्रवर्ती सम्राट के पास जाकर कहता है, "महाराज, आप निश्चिंत रहें! मैं आपके धनदौलत की देखभाल करूँगा!" और चक्रवर्ती सम्राट गृहस्थरत्न को परखने के लिए उसे नांव में साथ लेकर गंगा नदी की सैर पर निकलता है, और बीच नदी में कहता है, "गृहस्थ, मुझे स्वर्णचांदी का ढेर चाहिए!"

"महाराज! तब नांव को एक किनारे लगने दें!"

"दरअसल गृहस्थ, मुझे स्वर्णचांदी का ढेर 'अभी इसी जगह' चाहिए!"

तब गृहस्थरत्न अपने दोनों हाथों को जल में डुबोता है, स्वर्णचांदी से भरी हाँडी निकालता है, और चक्रवर्ती सम्राट को कहता है, "महाराज, इतना पर्याप्त है? क्या इतना करना पर्याप्त है? क्या इतनी अर्पित मात्रा पर्याप्त है?"

"इतना पर्याप्त है, गृहस्थ! इतना करना पर्याप्त है! इतनी अर्पित मात्रा पर्याप्त है!" ऐसा होता है गृहस्थरत्न, जो चक्रवर्ती सम्राट के लिए प्रादुर्भूत होता है।

फिर, चक्रवर्ती सम्राट के लिए **सलाहकाररत्न** प्रादुर्भुत होता है — विद्वान, ज्ञानी, मेधावी, सक्षम! जो चक्रवर्ती सम्राट को आगे बढ़ने-योग्य अवसर में आगे बढ़ाता, छोड़ने-योग्य अवसर में छुड़वाता, स्थापित-योग्य अवसर में स्थापित कराता! वह सलाहकाररत्न

चक्रवर्ती सम्राट के पास जाकर कहता है, “महाराज, आप निश्चिंत रहें! मैं निर्देशित करूँगा!” ऐसा होता है सलाहकाररत्न, जो चक्रवर्ती सम्राट के लिए प्रादुर्भूत होता है। चक्रवर्ती सम्राट ऐसे सप्तरत्नों से संपन्न होता है।

**चार शक्तियां** क्या होती हैं, भिक्षुओं? चक्रवर्ती सम्राट अत्यंत रूपवान, आकर्षक, सजीला, परमवर्ण से संपन्न होता है, अन्य किसी भी मनुष्य से परे! यह चक्रवर्ती सम्राट की प्रथम शक्ति होती है।

चक्रवर्ती सम्राट दीर्घायु होता है, दीर्घकाल तक बने रहता है, अन्य किसी भी मनुष्य से परे! यह चक्रवर्ती सम्राट की द्वितीय शक्ति होती है।

चक्रवर्ती सम्राट निरोगी बने रहता है, रोगमुक्त और पाचनक्रिया सम बने रहती है, न बहुत शीतल, न बहुत उष्ण, अन्य किसी भी मनुष्य से परे! यह चक्रवर्ती सम्राट की तृतीय शक्ति होती है।

चक्रवर्ती सम्राट ब्राह्मणों एवं [वैश्य] गृहस्थों का प्रिय एवं पसंदीदा होता है। जैसे संतान के लिए पिता प्रिय एवं पसंदीदा होता है, उसी तरह चक्रवर्ती सम्राट ब्राह्मणों एवं गृहस्थों के लिए प्रिय एवं पसंदीदा होता है। ब्राह्मण एवं गृहस्थ भी चक्रवर्ती सम्राट के लिए प्रिय एवं पसंदीदा होते हैं। जैसे पिता के लिए संतान प्रिय एवं पसंदीदा होते हैं, उसी तरह ब्राह्मण एवं गृहस्थ भी चक्रवर्ती सम्राट के लिए प्रिय एवं पसंदीदा होते हैं। जब चक्रवर्ती सम्राट अपनी चार अंगोवाली सेना के साथ उद्यानभूमि से गुज़रता है, तब ब्राह्मण एवं गृहस्थ पास जाकर कहते हैं, “महाराज, मंद गति से गुज़रे! ताकि हम आपको देर तक देख सकें!” तब चक्रवर्ती सम्राट अपने रथसारथी को आदेश देता है, “सारथी, मंद गति से चलो! ताकि हमें ब्राह्मण एवं गृहस्थ देर तक देख सकें!” यह चक्रवर्ती सम्राट की चतुर्थ शक्ति होती है।

तो क्या लगता हैं, भिक्षुओं? क्या चक्रवर्ती सम्राट सप्तरत्नों एवं चार शक्तियों से संपन्न होकर सुख एवं खुशी का अनुभव करेगा?”

“भन्ते, चक्रवर्ती सम्राट किसी एक रत्न से भी अत्यंत सुख एवं खुशी का अनुभव करेगा! सप्तरत्नों एवं चार शक्तियों से संपन्न होने की बात ही क्या!”

तब भगवान ने एक पत्थर उठाया और भिक्षुओं से कहा, “तो क्या लगता है, भिक्षुओं? क्या बड़ा है? मेरे हाथ का यह पत्थर अथवा पर्वतराज हिमालय?”

“भन्ते! भगवान ने जो पत्थर उठाया, वह पर्वतराज हिमालय के आगे गिना भी नहीं जाएगा! वह एक अंश भी नहीं है! दोनों में कोई तुलना ही नहीं है!”

“उसी तरह, भिक्षुओं! जो चक्रवर्ती सम्राट सप्तरत्नों एवं चार शक्तियों से संपन्न होकर सुख एवं खुशी का अनुभव करेगा, वह स्वर्गिक सुख के आगे गिने भी न जाएंगे! वह एक अंश भी नहीं है! दोनों में कोई तुलना ही नहीं है!

और जब दीर्घकाल बीतने पर कदाचित एक समय आए कि उस बुद्धिमान को पुनः मनुष्यता प्राप्त हो — तब वह उच्चकुलीन परिवार में जन्म लेता है, जैसे महासंपत्तिशाली क्षत्रियकुल में, या महासंपत्तिशाली ब्राह्मणकुल में, या महासंपत्तिशाली [वैश्य] गृहस्थकुल में! तथा वह महाधनी, महाभोगशाली होता है! अनेकानेक संपदाओं का स्वामी! विशाल मुद्राकोष का धारक! अनेकानेक वस्तुसामग्री का मालिक! अनेकानेक उत्पाद-भंडारों का स्वामी! साथ ही वह रूपवान, आकर्षक, सजीला, परमवर्ण से संपन्न होता है। तथा उसे अन्नपान मिलता है, वस्त्र एवं गाड़ी मिलती है, माला, गन्ध एवं लेप मिलते हैं, शयन, आवास एवं दीपक मिलते हैं। और वह [उस राहतभरे जीवन में] काया से सदाचार, वाणी से सदाचार एवं मन से सदाचार करता है, और मरणोपरांत पुनः सद्गति होकर स्वर्ग में उपजता है।

जैसे भिक्षुओं! कोई जुआरी हो, जो प्रथम दांव में ही महाभोगसंपत्ति का भंडार जीत जाए। तब भी ऐसा सौभाग्यशाली दांव, जिसमे कोई महाभोगसंपत्ति का भंडार जीत जाए — अल्पमात्र ही होगा! किंतु कोई बुद्धिमान उससे भी अधिक लाभदायक, महासौभाग्यशाली दांव खेलता है, जब वह काया से सदाचार, वाणी से सदाचार एवं मन से सदाचार करता है और मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजता है। यह बुद्धिमत्ता की पराकाष्ठा है!”

«मज्झिमनिकाय १२९ : बालपण्डितसुत्त»

**इध मोदति पेच्च मोदति, कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति।**
**सो मोदति सो पमोदति, दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो।।**

यहाँ प्रसन्न होता, पश्चात [परलोक में] प्रसन्न होता।
पुण्यकर्ता दोनों में प्रसन्न होता है।
अपनी कर्मविशुद्धि देखकर प्रसन्न, प्रफुल्लित होता है।

**इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।**
**"पुञ्ञं मे कत"न्ति नन्दति, भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो।।**

यहाँ हर्षित होता, पश्चात हर्षित होता।
पुण्यकर्ता दोनों में हर्षित होता है।
'पुण्य किया मैंने!' कहते हर्षित होता।
सद्गति होकर और खूब हर्षित होता है।

«धम्मपद यमकवग्गो १६, १८»

**भद्रोपि पस्सति पापं, याव भद्रं न पच्चति।**
**यदा च पच्चति भद्रं, अथ भद्रो भद्रानि पस्सति।।**

भला [व्यक्ति] भी दुर्भाग्य देखता,
जब तक उसकी भलाई न पकती।
किंतु जब भलाई पक जाती,
तब भला सौभाग्य देखता।

**मावमञ्ञेथ पुञ्ञस्स, न मन्तं आगमिस्सति।**
**उदबिन्दुनिपातेन, उदकुम्भोपि पूरति।**
**धीरो पूरति पुञ्ञस्स, थोकं थोकम्पि आचिनं।।**

पुण्य को छोटा न समझो,
[सोचते हुए] 'मुझ तक न आएगा'।
बूंद-बूंद से घड़ा भरता,
थोड़ा-थोड़ा संचय कर,
धैर्यवान पुण्य से भरता।

«धम्मपद पापवग्गो १२०, १२२»

“कोई **शीलवान प्रवज्यित** [संन्यासी] जब किसी कुलपरिवार के निकट जाता है, तब लोग पाँच तरह से बहुत पुण्य उत्पन्न करते हैं। कौन से पाँच?

• जब शीलवान प्रवज्यित किसी कुलपरिवार के निकट जाता है, तब उसे देख लोगों का चित्त आस्था से भरता है। उस अवसर पर वह कुलपरिवार स्वर्ग जाने के पथ पर अग्रसर होता है।

• जब शीलवान प्रवज्यित किसी कुलपरिवार के निकट जाता है, तब लोग उसका स्वागत करते हैं, अभिवादन करते हैं, [बैठने के लिए] आसन देते हैं। उस अवसर पर वह कुलपरिवार उच्चकुलीन जन्म लेने के पथ पर अग्रसर होता है।

• जब शीलवान प्रवज्यित किसी कुलपरिवार के निकट जाता है, तब लोग उसके लिए कंजूसी का मल हटाते हैं। उस अवसर पर वह कुलपरिवार महाप्रभावशाली होने के पथ पर अग्रसर होता है।

• जब शीलवान प्रवज्यित किसी कुलपरिवार के निकट जाता है, तब लोग उसके साथ यथाशक्ति यथाबल बांटते [संविभाग करते] हैं। उस अवसर पर वह कुलपरिवार महासंपत्तिशाली होने के पथ पर अग्रसर होता है।

• जब शीलवान प्रवज्यित किसी कुलपरिवार के निकट जाता है, तब लोग उससे पूछते हैं, प्रश्न करते हैं, धर्म सुनते हैं। उस अवसर पर वह कुलपरिवार महाअंतर्ज्ञान पाने के पथ पर अग्रसर होता है।”

«अंगुत्तरनिकाय ५:१९९ : कुलसुत्त»

“**श्रद्धावान कुलपुत्र को पाँच पुरस्कार** मिलते हैं। कौन से पाँच?

जब इस लोक के सच्चे सन्त एवं सत्पुरुषों को **उपकार** करना हो, तो वे सर्वप्रथम श्रद्धावान कुलपुत्र पर उपकार करते हैं, श्रद्धाहीन पर नहीं। उन्हें जब **मुलाकात** देनी हो, तो वे सर्वप्रथम श्रद्धावान कुलपुत्र को मुलाकात देते हैं, श्रद्धाहीन को नहीं। उन्हें जब कुछ **ग्रहण** करना हो, तो वे सर्वप्रथम श्रद्धावान कुलपुत्र से ग्रहण करते हैं, श्रद्धाहीन से नहीं। उन्हें जब धर्म **सिखाना** हो, तो वे सर्वप्रथम श्रद्धावान कुलपुत्र को धर्म सिखाते हैं, श्रद्धाहीन को नहीं। और श्रद्धावान कुलपुत्र मरणोपरांत **सद्गति** होकर स्वर्ग में उपजता है।

जैसे महावृक्ष हो कोई, फ़ल-पत्ते लगी शाखा,<br>
तना-मूल फ़लसंपन्न, पक्षी आश्रय ले वहाँ।

ऐसे मनोरम आयाम में, चिड़ियां सेवन करे,
थका-मांदा छाया पाए, भूखा फ़लभोज करे।
ऐसा श्रद्धावान पुरुष, शीलसंपन्न व्यक्ति जो,
विनम्र हो, न अकड़, सौम्य, मधुर, मृदु हो।
ऐसे नर से मिलाप करे, इस लोक के पुण्यक्षेत्र
— वीतरागी, वीतद्वेषी, वीतमोही, अनास्रव।
उसे वे धर्म बताते, समस्त दुःख मिटाता जो,
जब उसे धर्म समझे, परिनिर्वृत अनास्रव हो।"

«अंगुत्तरनिकाय ५:३८ : सद्धासुत्त»

"पुण्य से भयभीत ना हो, भिक्षुओ! पुण्य को दूसरे शब्दों में 'सुखमय, पसंदीदा, आनंदमय, प्रिय, मनचाहा' कहते हैं। मैं प्रत्यक्ष जानता हूँ कि दीर्घकाल तक पुण्य करने पर, मैंने दीर्घकाल तक 'सुखमय, पसंदीदा, आनंदमय, प्रिय, मनचाहा' कर्मफ़ल अनुभव किया है।

सात वर्षों तक, मैने सद्भाव-चित्त विकसित किया। और तब सात कल्पों के ब्रह्मांडीय सिकुड़न एवं फैलाव के दौरान, मैं इस [मनुष्य] लोक में नहीं आया। जब भी ब्रह्मांड सिकुड़ता था, मैं आभाश्वर ब्रह्मलोक जाता। जब भी ब्रह्मांड फैलता था, मैं रिक्त ब्रह्मविमान में प्रकट होता, जहाँ मैं महाब्रह्मा, विजेता, अजेय, सर्वदर्शी, वशवर्ती बनता।

छत्तीस बार, मैं देवराज इंद्र बना। कई सैकड़ों बार, मैं चक्रवर्ती सम्राट बना — धर्मराज, चारों दिशाओं का विजेता, देहातों तक स्थिर शासन, तथा सप्तरत्नों से संपन्न सम्राट! और प्रदेश राजा कितनी बार बना, कहना ही नहीं!

तब मैंने सोचा, 'मेरे कौन से कर्म का यह प्रतिफ़ल है, परिणाम है जो मुझे ऐसी महाशक्ति, ऐसा महाबल प्राप्त हुआ है?' तब मुझे पता चला कि 'यह मेरे तीन कर्मों का प्रतिफ़ल है, परिणाम है जो मुझे ऐसी महाशक्ति, ऐसा महाबल प्राप्त हुआ है — **दान, स्वयं पर काबू, एवं इंद्रिय संयम**।'"

«इतिवुत्तक २२ : मेत्तसुत्त»

**कौशल-नरेश प्रसेनजित** ने एक-ओर बैठते हुए भगवान से कहा:

"भन्ते! अभी मैं एकांत में था, तो मेरे चित्त में विचारों की श्रृंखला उठी, 'कौन स्वयं को प्रिय है, कौन स्वयं को प्रिय नहीं?' तब मुझे लगा, 'वे स्वयं को प्रिय नहीं, जो काया से दुराचार, वाणी से दुराचार, एवं मन से दुराचार करते हैं। भले ही वे कहते हो कि 'हम स्वयं को प्रिय है', तब भी वे स्वयं को प्रिय नहीं। ऐसा क्यों? क्योंकि, वे स्वयं ही स्वयं के साथ ऐसा बर्ताव करते हैं, जैसा कोई शत्रु अपने शत्रु के साथ करे। इस तरह वे स्वयं को प्रिय नहीं होते।

किंतु वाकई 'वे स्वयं को प्रिय हैं, जो काया से सदाचार, वाणी से सदाचार, एवं मन से सदाचार करते हैं। भले ही वे कहते हो कि 'हम स्वयं को प्रिय नहीं!' तब भी वे स्वयं को प्रिय ही हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि, वे स्वयं ही स्वयं के साथ ऐसा बर्ताव करते हैं, जैसा कोई प्रिय अपने प्रिय के साथ करे। इस तरह वे स्वयं को प्रिय होते हैं।"

[भगवान:]

"ऐसा ही है, महाराज! ऐसा ही है! 'वे स्वयं को प्रिय नहीं, जो काया से दुराचार, वाणी से दुराचार, एवं मन से दुराचार करते हैं। भले ही वे कहते हो कि 'हम स्वयं को प्रिय है', तब भी वे स्वयं को प्रिय नहीं। क्योंकि, वे स्वयं ही स्वयं के साथ ऐसा बर्ताव करते हैं, जैसा कोई शत्रु अपने शत्रु के साथ करे।

किंतु वाकई 'वे स्वयं को प्रिय हैं, जो काया से सदाचार, वाणी से सदाचार, एवं मन से सदाचार करते हैं। भले ही वे कहते हो कि 'हम स्वयं को प्रिय नहीं!' तब भी वे स्वयं को प्रिय ही हैं। क्योंकि, वे स्वयं ही स्वयं के साथ ऐसा बर्ताव करते हैं, जैसा कोई प्रिय अपने प्रिय के साथ करे।"

ऐसा भगवान ने कहा। ऐसा कहकर सुगत ने, शास्ता ने आगे कहा:

"जो स्वयं का प्रिय हो, न जुड़ बैठे तब पाप से,
चूंकि सुख सुलभ न हो, दुष्कृत्य कर्ता के लिए।
अन्तकर्ता दबोचे तुरंत, मनुष्यलोक जो छूटे,
वाकई तुम्हारा क्या है, जाते हुए क्या ले जाए?
क्या चलता है पीछे, जैसे छाया कभी साथ न छोड़े?
पुण्य एवं पाप दोनों, जो मर्त्य [=नश्वर] करते यहाँ,
वाकई तुम्हारा वही है, जाते हुए जो ले जाए।

वही चलता है पीछे, जैसे छाया कभी साथ न छोड़े।
इसलिए कल्याण करें, अगले जीवन में पूँजी बने।
परलोक में जीवों के लिए, पुण्य ही आधार बने।"

«संयुत्तनिकाय ३:४ : पियसुत्त»

"**पुण्यक्रिया** के तीन आधार होते हैं। कौन से तीन? दानक्रिया, शीलक्रिया और भावनाक्रिया।

पुण्य में प्रशिक्षित होएँ,
दीर्घकाल जो सुख लाए।
दान करें, समचर्या [शील] करें,
सद्भाव-चित्त [भावना] विकसित करें।
सुख लाते ये तीन धर्म, जो व्यक्ति बढ़ाता है,
अमिश्रित-सुख के लोक में, वह विद्वान उपजता है।"

«इतिवुत्तक ६० : पुञ्ञकिरियवत्थुसुत्त»

**कौशल-नरेश प्रसेनजित** ने एक-ओर बैठते हुए भगवान से कहा:

"भन्ते! क्या कोई एक धर्म [स्वभाव] है, जो लोक एवं परलोक दोनों में अर्थ [लाभ] सुरक्षित रखें?"

"एक धर्म है महाराज, जो लोक एवं परलोक दोनों में अर्थ सुरक्षित रखता है।"

"वह एक धर्म क्या है, भन्ते?"

"**अप्रमाद**, महाराज! जैसे पैर वाले तमाम प्राणियों के पदचिन्ह हाथी के पदचिन्ह में सिमट सकते हैं, और आकारानुसार हाथी का पदचिन्ह तमाम पदचिन्हों में अग्र माना जाता है। उसी तरह, महाराज, अप्रमाद एक धर्म है जो लोक एवं परलोक दोनों में अर्थ सुरक्षित रखता है।"

ऐसा भगवान ने कहा। ऐसा कहकर सुगत ने, शास्ता ने आगे कहा:

"दीर्घायुता आरोग्य सौंदर्यता, स्वर्ग उच्चकुलीनता
— जिन्हें इनकी चाह हो, एक के बाद एक भोग की,
पण्डित प्रशंसा करते हैं, तब पुण्य में **अप्रमाद** की।

अप्रमत्त होकर ज्ञानी, अर्थ दोनों साध ले
अभी इसी जीवन में, तथा परलोक में।
धैर्यवान दीर्घ-अर्थ समझे, वे पण्डित कहलाते”

«संयुत्तनिकाय ३:१७ : अप्पमादसुत्त »

★ ★ ★

अध्याय चार

# दान

**भगवान** ने गाथाएं कही:

“कंजूस देवलोक नहीं जाते।
जो दान की प्रशंसा न करे, मूर्ख होते हैं।
दान का अनुमोदन विद्वान करते।
और इस लोक के पश्चात सुख पाते हैं।”

«धम्मपद १७७ : लोकवग्गो »

“कंजूस को जो भय सताता,
जो उसे दान देने से रोकता,
वही भय उसपर टूट पड़ता,
जब वह दान नहीं करता।[16]”

«संयुत्तनिकाय १:३२ : मच्छरिसुत्त»

“कंजूसी को जीतें दान से।”

«धम्मपद कोधवग्गो २२३»

---

[16] कंजूस व्यक्ति को लगता है कि दान देने से वह स्वयं गरीब हो जाएगा, या उसका दिया अच्छे उपयोग में नहीं आएगा, या उसका दिया बर्बाद हो जाएगा, या भविष्य में जरूरत पड़ने पर उसके लिए नहीं बचेगा। लेकिन, वास्तव में, दान नहीं देने से वह स्वयं गरीब होने लगता है, उसका न दिया अच्छे उपयोग में नहीं आता, या बर्बाद हो जाता है, और भविष्य में जरूरत पड़ने पर उसके लिए नहीं बचता है। अर्थात्, जो खतरे देखकर वह दान करने से हिचकिचाता है, वही खतरे उसपर टूट पड़ने लगते हैं। उसके ठीक विपरीत, दान देने से उसकी संपत्ति बढ़ती जाती है, उसका दिया अच्छे उपयोग में आता है, बर्बाद नहीं होता है। और दान देने से उसे भविष्य में मदद मिलती है।

देर रात में **कोई देवता** अत्याधिक कांति से संपूर्ण जेतवन विहार रौशन करते हुए भगवान के पास गया और अभिवादन कर एक-ओर खड़ा हुआ। और भगवान के समक्ष गाथाओं का उच्चार किया:

"जब घर में आग लगे, जो बर्तन बचाया जाए,
वही उपयोगी बचे, न जो पीछे जलते रह जाए।
जब दुनिया में आग लगे, बुढ़ापे से, मृत्यु से,
दान देकर उसे बचाएं, दान दिया सुरक्षित बचता।
दिया सुखद-फ़ल लाता, न दिया कभी न लाता,
चोर या राजा ले जाता, अग्नि भुनती या खो जाता।
अंततः सर्वसंपत्ति सह, आप काया हैं छोड़ते,
विद्वान यह जानते हुए, भोग करें व दान करें।
भोग कर व दान कर, जितना भी साध पाए,
स्वर्गावस्था तक अनिंदित रह, आप तब जा पाए।"

«संयुत्तनिकाय १:४१ : आदित्तसुत्त»

"दान-संविभाग के जो फ़ल मुझे पता चले, यदि दूसरों को भी पता चल जाए, तो बिना दिए, बिना बांटे न कभी कोई भोग करेगा, न कंजूसी से मन मलिन होने देगा! भले ही किसी मूंह का आख़िरी निवाला हो, किंतु यदि कोई दानयोग्य मौजूद हो तो वह बिना दिए, बिना बांटे खा नहीं पाएगा।

किंतु [अफ़सोस!] दूसरों को दान-संविभाग के वे फ़ल नहीं पता हैं, जो मुझे पता हैं। इसलिए वे बिना दिए, बिना बांटे भोग करते हैं और कंजूसी से मन मलिन होने देते हैं।"

«इतिवुत्तक २६ : दानसुत्त»

**एक देवता** भगवान के समक्ष बोल पड़ा:

"श्रीमान! दान है भला!
हो भले ही अल्प मात्र,
दान तब भी, है भला!
श्रद्धापूर्ण दान, है भला!
निष्ठा से कमाए का दान, है भला!

जब कोई दान करे, निष्ठा से कमाए का,
जो भी कमाया हो, ऊर्जा से मेहनत से,
वह पार करे, यम की **वैतरणी नदी**,
दिव्य अवस्थाओं तक पहुँच जाएँ।
विवेकपूर्ण दान, है भला!
इस जीवलोक में दक्षिणायोग्य
— जहाँ दान कर मिले महाफ़ल,
जैसे कोई बीज बोता, उपजाऊ भूमि में।
ऐसा सुगत-प्रशंसित 'विवेकपूर्ण दान', है भला!"

«संयुत्तनिकाय १:३३ : साधुसुत्त»

"**दान के पाँच पुरस्कार** हैं:

- अनेक लोगों का प्रिय एवं पसंदीदा होता है।
- भले लोगों द्वारा प्रशंसित होता है।
- उसकी सुयश कीर्ति फैलती है।
- गृहस्थी-धर्म से भटकता नहीं है।
- मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजता है।"

«अंगुत्तरनिकाय ५:३५ : दानानिसंससुत्त»

"**दायक** भोजन देते हुए प्राप्तकर्ता को पाँच वस्तुएँ देता है। कौन से पाँच?

वह आयु देता है, वर्ण देता है, राहत देता है, बल देता है, और स्फूर्ति देता है।

वह आयु देकर दिव्य अथवा मानवीय **दीर्घायुता** में भागीदार बनता है। वर्ण देकर दिव्य अथवा मानवीय **सौंदर्यता** में भागीदार बनता है। राहत देकर दिव्य अथवा मानवीय **राहत एवं सुख** में भागीदार बनता है। बल देकर दिव्य अथवा मानवीय **शक्ति** में भागीदार बनता है। स्फूर्ति देकर दिव्य अथवा मानवीय **चपलता** में भागीदार बनता है।"

«अंगुत्तरनिकाय ५:३७ : भोजनसुत्त»

**राजकुमारी सुमन,** पाँच सौ रथों पर सवार पाँच सौ राजकुमारीयों के काफ़िले के साथ, वहाँ गई जहाँ भगवान रुके थे, और पहुँच कर अभिवादन कर सभी एक-ओर बैठ गई। उसने एक-ओर बैठकर भगवान से कहा:

"भन्ते! मान लिजिये भगवान के दो शिष्य हो — श्रद्धा में एक जैसे, शील में एक जैसे, और प्रज्ञा में एक जैसे! उनमें मात्र एक भोजनदाता था, दूसरा नहीं। तब मरणोपरांत दोनों सद्गति होकर स्वर्ग में उत्पन्न हो। क्या देवता बनने पर दोनों में कोई अंतर, कोई भेद होगा?"

"हाँ, सुमन! जो भोजनदाता था, वह देवता बनने पर दूसरे को पाँच क्षेत्रों में पीछे छोड़ देगा — दिव्य दीर्घायुता, दिव्य सौंदर्यता, दिव्य राहत एवं सुख, दिव्य प्रतिष्ठा, और दिव्य शक्ति ..."

"और, भन्ते! यदि वे दोनों वहाँ से च्युत होकर पुनः इस लोक में उत्पन्न हो। क्या पुनः मनुष्य बनने पर दोनों में कोई अंतर, कोई भेद होगा?"

"हाँ, सुमन! जो भोजनदाता था, वह पुनः मनुष्य बनने पर दूसरे को पुनः पाँच क्षेत्रों में पीछे छोड़ देगा — मानवीय दीर्घायुता, मानवीय सौंदर्यता, मानवीय राहत एवं सुख, मानवीय प्रतिष्ठा, और मानवीय शक्ति ..."

"और भन्ते! यदि वे प्रवज्या [संन्यास] ग्रहण कर घर से बेघर होकर भिक्षु बन जाए। तब क्या प्रवज्यित होने पर दोनों में कोई अंतर, कोई भेद होगा?"

"हाँ, सुमन! जो भोजनदाता था, वह प्रवज्या ग्रहण करने पर दूसरे को पुनः पाँच क्षेत्रों में पीछे छोड़ देगा — अक्सर उसे नए **चीवर** को ग्रहण करने की विनंती की जाएगी, विरल ही होगा कि उसे न पूछा जाए। अक्सर उसे **भोजन** ग्रहण करने की विनंती की जाएगी, विरल ही होगा कि उसे न पूछा जाए। अक्सर उसे नए **निवास** को ग्रहण करने की विनंती की जाएगी, विरल ही होगा कि उसे न पूछा जाए। अक्सर उसे **रोगावश्यक औषधि-भेषज्य** को ग्रहण करने की विनंती की जाएगी, विरल ही होगा कि उसे न पूछा जाए। अक्सर ब्रह्मचारी साथी उससे सुखद कार्य से... सुखद वाणी से... सुखद विचार से बर्ताव करेंगे... उसे सुखद उपहार भेंट करेंगे, विरल ही होगा कि उससे असुखद कार्य, वाणी एवं विचार से बर्ताव हो, या सुखद उपहार भेंट न हो।"

"और, भन्ते! यदि वे दोनों अर्हंतपद प्राप्त करें। तब क्या अर्हंतपद प्राप्त करने में दोनों में कोई अंतर, कोई भेद होगा?"

“तब सुमन! उस मामले में कहता हूँ कि दोनों की विमुक्ति में न कोई अंतर होगा, न कोई भेद।”

“आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है! भोजन देने का, पुण्य करने का यही कारण पर्याप्त है कि देवता बनने पर लाभदायक हो, मनुष्य बनने पर लाभदायक हो, या संन्यास ग्रहण करने पर भी लाभदायक हो!”

“ऐसा ही है, सुमन! ऐसा ही है! भोजन देने का, पुण्य करने का यही कारण पर्याप्त है कि देवता बनने पर लाभदायक होता है, मनुष्य बनने पर लाभदायक होता है, या संन्यास ग्रहण करने पर भी लाभदायक होता है!”

ऐसा भगवान ने कहा। ऐसा कहकर सुगत ने, शास्ता ने आगे कहा:

“जैसे विमल चंद्रमा, आकाश से गुजरते हुए
ब्रह्मांड के समस्त तारों को, फीका कर दे कांति से।
वैसे ही श्रद्धावान व्यक्ति, शील से सम्पन्न हुए
ब्रह्मांड के समस्त कंजूसों को, फीका कर दे त्याग से।”

«अंगुत्तरनिकाय ५:३१ : सुमनसुत्त»

**भन्ते सारिपुत्र** चम्पा के उपासकों के साथ भगवान के पास गये और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गए। उन्होंने बैठकर भगवान से कहा:

“भन्ते! क्या ऐसा हो सकता है, जहाँ एक व्यक्ति दान देता है तो परिणामस्वरूप, उसे न महाफ़ल मिलता है, न महापुरस्कार? जबकि दूसरा व्यक्ति वही दान देता है तो उसे महाफ़ल और महापुरस्कार मिलता है?”

“हाँ, सारिपुत्र! ऐसा हो सकता है।”

“भन्ते, क्या कारण एवं परिस्थिति में ऐसा होता है?”

“सारिपुत्र, ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति [फ़ल के प्रति] तरसते हुए दान देता है, आसक्त चित्त से दान देता है, स्वार्थ में संचित करने के लिये दान देता है, [सोचते हुए] ‘मरणोपरांत इसका भोग करूँगा!’ इस तरह वह श्रमण-ब्राह्मणों को भोजन, पेय, वस्त्र, वाहन, माला, गन्ध, लेप, पलंग, निवास, दीपक आदि दान करता है। तुम्हें क्या लगता है, सारिपुत्र? क्या कोई व्यक्ति इस तरह से दान कर सकता है?”

“हाँ, भन्ते।”

“• जब कोई इस तरह तरसते हुए दान दे, आसक्त चित्त से दान दे, स्वार्थ में संचित करने के लिये दान दे, ‘मरणोपरांत इसका भोग करूँगा!’ — तब वह मरणोपरांत **चार-महाराज देवलोक** में उत्पन्न होता है। तथा कर्म, ऋद्धि [=दिव्यशक्ति], यश, प्रभुसत्ता के क्षय होने पर पुनः इस [मानव] लोक में लौटता है।

ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति न तरसते हुए दान देता है, न आसक्त चित्त से, न ही स्वार्थ में संचित करने के लिये। बल्कि [सोचता है] ‘दान देना अच्छा है![17]’ इस तरह वह श्रमण-ब्राह्मणों को भोजन, पेय आदि दान करता है। तुम्हें क्या लगता है, सारिपुत्र? क्या कोई इस तरह दान कर सकता है?”

“हाँ, भन्ते!”

“• जब कोई इस तरह दान दे, [सोचते हुए] ‘दान देना अच्छा है!’ — तब वह मरणोपरांत **तैतीस [३३] देवलोक** में उत्पन्न होता है। तथा कर्म, ऋद्धि, यश, प्रभुसत्ता के क्षय होने पर पुनः इस लोक में लौटता है।

• या कोई दान देते हुए [सोचता है] ‘यह दान मेरे पिता, दादा, परदादाओं द्वारा दिया जाता रहा है। यह कर्म किया जाता रहा है। इस पुरातन कुलपरंपरा को तोड़ देना[18], मेरे लिए उचित न होगा।’ — तब वह मरणोपरांत **याम [=संयम] देवलोक** में उत्पन्न होता है। तथा कर्म, ऋद्धि, यश, प्रभुसत्ता के क्षय होने पर पुनः इस लोक में लौटता है।

• या कोई व्यक्ति दान देते हुए [सोचता है] ‘मैं सुसंपन्न हूँ। किंतु ये सुसंपन्न नहीं। सुसंपन्न रहते हुए असंपन्न को न देना[19], मेरे लिये उचित न होगा।’ — तब वह मरणोपरांत, **तुषित [=संतुष्ट] देवलोक** में उत्पन्न होता है। तथा कर्म, ऋद्धि, यश, प्रभुसत्ता के क्षय होने पर पुनः इस लोक में लौटता है।

---

[17] निचले स्तर के सत्वों का चित्त लोभी और स्वार्थी होता है। जब कोई लोभ और स्वार्थ से ध्यान हटाकर, किसी काम का नैतिक मूल्य सही ढंग से निर्धारित करता है, तो वह "तैतीस देवताओं" की श्रेणी में आता है। अर्थात्, अब उसके लिए स्वार्थ उतना महत्वपूर्ण नहीं रहता है, जितना कि निस्वार्थ भलाई करना।

[18] कई लोगों में विद्रोह-भाव अधिक होता है। वे मन चाहे तो भलाई करेंगे, नहीं तो नहीं। लेकिन अब वे अपनी मर्ज़ी से नहीं चलते, बल्कि संयम से रहते हैं। भीतर के असंतोष को शान्त करना चित्त को एक नई ऊँचाई प्रदान करता है। इसलिए वे संयम से रहने वाले "याम देवताओं" की श्रेणी में आते हैं।

[19] अर्थात्, अब उसे विषमता (आर्थिक या सामाजिक) बुरी लगती है। तथा वह समता के प्रति दायित्व का बोध करता है। पराए को अभाव में देख, उसे मदद करने से दायित्व पूरा होने की तुष्टि मिलती है, इसलिए वह "तुषित देवताओं" की श्रेणी में आता है।

• या कोई व्यक्ति दान देते हुए [सोचता है] 'अतीतकाल में महायज्ञ, दान-संविभाग[20] करने वाले अनेक ऋषिमुनि थे, जैसे अष्टक, व्यमक, व्यामदेव, विश्वामित्र, यमदर्गी, अङगीरस, भारद्वाज, वासेष्ठ, कश्यप एवं भगू। मैं भी उसी तरह दान-संविभाग करूँगा!' — तब वह मरणोपरांत, **निर्माणरति [=निर्माणकार्य में लीन] देवलोक** में उत्पन्न होता है। तथा कर्म, ऋद्धि, यश, प्रभुसत्ता के क्षय होने पर पुनः इस लोक में लौटता है।

• या कोई व्यक्ति दान देते हुए [सोचता है] 'जब दान देता हूँ, तब मेरा चित्त प्रसन्न होता है! अंतर्मन में खुशी उठती है[21]!' — तब वह मरणोपरांत, **परनिर्मित वशवर्ती [=दूसरों द्वारा निर्मित पर पूर्ण वश] देवलोक** में उत्पन्न होता है। तथा कर्म, ऋद्धि, यश, प्रभुसत्ता के क्षय होने पर पुनः इस लोक में लौटता है।

• या कोई व्यक्ति दान देते हुए [सोचता है] 'दान तो चित्त का अलंकार [गहना] है, पोषक आधार है![22]' — तब वह मरणोपरांत, **ब्रह्मकाया वाले देवलोक** में उत्पन्न होता है। तथा कर्म, ऋद्धि, यश, प्रभुसत्ता के क्षय होने पर वह **अनागामी** हो जाता है, पुनः इस लोक में लौटता नहीं।

इन कारण और परिस्थितियों में, सारिपुत्र, एक व्यक्ति दान देता है तो परिणामस्वरूप, उसे न महाफ़ल मिलता है, न महापुरस्कार। जबकि दूसरा व्यक्ति वही दान देता है तो उसे महाफ़ल और महापुरस्कार मिलता है।"

«अंगुत्तरनिकाय ७:५२ : दानमहफ़्फ़लसुत्त»

---

[20] यज्ञ का प्राचीन अर्थ "दान-संविभाग कार्यक्रम" था। यानी, कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति का अधिकांश हिस्सा देवताओं और जनता को दान कर देता था। ऐसा केवल धार्मिक राजा या दयालु गृहस्थ ही कर सकते थे। ऐसा असीम रूप से बांटने वाला चित्त "निर्माणरति देवताओं" की श्रेणी में आता है, जिन्हें सृष्टि का निर्माण करने जैसी दिव्य शक्तियां प्राप्त होती हैं।

[21] अर्थात्, जो व्यक्ति स्वानुभूति से जानता है कि उसके चित्त एवं मन पर दान का क्या प्रभाव पड़ता है, वह अंतर्ज्ञानी दानी कहलाता है। उसे फलस्वरूप निर्मित सृष्टि एवं दूसरों के मानस को नियंत्रित करने वाली शक्तियां प्राप्त होती हैं।

[22] अर्थात्, जो व्यक्ति स्वानुभूति और अंतर्ज्ञान से जानता है कि दान देना दरअसल आध्यात्मिक उन्नति कराता है, जो सर्वोपरि है। तब उसे दान के भौतिक प्रतिफल, जैसे दुनिया की मोहक वस्तुएँ (आमिष), भोग-संपदा या सत्ता का आकर्षण नहीं रह जाता है। ऐसे हीन आधारों (उपादान) को छोड़ देने पर वह पुनः कामलोक नहीं लौटता, बल्कि ब्रह्मलोक जाकर वही परिनिर्वाण को प्राप्त होता है।

"**सत्पुरुष** पाँच तरह से दान देता है। कौन से पाँच?

- श्रद्धापूर्वक दान देता है।
- ध्यान रखते हुए दान देता है।
- समय पर दान देता है।
- सहानुभूति चित्त से दान देता है।
- न स्वयं पर, न पराए पर विपरीत प्रभाव डालते हुए दान देता है।

• **श्रद्धापूर्वक** दान देने से दायक को जहाँ भी फल प्राप्त होता है, वह महाधनवान, महासंपत्तिशाली और अनेक संपदाओं से संपन्न होता है। साथ ही, वह अत्यंत रूपवान, आकर्षक, स्नेहप्रेरक और कमलवर्ण वाला होता है।

• **ध्यान रखते हुए** दान देने से दायक को जहाँ भी फल प्राप्त होता है, वह महाधनवान, महासंपत्तिशाली और अनेक संपदाओं से संपन्न होता है। साथ ही, उसकी संतान, पत्नी, दास-दासियां, नौकर और श्रमिक उसका ध्यान रखते हैं, उसकी बातें सुनते हैं और उसे हृदय से सेवा करते हैं।

• **समय पर** दान देने से दायक को जहाँ भी फल प्राप्त होता है, वह महाधनवान, महासंपत्तिशाली और अनेक संपदाओं से संपन्न होता है। साथ ही, उसका लाभ/लक्ष्य समय पर पूर्ण होता है।

• **सहानुभूति चित्त से** दान देने से दायक को जहाँ भी फल प्राप्त होता है, वह महाधनवान, महासंपत्तिशाली और अनेक संपदाओं से संपन्न होता है। साथ ही, उसका चित्त पञ्चकामसुख का लुत्फ़ उठा पाता है।

• **न स्वयं पर, न दूसरे पर विपरीत परिणाम डालते हुए**[23] दान देने से दायक को जहाँ भी फल प्राप्त होता है, वह महाधनवान, महासंपत्तिशाली और अनेक संपदाओं से संपन्न होता है। साथ ही, उसकी संपत्ति कही से भी बर्बादी नहीं होती, चाहे अग्नि, जल, चोर, राजा, या नफ़रती वारिस से।"

«अंगुत्तरनिकाय ५:१४८ : सप्पुरिसदानसुत्त»

[23] अर्थात्, यदि कोई (चोर, डकैत या भ्रष्टाचारी) पराए को लूटकर उसका दान करे, तो उस दान का फ़ल मिलने के पश्चात बर्बाद हो जाएगा।

**भन्ते सारिपुत्र** भगवान के पास गये और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गए। उन्होंने बैठकर भगवान से कहा:

"भन्ते! क्या कारण और परिस्थिति होती है कि जब कुछ लोग एक **व्यवसाय** करते हैं तो पूर्णतः विफल हो जाते हैं? वही व्यवसाय अन्य लोग करते हैं तो उन्हें अपेक्षानुसार सफ़लता नहीं मिलती? जबकि वही व्यवसाय भिन्न लोग करते हैं तो उन्हें अपेक्षानुसार सफ़लता मिलती हैं? और वही व्यवसाय कुछ अन्य लोग करते हैं तो अपेक्षा से अधिक सफ़ल हो जाते है?"

"ऐसा होता है, सारिपुत्त, कोई व्यक्ति श्रमण-ब्राह्मण के पास जाकर **प्रस्ताव** «पवारणा» देता है, "गुरुजी! किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझे बताएं।" किंतु वह प्रस्ताव के अनुसार वस्तु का दान नहीं करता। तब वह मरणोपरांत वहाँ से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न होता है, और जो भी व्यवसाय करता है, पूर्णतः विफल हो जाता है।

और ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति श्रमण-ब्राह्मण के पास जाकर प्रस्ताव देता है, "गुरुजी! किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझे बताएं।" किंतु वह प्रस्ताव के बजाय भिन्न वस्तु का दान करता है। तब वह मरणोपरांत वहाँ से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न होता है, और जो भी व्यवसाय करता है, उसे अपेक्षानुसार सफ़लता नहीं मिलती।

और ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति श्रमण-ब्राह्मण के पास जाकर प्रस्ताव देता है, "गुरुजी! किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझे बताएं।" और वह प्रस्ताव के अनुसार ही अपेक्षित वस्तु का दान करता है। तब वह मरणोपरांत वहाँ से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न होता है, और जो भी व्यवसाय करता है, उसे अपेक्षानुसार सफ़लता मिलती है।

और ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति श्रमण-ब्राह्मण के पास जाकर प्रस्ताव देता है, "गुरुजी! किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझे बताएं।" और वह दिए प्रस्ताव से बेहतर वस्तु का दान करता है। तब वह मरणोपरांत वहाँ से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न होता है, और जो भी व्यवसाय करता है, अपेक्षा से अधिक सफ़ल होता है।"

«अंगुत्तरनिकाय ४:७९ : वणिज्जसुत्तं»

**राजकुमार पायासि** ने तब ब्राह्मण, श्रमण, ग़रीब, घुमक्कड़, कंगाल तथा भिखारियों के लिए दान का आयोजन किया। उस दान में वह टूटे चावल की खिचड़ी, अचार के साथ देता था; तथा गठीलें किनारे वाले रूखे वस्त्र देता था। दान आयोजन का अधीक्षक 'उत्तर' नामक ब्राह्मण तरुण था, जो दान देते हुए उद्देश्य कहता था, "इस दान से मेरा एवं राजकुमार पायासि का साथ इसी लोक तक रहे, परे नहीं।"

जब राजकुमार पायासि को ऐसा सुनने मिला, तब उसे बुलाकर पूछा, "प्रिय कुमार! क्या यह सत्य है कि तुम दान देते हुए उद्देश्य कहते हो, "इस दान से मेरा एवं राजकुमार पायासि का साथ इसी लोक तक रहे, परे नहीं।"

"हाँ, श्रीमान!"

"किंतु इस तरह तुम क्यों कहते हो…? क्या हम पुण्यलाभ की आकांक्षा कर दानफ़ल की आशा न रखें?"

"किंतु, श्रीमान! उस दान में टूटे चावल की खिचड़ी, अचार के साथ दी जाती है। इस तरह का भोजन खाना तो दूर, आप पैर से न छुएँ। उस दान में गठिलें किनारे वाले रूखे वस्त्र दिए जाते हैं। इस तरह का वस्त्र पहनना तो दूर, आप पैर से न छुएँ। आप हमारे लिए प्रिय एवं पसंदीदा है। कैसे हम प्रिय एवं पसंदीदा को अनचाहे से जोड़ दें?"

"तब, प्रिय कुमार! जैसा भोजन मैं करता हूँ, वैसा भोजन बांटने का इंतज़ाम करो। जैसे वस्त्र मैं पहनता हूँ, वैसे वस्त्र बांटने का इंतज़ाम करो।"

"हाँ, श्रीमान!" कह कर ब्राह्मण तरुण उत्तर ने ऐसा भोजन दान देने का इंतज़ाम किया, जैसे भोजन राजकुमार पायासि करता था। और ऐसे वस्त्र दान देने का इंतज़ाम किया, जैसे वस्त्र राजकुमार पायासि पहनता था। तब राजकुमार पायासि बिना ध्यान रखते हुए दान देने से, बिना स्वयं के हाथों से दान देने से, बिना सहानुभूति चित्त से दान देने से, मानो फेंक रहे हो, वैसे दान देने से मरणोपरांत **चार-महाराजा देवलोक** के रिक्त 'शिरीष महल' में उत्पन्न हुआ। जबकि ब्राह्मण तरुण उत्तर ध्यान रखते हुए दान देने से, स्वयं के हाथों से दान देने से, सहानुभूति चित्त से दान देने से मरणोपरांत **तैतीस देवलोक** के [ऊँचे] स्वर्ग में उत्पन्न हुआ[24]।

«दीघनिकाय २३ : पायासिसुत्त»

---

[24] अर्थात्, चंदा देने वाले नीचे रह जाते हैं, जबकि चंदा जमाकर स्वयं अपने हाथ से देने वाले ऊपर।

“**समय पर दान** पाँच तरह से होते हैं —

- आगन्तुक [आने वाले] को दान देना।
- गमिक [जाने वाले] को दान देना।
- रोगी को दान देना।
- दुर्भिक्ष [दुष्काल] में दान देना।
- खेत, फ़लोद्यान में पके प्रथम फ़लों को शीलवान के आगे उपस्थित करना।

समय पर देते प्रज्ञावान, उदार, जो कंजूसी से छूटे।
आर्य पर प्रसन्न होकर, ऐसे जो हो चुके सीधे।
दान देकर समय पर, दक्षिणा भी विपुल बने,
उसमे जो अनुमोदन करे, या जो सहायक बने,
दक्षिणा न व्यय होती, पुण्यभागीदार वह बने।
तो असंकोच चित्त से, वहाँ दें जहाँ महाफ़ल आए।
जीवों को परलोक में, पुण्य ही प्रतिष्ठित करे।”

«अंगुत्तरनिकाय ५:३६ : कालदानसुत्त»

“भिक्षुओं, ब्राह्मण और गृहस्थ लोग आपकी बहुत सहायता करते हैं, जो आपके चीवर, भिक्षान्न, निवास, तथा रोगी के लिए औषधि–भैषज्य आदि आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। और भिक्षुओं, आप ब्राह्मण और गृहस्थों की बहुत सहायता करते हैं, जो उन्हें ऐसा धर्म सिखाते हैं, जो शुरुवात में कल्याणकारी है, मध्य में कल्याणकारी है, तथा अन्त में कल्याणकारी है। आप ऐसा सर्वपरिपूर्ण, परिशुद्ध ‘ब्रह्मचर्य धर्म’, अर्थ एवं विवरण के साथ, व्याख्या कर के बताते हैं। इस तरह ब्रह्मचर्य जीवन परस्पर–निर्भर रहकर जीया जाता है — आस्रवनुमा बाढ़ को लांघने के लिए, दुःखों का सम्यक अन्त करने के लिए।

गृहस्थ एवं संन्यासी, रहकर परस्पर निर्भर,
दोनों पाते सद्धर्म, बन्धन से राहत सर्वोत्तर।
गृहस्थ देते हैं चीवर, और शयनासन आधार,
उन्हें संन्यासी ओढ़तें, दिक्कत से दूर रहकर।

गृहप्रेमी गृहस्थ कोई, ले जो सुगत का आधार,
आस्था रखे जो अर्हंत पर, आर्यप्रज्ञ ध्यानी पर।
यहाँ धर्मचर्या करे, जो सद्गति मार्ग पर चलकर,
देवलोक में आनंदित, कामसुख में हर्षित हो।”

«इतिवुत्तक ७८: बहुकारसुत्तं»

भगवान ने अपने मनुष्योत्तर दिव्यचक्षु से **उपासिका नन्दमाता वेळुकण्डकी** को देखा, जिसने भन्ते सारिपुत्र एवं महामोगल्लान के नेतृत्व में भिक्षुसंघ को छह अंगों से परिपूर्ण दान देने का आयोजन किया था। ऐसा देखकर भगवान ने भिक्षुओं से कहा:

“भिक्षुओं! उपासिका नन्दमाता वेळुकण्डकी ने भन्ते सारिपुत्र एवं महामोगल्लान के नेतृत्व में भिक्षुसंघ को छह अंगों से परिपूर्ण दान देने का आयोजन किया है। भिक्षुओं, **छह अंगों से परिपूर्ण दान** क्या होता है?

ऐसा है कि दायक के तीन अंग होते हैं, एवं प्राप्तकर्ता के तीन अंग।

कभी दायक — दान देने पूर्व हर्षित होता है; दान देते हुए आश्वस्त होता है; तथा दान देने के पश्चात संतुष्ट होता है। यही दायक के तीन अंग हैं।

कभी प्राप्तकर्ता — वीतरागी होता है या राग [दिलचस्पी] हटाने का अभ्यास करता है; वीतद्वेषी होता है या द्वेष [नफ़रत] हटाने का अभ्यास करता है; वीतमोही होता है या मोह [भ्रम] हटाने का अभ्यास करता है। यही प्राप्तकर्ता के तीन अंग हैं।

छह अंगों से परिपूर्ण दान का पुण्य मापना सरल नहीं है कि — ‘यह दान इतना अपार पुण्य, अपार कुशल, सुख आहार, स्वर्गिक आनंद, जो फ़लतः इतना मनचाहा, सुखद, मोहक और लाभदायक होगा।’ बल्कि इस दान को समझे कि पुण्य का यह महाढ़ेर — अथाह, असीम है!

जैसे महासमुद्र का जल मापना सरल नहीं है कि — ‘यह जल मात्र इतनी बाल्टियां हैं, या इतनी सैकड़ों बाल्टियां हैं, या इतनी हज़ार बाल्टियां हैं, या इतनी लाख बाल्टियां हैं।’ बल्कि ऐसे समझा जाता है कि यह महासमुद्र का महाजलसंग्रह अथाह, असीम है! उसी तरह इन छह अंगों से संपन्न दान का पुण्य मापना सरल नहीं है कि — ‘यह दान इतना अपार पुण्य…’ बल्कि यह दान को ऐसे समझे कि यह पुण्य का महाढ़ेर अथाह, असीम है!

पूर्व ही हर्षित होता, देते हुए आश्वस्त,
देकर संतुष्ट होता — यही यज्ञ संपन्नता।
वीतराग हो, वीतद्वेष, वीतमोह वह अनास्रव,
यज्ञक्षेत्र संपन्न हो — ब्रह्मचारी संयमी से।
स्वयं को नहला कर, दे स्वयं अपने हाथों से।
यज्ञ महाफ़लदायी हो, यूँ आत्म एवं पराए से।
ऐसा श्रद्धावान मुक्तचित्त, जो मेधावी यज्ञ करे,
तब पण्डित उत्पन्न हो, अमिश्रित सुखलोक में।"

«अंगुत्तरनिकाय ६:३७ : छळङगदानसुत्त»

**कौशल-नरेश प्रसेनजीत** दिन के मध्यस्थ भगवान के पास गया और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। भगवान ने कहा:

"महाराज! भला दिन के मध्यस्थ कहाँ से आ रहे है?"

"अभी, भन्ते! श्रावस्ती में एक गृहस्थ श्रेष्ठी [धन्नासेठ साहूकार] की मृत्यु हुई। उसकी लावारिस धनसंपत्ति — चांदी ही एक करोड़! स्वर्ण का क्या कहूँ? — सब राजमहल भिजवाकर आ रहा हूँ। भले ही वह श्रेष्ठी था, भन्ते! किंतु उसके भोजन का भोग ऐसा था — टूटे चावल की खिचड़ी, अचार के साथ खाता था! और उसके वस्त्र का भोग ऐसा था — तीन लंबाई का भांगवस्त्र पहनता था! और उसकी सवारी का भोग ऐसा था — पत्तियों का तिरपाल लगी छोटी जर्जर बैलगाड़ी से यात्रा करता था!"

"ऐसा ही होता है, महाराज! ऐसा ही होता है! उस गृहस्थ श्रेष्ठी ने अतीत जन्म में एक बार 'तगरसिखी' नामक प्रत्येकबुद्ध[25] को भिक्षा दिलवाई थी। 'श्रमण को भिक्षा दो!' कहते हुए आसन से उठकर चला गया, किंतु भिक्षा दिलवाने के पश्चात उसे पश्चाताप हुआ, 'अरे! अच्छा होता जो भिक्षा दास या नौकर ही खा लेता!' और उसने उसी जन्म में अपनी संपत्ति के लिए भाई के इकलौते वारिस को भी मरवा दिया था।

[25] प्रत्येकबुद्ध अर्थात् अकेले बुद्ध — जो बिना किसी गुरु मार्गदर्शन के चार आर्यसत्य स्वयं खोज लेते हैं, और साक्षात्कार कर विमुक्त होते हैं। किंतु जो "धर्मचक्र प्रवर्तित नहीं करते हैं", अर्थात् संघ की स्थापना नहीं करते। वे अल्पमात्र शिष्यों के साथ अथवा अकेला ही विचरण करते हुए अंततः परिनिर्वृत्त होते हैं। वे इस लोक के लिए महापुण्यक्षेत्र होते हैं।

तब तगरसिखी प्रत्येकबुद्ध को भिक्षा दिलवाने के फ़लस्वरूप, वह मरणोपरांत सात बार सद्गति होकर स्वर्ग में उपजा। तथा उसी कर्म के शेष रहे फ़लस्वरूप, वह इसी श्रावस्ती में सात बार गृहस्थ श्रेष्ठी बना। किंतु जो उसे भिक्षा देने पश्चात पश्चाताप हुआ, 'अरे! अच्छा होता जो भिक्षा दास या नौकर ही खा लेता!' — उसके फ़लस्वरूप उसका चित्त न कभी भोजन का लुत्फ़ उठा पाया, न कभी वस्त्रों का लुत्फ़ उठा पाया, न कभी सवारी का लुत्फ़ उठा पाया, न ही कभी पञ्चकामसुख[26] का लुत्फ़ उठा पाया।

संपत्ति के लिए भाई के इकलौते वारिस को मरवाने के फ़लस्वरूप, वह कई वर्षों तक, कई सैकड़ों वर्षों तक, कई हजारों वर्षों तक, कई लाखों वर्षों तक नर्क में उबलता रहा। तथा उसी कर्म के शेष रहे फ़लस्वरूप, वह अब सातवीं बार अपनी लावारिस हो चुकी धनसंपत्ति को राजकोष के लिए छोड़ गया।

और महाराज, पुराने पुण्य व्यय हो जाने से और नए पुण्यों को संचित न करने से, अब वह गृहस्थ श्रेष्ठी महारौरव नर्क में उबल रहा है।"

"तो, भन्ते! वह गृहस्थ श्रेष्ठी महारौरव नर्क में उत्पन्न हुआ है?"

"हाँ, महाराज! वह गृहस्थ श्रेष्ठी महारौरव नर्क में उत्पन्न हुआ है।

जब कोई **असत्पुरुष** महाधनसंपत्ति प्राप्त करे — तब वह न स्वयं को सुख संतुष्टि दे पाता है, न माता-पिता को सुख संतुष्टि दे पाता है, न पत्नी बच्चों को सुख संतुष्टि दे पाता है, न दास-नौकर एवं सहायकों को सुख संतुष्टि दे पाता है, न ही मित्र-सहचारियों को सुख संतुष्टि दे पाता है। वह न श्रमण-ब्राह्मणों के लिए यज्ञ [दानदक्षिणा] का आयोजन करता है, जो सर्वोच्च ध्येय उद्देश्य से, स्वर्गिक सुख परिणामी हो, तथा ऊँचे स्वर्ग ले जाए।

और जब उसकी धनसंपत्ति का उचित उपयोग न हो — तब उसे अंततः राजा निपटाते है, या चोर निपटाते है, या अग्नि जला देती है, या जल बहा देती है, या नफ़रती वारिस निपटाता है। इस तरह उसकी धनसंपत्ति उचित उपयोग न होने से बर्बाद हो जाती है, किसी अच्छे काम नहीं आती।

[26] पञ्चकामसुख अर्थात्, आँख पर टकराता रूप — जो मनचाहा हो, सुखद लगे, मोहक हो, प्रिय लगे, लुभावना रहे, कामुकता से जुड़ा हो। कान पर टकराती आवाज़... नाक पर टकराती गन्ध... जीभ पर टकराता स्वाद... शरीर पर टकराता संस्पर्श — जो मनचाहा हो, सुखद लगे, मोहक हो, प्रिय लगे, लुभावना रहे, कामुकता से जुड़ा हो।

जैसे महाराज, अमनुष्यों से घिरे किसी भूतिया जगह पर एक तालाब हो — शुद्ध जल, शीतल जल, ताज़ा स्वच्छ जल से भरा, अच्छे किनारों से घिरा, अत्यंत रमणीय! किंतु जिसे लोग न निकाल पाए, न पी पाए, न नहा पाए, न किसी उपयोग ला पाए। इस तरह उचित उपयोग न होने से वह जल बर्बाद हो जाता है, किसी अच्छे काम नहीं आता। उसी तरह, जब कोई असत्पुरुष महाधनसंपत्ति प्राप्त करे... तब उसकी धनसंपत्ति बर्बाद हो जाती है, किसी अच्छे काम नहीं आती।

किंतु महाराज, जब कोई **सत्पुरुष** महाधनसंपत्ति प्राप्त करे — तब वह स्वयं को सुख संतुष्टि देता है, माता-पिता को सुख संतुष्टि देता है, पत्नी बच्चों को सुख संतुष्टि देता है, दास-नौकर एवं सहायकों को सुख संतुष्टि देता है, मित्र-सहचारियों को सुख संतुष्टि देता है। तथा वह श्रमण-ब्राह्मणों के लिए दानदक्षिणा का आयोजन करता है, जो सर्वोच्च ध्येय उद्देश्य से, स्वर्गिक सुख परिणामी हो, तथा ऊँचे स्वर्ग ले जाए!

और जब उसकी धनसंपत्ति का इस तरह उचित उपयोग हो — तब उसे न राजा निपटाते है, न ही चोर निपटाते है, न अग्नि जलाती है, न जल बहाती है, न ही नफ़रती वारिस निपटाता है। इस तरह उसकी धनसंपत्ति उचित उपयोग होने से बर्बाद नहीं होती, बल्कि किसी अच्छे काम आती है।

जैसे महाराज, शहर या गांव के करीब एक तालाब हो — शुद्ध जल, शीतल जल, ताज़ा स्वच्छ जल से भरा, अच्छे किनारों से घिरा, अत्यंत रमणीय! जिसे लोग निकाल पाएँ, पी पाएँ, नहा पाएँ, अपने उपयोग ला पाएँ। इस तरह जल उचित उपयोग होने से बर्बाद नहीं होता, बल्कि किसी अच्छे काम आता है। उसी तरह, जब कोई सत्पुरुष महाधनसंपत्ति प्राप्त करे... तब उसकी धनसंपत्ति बर्बाद नहीं होती, बल्कि किसी अच्छे काम आती है।

भूतिया जगह तालाब हो शीतल
बिना जल निकाले जो सूख जाए।
ऐसा धन हो नालायक पुरुष का
जो न स्वयं भोग करे, न दान करे।
किंतु धैर्यवान विद्वान हो — उसे जो भोग मिले
वह स्वयं भोग करे, दायित्व भी निभाए।
और वह मर्दाना — रिश्तेदारों को भी खिलाएँ,

तब अनिंदित रह स्वर्गिक स्थानों में भी जाए।”

«संयुत्तनिकाय ३:१९ + ३:२० : पुत्तकसुत्त»

“पूँजी जमाकर रखे पुरुष, भीतर गहरे जलस्तर तक
[सोचते हुए:] ‘ज़रूरत आए या ज़िम्मेदारी, देगी मदद भविष्य में!
जो धर ले राजा, या चोर करे पीड़ित,
कर्ज़, दुर्भिक्ष या आपदा, आएगा काम रिहाई में!’
— इसी अर्थ से छिपाई जाती, जमापूँजी इस लोक में।
किंतु रखे जितना सुरक्षित, भीतर गहरे जलस्तर तक
न आए मदद हमेशा, ज़रूरत आन पड़ने पर।
स्थान बदलती है पूँजी, या भरमा जाती है स्मृति।
अपना बना लेते नाग, या यक्ष चुरा लेते है।
अप्रिय दायाद हो अगर, ले उसे भाग जाता है।
या पुण्य ख़त्म हो जाने पर, स्वयं विनाश हो जाती है।

किंतु दान एवं शील की, संयम, स्वयं पर काबू की
पूँजी जमाकर रखे कोई, स्त्री अथवा पुरुष हो।
—चैत्य में या संघ में, किसी व्यक्ति या अतिथि में,
माता में या पिता में, या ज्येष्ठ भाई-बहन में—
वह पूँजी वाकई सुरक्षित! उसे न कोई छीन पाए।
लोक छोड़कर जाएँ जहाँ, साथ पीछे आ जाए।
पूँजी वह असाधारण है, चोर भी न चुरा पाए।
इसलिए पुण्य करें विद्वान, पीछे चलती वो पूँजी।
चाहत देव-मनुष्यों की सभी, पूर्ण करती वो पूँजी।”

«खुद्दकनिकाय ८ : निधिकण्डसुत्त»

**ब्राह्मण जाणुस्सोणि** भगवान के पास गया और नम्रतापूर्ण हालचाल लेकर एक-ओर बैठ गया। उसने बैठकर भगवान से कहा:

"हे गोतम! आप जानते हैं कि हम ब्राह्मण दान देते हैं, **श्राद्ध** करते हैं, [कहते हुए] 'यह दान हमारे मृतपूर्वजों को प्राप्त हों! हमारे मृतपूर्वज इस दान का सेवन करें!' किंतु, हे गोतम! क्या हमारे मृतपूर्वजों को इस तरह का दान प्राप्त होता है? क्या हमारे मृतपूर्वज इस तरह के दान का सेवन करते हैं?"

"स्थान पर प्राप्त होता है, ब्राह्मण, अस्थान पर नहीं।"

"क्या स्थान है, हे गोतम, और क्या अस्थान?"

"ऐसा होता है, ब्राह्मण, कि कोई व्यक्ति जीवहत्या, चोरी, या व्यभिचार करता है; झूठ, फूट डालनेवाली, कटु या निरर्थक बातें करता है; लालची, दुर्भावनापूर्ण विचार या मिथ्यादृष्टि धारण [=दस अकुशल] करता है। वह मरणोपरांत **नर्क... अथवा पशुयोनी** में उत्पन्न होता है। वहाँ नारकीय सत्वों... अथवा पशुओं का जो आहार हो, उसी पर वह यापन करता है, उसी पर जीवित रहता है। इसलिए वे **अस्थान** हैं, ब्राह्मण! यहाँ से किया दान वहाँ रहते हुए प्राप्त नहीं होता है।

ऐसा भी होता है, ब्राह्मण कि कोई व्यक्ति जीवहत्या, चोरी, या व्यभिचार से विरत रहता है; झूठ, फूट डालनेवाली, कटु या निरर्थक बातों से विरत रहता है; न लालची, न दुर्भावनापूर्ण विचार, बल्कि सम्यकदृष्टि धारण [=दस कुशल] करता है। वह मरणोपरांत यहाँ **मानवीय लोक... अथवा स्वर्ग** में देवताओं के साथ उत्पन्न होता है। यहाँ मानवों... अथवा देवताओं का जो आहार हो, उसी पर वह यापन करता है, उसी पर जीवित रहता है। इसलिए वे भी **अस्थान** हैं, ब्राह्मण! यहाँ से किया दान वहाँ रहते हुए भी प्राप्त नहीं होता है।

किंतु ऐसा होता है, ब्राह्मण, कि कोई व्यक्ति जीवहत्या आदि [=दस अकुशल] करता है। वह मरणोपरांत **भूखे प्रेतलोक** में उत्पन्न होता है। अब उसे उद्देश्य कर उसके रिश्तेदार एवं मित्र दान देते हैं, वह उसी पर वहाँ यापन करता है, उसी पर जीवित रहता है। इसलिए वही **स्थान** हैं, ब्राह्मण! वही रहते दान प्राप्त होता है।"

"किंतु, हे गोतम! यदि उद्देश्य किया मृतपूर्वज स्थान [=प्रेतलोक] पर उत्पन्न न हुआ हो, तब उस दान का सेवन कौन करता है?"

"जो अन्य मृतपूर्वज वहाँ उत्पन्न हुए हो, वे उसका सेवन करते हैं।"

“यदि अन्य मृतपूर्वज भी स्थान पर उत्पन्न न हुए हो, तब उस दान का सेवन कौन करता है?”

“असंभव है, ब्राह्मण! ऐसा नहीं हो सकता कि दीर्घकाल में कोई भी अन्य मृतपूर्वज वहाँ न उत्पन्न हुआ हो। हालांकि ऐसा हो तब भी दाता निष्फ़ल नहीं जाता।”

“क्या गुरु गोतम अस्थान के लिए कोई तैयारी बताते है?”

“हाँ, ब्राह्मण! निश्चित ही मैं अस्थान के लिए तैयारी बताता हूँ। ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति जीवहत्या आदि [=दस अकुशल] करता है, और श्रमण-ब्राह्मणों को भोजन, पेय, वस्त्र, वाहन, माला, गन्ध, लेप, पलंग, निवास, दीपक आदि दान करता है। तब वह मरणोपरांत **हाथी... अश्व... गाय... भैंस... पालतू पशुपक्षी** समूह में जन्म लेता है। उसे वहाँ भोजन, पेय, माला और नाना अलंकारों से आभुषित किया जाता है। चूंकि वह जीवहत्या आदि [दस अकुशल] करता था, इसलिए पशुयोनि में उत्पन्न होता है। और वह श्रमण-ब्राह्मणों को भोजन, पेय आदि दान करता था, इसलिए भोजन, पेय, माला और नाना अलंकारों से आभुषित किया जाता है।

और ऐसा होता है कि एक व्यक्ति जीवहत्या आदि से विरत [दस कुशल] रहता है, और श्रमण-ब्राह्मणों को भोजन, पेय आदि दान भी करता है। मरणोपरांत वह **मानवों... या देवताओं** में उत्पन्न होता है। वहाँ उसे मानवीय... या दिव्य पञ्चकामसुख प्राप्त होता है। चूंकि वह [दस कुशल] करता था, इसलिए मानवों... या देवताओं में उत्पन्न होता है। और वह श्रमण-ब्राह्मणों को भोजन, पेय आदि दान करता था, इसलिए उसे मानवीय... या दिव्य पञ्चकामसुख प्राप्त होता है।”

“आश्चर्य है, हे गोतम! अद्भुत है! दान करने का, श्राद्ध करने का यही कारण पर्याप्त है कि ‘दाता कभी निष्फ़ल नहीं जाता।’”

“ऐसा ही है, ब्राह्मण! ऐसा ही है! दाता कभी निष्फ़ल नहीं जाता।”

“अतिउत्तम, ही गोतम! अतिउत्तम! जैसे कोई पलटे को सीधा करे, छिपे को खोल दे, भटके को मार्ग दिखाए, या अँधेरे में दीप जलाकर दिखाए, ताकि अच्छी आँखोंवाला स्पष्ट देख पाए — उसी तरह गुरु गोतम ने धर्म को अनेक तरह से स्पष्ट कर दिया। मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ! धर्म एवं संघ की! गुरु गोतम मुझे आज से लेकर प्राण रहने तक शरणागत उपासक धारण करें!”

«अंगुत्तरनिकाय १०:१७७ : जाणुस्सोणिसुत्त»

“**पाँच स्वभाव** त्यागे बिना, कोई भी प्रथम झान.. द्वितीय झान.. तृतीय झान.. चतुर्थ झान में प्रवेश पाकर नहीं रह सकता। तथा श्रोतापत्तिफ़ल... सकृदागामीफ़ल... अनागामीफ़ल... अर्हंतफ़ल का साक्षात्कार करने में असक्षम होता है। कौन से पाँच?

- आवास के प्रति कंजूसी,
- कुलपरिवार [दायक] के प्रति कंजूसी,
- प्राप्त वस्तुओं के प्रति कंजूसी,
- प्रतिष्ठा के प्रति कंजूसी, तथा
- धर्म के प्रति कंजूसी।”

«अंगुत्तरनिकाय ५:२५६ + २५७ : पठमझानसुत्त »

**मुखिया असिबन्धकपुत्र** ने भगवान से कहा:

“भन्ते! क्या भगवान कुलपरिवारों के प्रति अनुकंपा, सुरक्षा और हमदर्दी की अनेक तरह से प्रशंसा नहीं करते हैं?”

“हाँ, मुखिया! तथागत कुलपरिवारों के प्रति अनुकंपा, सुरक्षा और हमदर्दी की अनेक तरह से प्रशंसा करते हैं।”

“तब भन्ते! नालंदा में पड़े दुर्भिक्ष के बीच, अभाव के समय, जब फ़सलें मुरझाकर सफ़ेद पड़कर पुआल में बदल रही हैं, भगवान महाभिक्षुसंघ के साथ कैसे विचरण कर रहे हैं? भगवान कुलपरिवारों को तबाह कर रहे हैं। भगवान कुलपरिवारों का अन्त कर रहे हैं। भगवान कुलपरिवारों को बर्बाद कर रहे हैं।”

“मुखिया! मैं बीते ९१ कल्पों का स्मरण कर एक भी कुलपरिवार नहीं जानता हूँ, जिसकी तबाही भोजनदान देने से हुई हो। उसी के ठीक विपरीत, आज जो भी कुलपरिवार महाधनी, महाभोगशाली, महासंपत्तिशाली हैं, अनेकानेक संपदाओं के स्वामी, विशाल मुद्राकोष धारक, अनेकानेक सामग्रीयों के मालिक, अनेकानेक उत्पाद भंडारों के स्वामी हैं — वे सभी मात्र ‘**दान, सत्य एवं संयम**’ के ही फ़लस्वरूप हैं।”

«संयुत्तनिकाय ४२:९ : कुलसुत्त»

**कौशल-नरेश प्रसेनजित** ने एक-ओर बैठते हुए भगवान से कहा:

"भन्ते! दान कहाँ देना चाहिए?"

"जहाँ आस्था हो, महाराज!"

"किंतु, भन्ते! कहाँ देने से महाफ़ल होता है?"

"अब, महाराज! "दान कहाँ देना चाहिए?"— यह एक प्रश्न है। जबकि "कहाँ देने से महाफ़ल होता है?"— यह प्रश्न सर्वथा भिन्न है। तब मैं कहता हूँ कि दुष्शील के बजाय शीलवान को देने से महाफ़ल होता है।

इस प्रसंग में, महाराज, मैं प्रतिप्रश्न पूछता हूँ। आपको जैसा उचित लगे, उत्तर दे। क्या लगता है, महाराज? कभी ऐसा हो कि सिर पर युद्ध हो, संग्राम अटल हो। तब कोई क्षत्रिय युवक आए — न प्रशिक्षित, न अभ्यस्त, न अनुशासित, न कवायद किया हो। बल्कि डरपोक, आतंकित, कायर, तुरंत भाग खड़ा होने वाला हो! क्या आप उसे लेंगे? क्या आपको ऐसे पुरुष का कोई उपयोग होगा?"

"नहीं, भन्ते! मैं उसे नहीं लूंगा। मुझे ऐसे पुरुष का कोई उपयोग न होगा।"

"...या कोई ब्राह्मण युवक आए... वैश्य युवक आए... शुद्र युवक आए — न प्रशिक्षित, न अभ्यस्त, न अनुशासित, न कवायद किए हो। बल्कि डरपोक, आतंकित, कायर, तुरंत भाग खड़ा होने वाले हो। क्या आप उन्हें लेंगे? क्या आपको ऐसे पुरुषों का कोई उपयोग होगा?"

"नहीं, भन्ते! मैं उन्हें नहीं लूंगा। मुझे ऐसे पुरुषों का कोई उपयोग न होगा।"

"...किंतु यदि कोई क्षत्रिय... ब्राह्मण... वैश्य... अथवा शुद्र युवक आए — सुप्रशिक्षित, सुअभ्यस्त, सुअनुशासित, कवायद किया, निडर, न आतंकित, साहसी, तुरंत न भाग खड़ा होने वाला। क्या आप उन्हें लेंगे? क्या आपको ऐसे पुरुषों का कोई उपयोग होगा?"

"हाँ, भन्ते! उन्हें मैं लूंगा। ऐसे पुरुषों का मुझे उपयोग होगा।"

"उसी तरह, महाराज! कोई **किसी भी कुल [वर्ण] से** घर से बेघर होकर प्रवज्यित हो — किंतु **पाँच अंगों का त्यागी**, एवं **पाँच अंगों से संपन्न** हो — उसे जो दिया जाएँ, महाफ़ल होता हैं।

- कामेच्छा... दुर्भावना... सुस्ती एवं तंद्रा... बेचैनी एवं पश्चाताप... अनिश्चितता — इन पाँच अंगों [नीवरण] का त्यागी हो।

- अशैक्ष्यों [अर्हंतों] के शील... समाधि... अंतर्ज्ञान... विमुक्ति... विमुक्ति ज्ञानदर्शन संग्रह — इन पाँच अंगों से संपन्न हो।

ऐसे पंचाङ्ग त्यागी एवं पंचाङ्ग संपन्न को जो दिया जाएँ, महाफ़ल होता हैं।"

भगवान ने ऐसा कहा। ऐसा कहकर सुगत ने, शास्ता ने आगे कहा:

"जिसमें बल हो, ऊर्जा हो, युवक तीरंदाज़ हो,
उसे ले युद्धार्थी राजा, न जाति देख किसी कायर को।
ऐसे ही क्षमा हो, धैर्य हो, आर्यधर्म प्रतिष्ठित हो,
भले हीन जाति का हो, पूजिएँ उस मेधावी को।
उस ज्ञानी को न्योता दें, आश्रम बनाएँ रमणीय,
सूखे वन में बनाएँ जलाशय, विकट जगह पथ चक्रमण।
दें प्रसन्न चित्त से, अन्न पान दें, खाद्य दें,
वस्त्र दें, आवास दें, उन्हें जो हो चुके सीधे।
जैसे गरजते मेघ हो, ओढ़े सौ-कोण बिजलीमाला,
बरसाती उपजाऊ थल पर, भर देती पठार नाला।
वैसे ही श्रद्धावान श्रुतवान, जमाएँ भोज भंडार को,
अन्नपान से तुष्ट करें, उस यात्री पण्डित को।
प्रमुदित होता बांट कर, 'दो! उन्हें दो!' कहता है,
वही है उसकी गर्जना, जैसे देव वर्षा कराते हैं।
ऐसी विपुल पुण्यधारा लौट, दायक पर बरसती है।"

«संयुत्तनिकाय ३:२४ : इस्सत्तसुत्त»

**घुमक्कड़ वच्छगोत्र** भगवान के पास गया और नम्रतापूर्ण हालचाल लेकर एक-ओर बैठ गया। उसने बैठकर भगवान से कहा:

"हे गोतम! मैंने सुना है — 'श्रमण गोतम कहते हैं, "मुझे ही दक्षिणा दी जानी चाहिए, पराए को नहीं। मेरे शिष्यों को ही दक्षिणा दी जानी चाहिए, पराए शिष्यों को नहीं। मुझे ही दक्षिणा देने से महाफ़ल प्राप्त होता है, पराए को देने से नहीं। मेरे शिष्यों को ही दक्षिणा देने से महाफ़ल प्राप्त होता है, पराए शिष्यों को देने से नहीं।"' — जो

ऐसा कहते हो, क्या वे वाकई गुरु गोतम के ही शब्द उल्लेख करते हैं? कही वे तथ्यहीन शब्दों से तथागत का मिथ्यावर्णन तो नहीं करते? क्या वे धर्मानुरूप ही कहते हैं, ताकि सहधार्मिक व्यक्ति के पास आलोचना की कोई बात न हो? चूंकि हमें गुरु गोतम का मिथ्यावर्णन नहीं करना है।"

"वच्छ! जो ऐसा कहते हो — 'श्रमण गोतम कहते हैं, "मुझे ही दक्षिणा दी जानी चाहिए, पराए को नहीं। मेरे शिष्यों को ही दक्षिणा दी जानी चाहिए, पराए शिष्यों को नहीं। मुझे ही दक्षिणा देने से महाफ़ल प्राप्त होता है, पराए को देने से नहीं। मेरे शिष्यों को ही दक्षिणा देने से महाफ़ल प्राप्त होता है, पराए शिष्यों को देने से नहीं।"' — वे वाकई मेरे शब्द उल्लेख नहीं करते हैं। वे तथ्यहीन एवं असत्य शब्दों से मेरा मिथ्यावर्णन करते हैं।

वच्छ! जो किसी को दक्षिणा देने से रोकें, वह तीन बाधाएँ, तीन अवरोध उत्पन्न करता है। कौन से तीन?

- दायक के पुण्य में बाधा उत्पन्न करता है।
- प्राप्तकर्ता के लाभ में बाधा उत्पन्न करता है।
- उनसे पूर्व वह स्वयं को क्षतिग्रस्त करता है।

वच्छ! मैं कहता हूँ कि भले ही कोई पात्र या थाली के धोवन को गांव के कुंड या तालाब में फेंकते हुए सोचे, 'यहाँ रहते जीव इसका सेवन करें' — जब केवल इतना भी करना पुण्यस्त्रोत है, तो मानवों को देने की बात ही क्या! हालांकि मैं यह ज़रूर कहता हूँ कि शीलवान को दिया महाफ़ल होता है, दुश्शील को उतना नहीं।"

«अंगुत्तरनिकाय ३:५८ : वच्छगोत्तसुत्त»

"तीन **अग्र आस्थाएँ** होती हैं। कौन से तीन?

• जितने **सत्व** हैं — बेपैर, दोपैर, चारपैर या बहुपैर; रूप या अरूप; संज्ञी, असंज्ञी या नसंज्ञी-नअसंज्ञी — सभी में 'तथागत अर्हंत सम्यकसम्बुद्ध' अग्र हैं! जिसकी बुद्ध में आस्था हो, उसकी अग्र में आस्था है। जिसकी अग्र में आस्था हो, उसे अग्रफ़ल मिलता है।

• जितने रचित या अरचित **धर्म** हैं — सभी में अग्र 'विराग' है, जो नशा उतारे, प्यास बुझाए, आसक्ति उखाड़े, चक्र तोड़े, तृष्णा मिटाए, विराग निरोध निर्वाण का

साक्षात्कार कराए। जिसकी विराग में आस्था हो, उसकी अग्र में आस्था है। जिसकी अग्र में आस्था हो, उसे अग्रफ़ल मिलता है।

• जितने **संघ** अथवा गुट हैं — सभी में अग्र 'तथागत का श्रावकसंघ' है, चार जोड़ी में, आठ व्यक्तित्व में। जिसकी संघ में आस्था हो, उसकी अग्र में आस्था है। जिसकी अग्र में आस्था हो, उसे अग्रफ़ल मिलता है।

जो अग्र में प्रसन्न हो, अग्रधर्म बोध करते हैं।
प्रसन्न अग्र बुद्ध में — दक्षिणेय अनुत्तर!
प्रसन्न अग्र धर्म में — प्रशान्त सुखद विराग!
प्रसन्न अग्र संघ में — पुण्यक्षेत्र अनुत्तर!
वे अग्र [वस्तुओं] का दान कर, अग्र पुण्य बढ़ाते हैं,
अग्र — आयु सौंदर्य यश कीर्ति सुख एवं बल!
अग्रदाता मेधावी, अग्र धर्म में समाहित हुए,
देव बने या मानव, अग्रता पाकर खुशी मनाते हैं।"

«इतिवुत्तक ९० : अग्गप्पसादसुत्त»

"**दान** दो तरह से होता है — आमिषदान [=सांसारिक वस्तुगत] एवं धर्मदान। दोनों में अग्र है — धर्मदान!

**संविभाग** [बांटना] दो तरह से होता है — आमिष-संविभाग एवं धर्म-संविभाग। दोनों में अग्र है — धर्म-संविभाग!

**सहायता** दो तरह से होती है — आमिष-सहायता एवं धर्म-सहायता। दोनों में अग्र है — धर्म-सहायता!"

«इतिवुत्तक ९८ : दानसुत्त»

"आनंद! **दूसरे को धर्मदेशना** देना सरल नहीं है। दूसरे को धर्मदेशना तभी देना चाहिए, जब भीतर पाँच गुण मौजूद हो। कौन से पाँच?

• '«अनुपुब्बिकथं» अनुक्रमपूर्ण[27] धर्म बताऊँगा।'

---

[27] अनुक्रमपूर्ण अर्थात् प्रथम दान की बातें.. शील की बातें.. स्वर्ग की बातें.. कामुकता के दुष्परिणाम, पतन एवं दूषितता बताकर, तब 'संन्यास के लाभ' प्रकाशित करना। तब देखा जाने पर कि श्रोता का

- ‘अनुक्रम का [प्रासंगिक] वर्णन करूँगा।’
- ‘करुणचित्त से बताऊँगा।’
- ‘आमिषलाभ के लक्ष्य से नहीं बताऊँगा।’
- ‘न स्वयं पर, न पराए पर आघात पहुँचाते हुए बताऊँगा।’”

«अंगुत्तरनिकाय ५:१५९ : उदायीसुत्त»

[एक देवता:]

“क्या देने वाला बल देता है? क्या देने वाला सौंदर्य?
क्या देने वाला सुख देता है? क्या देने वाला चक्षु?
और क्या देने वाला सब देता है? पूछता हूँ, बताएँ मुझे।”

[भगवान:]

“अन्न देने वाला बल देता है। वस्त्र देने वाला सौंदर्य।
गाड़ी [सवारी] देने वाला सुख देता है। दीपक देने वाला चक्षु।
और जो देता आवास है, वह देता है ‘सब कुछ’!
अमृत मात्र वह देता है, जो देता है ‘धर्म’!”

«संयुत्तनिकाय १:४२ : किंददसुत्त»

★ ★ ★

---

चित्त — तैयार, मृदु, बिना व्यवधान का, उल्लासित एवं आश्वस्त हुआ हो — तब बुद्धविशेष धर्मदेशना उजागर करना — दुःख, उत्पत्ति, निरोध, मार्ग [=चार आर्यसत्य]।

अध्याय पाँच

# शील

**भगवान** ने कहा:

“**पाँच तरह के दान** — महादान है, आदिम है, सनातन है, पारंपरिक है, पुरातन है, मिलावट-रहित है, प्रारंभ से मिलावट-रहित है, संदेह-रहित है, संदेह-रहित ही रहेंगे, विद्वान श्रमणों एवं ब्राह्मणों द्वारा निर्दोष कहे जाते हैं। कौन से पाँच?

• कोई आर्यश्रावक हिंसा त्यागकर, जीवहत्या से विरत रहता है। ऐसा कर वह असंख्य सत्वों को **ख़तरे** से मुक्ति, **शत्रुता** से मुक्ति, एवं **पीड़ा** से मुक्ति प्रदान करता है। वह असंख्य सत्वों को ख़तरे से मुक्ति, शत्रुता से मुक्ति, एवं पीड़ा से मुक्ति प्रदान कर स्वयं ख़तरे, शत्रुता एवं पीड़ा से असीम मुक्ति में भागीदार बनता है।

• कोई आर्यश्रावक न सौंपी चीज़ें त्यागकर, चोरी से विरत रहता है...

• कोई आर्यश्रावक कामुक-मिथ्याचार त्यागकर, व्यभिचार से विरत रहता है...

• कोई आर्यश्रावक झूठ बोलना त्यागकर, असत्यवचन से विरत रहता है...

• कोई आर्यश्रावक शराब मद्य आदि त्यागकर, मदहोश करने वाले नशेपते से विरत रहता है। ऐसा कर वह असंख्य सत्वों को ख़तरे से मुक्ति, शत्रुता से मुक्ति, एवं पीड़ा से मुक्ति प्रदान करता है। वह असंख्य सत्वों को ख़तरे से मुक्ति, शत्रुता से मुक्ति, एवं पीड़ा से मुक्ति प्रदान कर स्वयं ख़तरे, शत्रुता एवं पीड़ा से असीम मुक्ति में भागीदार बनता है।

यह पाँच तरह के दान — महादान है, आदिम है, सनातन है, पारंपरिक है, पुरातन है, मिलावटरहित है, प्रारंभ से मिलावटरहित है, संदेहरहित है, संदेहरहित ही रहेंगे, विद्वान श्रमणों एवं ब्राह्मणों द्वारा निर्दोष कहे जाते हैं।”

«अंगुत्तरनिकाय ८:३९ : अभिसन्दसुत्त»

“**अकुशल** क्या है?

• जीवहत्या अकुशल है। चुराना अकुशल है। व्यभिचार अकुशल है।

• झूठ बोलना अकुशल है। फूट डालनेवाली बातें करना अकुशल है। कटु बोलना अकुशल है। निरर्थक बोलना अकुशल है।

• लालच अकुशल है। दुर्भावना अकुशल है। मिथ्यादृष्टि अकुशल है।

**कुशल** क्या है?

• जीवहत्या से विरत रहना कुशल है। चुराने से विरत रहना कुशल है। व्यभिचार से विरत रहना कुशल है।

• झूठ बोलने से विरत रहना कुशल है। फूट डालनेवाली बातें करने से विरत रहना कुशल है। कटु बोलने से विरत रहना कुशल है। निरर्थक बोलने से विरत रहना कुशल है।

• लालच से विरत रहना कुशल है। दुर्भावना से विरत रहना कुशल है। सम्यकदृष्टि कुशल है।”

«मज्झिमनिकाय ९ : सम्मादिट्ठिसुत्त»

“न प्राण हरें, न घात करें, न घात पराए से स्वीकार करें,
स्थिर, कमज़ोर – सभी जीवों के प्रति, दण्ड नीचे फेंक दें।
‘न सौंपी’ वस्तु कहीं कोई, श्रावक जानकर छोड़ दें,
न करवाएँ, न स्वीकार करें – सभी चोरियां त्याग करें।
अब्रह्मचर्य छोड़ दें ज्ञानी, जैसे हो धधकते अँगारे।
ब्रह्मचर्य यदि असंभव हो, तब परस्त्रीगमन ना करें।
सभा हो या परिषद, या एक हो, झूठ न बोल रे,
न बुलवाएँ, न स्वीकार करें – सभी असत्य त्याग दें।
मद्यपान न सेवन करें, ये धर्म जो गृहस्थ मंज़ूर करे,
न पिलाएँ, न स्वीकार करें, जान अन्त हो उन्माद में।
पाप करे मूर्ख धुत नशे में, मदहोश जनों से करवाए,
इस अपुण्यद्वार से दूर रहें, उन्माद-भ्रम मूर्खों को ललचाए।”

«सुत्तनिपात २:१४ : धम्मिकसुत्त»

**कौशल-नरेश प्रसेनजित** ने एक-ओर बैठते हुए भगवान से कहा:

"अभी, भन्ते! मैं एकांतवास में अकेला था, तब मेरे चित्त में विचारों की श्रृंखला उठी — 'कौन स्वयं को रक्षित करता है, और कौन स्वयं को अरक्षित?'

तब मुझे लगा, 'जो काया से दुराचार, वाणी से दुराचार, एवं मन से दुराचार करते हैं — वे स्वयं को अरक्षित रखते हैं। भले ही उनकी रक्षा के लिए हाथीसेना की टुकड़ी, अश्वरोहीसेना की टुकड़ी, रथसेना की टुकड़ी, पैदलसेना की टुकड़ी तैनात की गई हो, तब भी वे असुरक्षित ही हैं। क्योंकि वह बाहरी सुरक्षा है, भीतरी नहीं। इसलिए वे असुरक्षित ही हैं।

किंतु जो काया से सदाचार, वाणी से सदाचार, एवं मन से सदाचार करते हैं — वे स्वयं को रक्षित रखते हैं। भले ही उनकी रक्षा के लिए न हाथीसेना की टुकड़ी, न अश्वरोहीसेना की टुकड़ी, न रथसेना की टुकड़ी, न पैदलसेना की टुकड़ी तैनात की गई हो, तब भी वे सुरक्षित ही हैं। क्योंकि वह भीतरी सुरक्षा है, बाहरी नहीं। इसलिए वे वाकई सुरक्षित हैं।'"

[भगवान:]

"ऐसा ही है, महाराज! ऐसा ही है! 'जो काया से दुराचार, वाणी से दुराचार, एवं मन से दुराचार करते हैं — वे स्वयं को अरक्षित रखते हैं। भले ही उनकी रक्षा के लिए हाथीसेना की टुकड़ी, अश्वरोहीसेना की टुकड़ी, रथसेना की टुकड़ी, पैदलसेना की टुकड़ी तैनात की गई हो, तब भी वे असुरक्षित ही हैं। क्योंकि वह बाहरी सुरक्षा है, भीतरी नहीं। इसलिए वे असुरक्षित ही हैं।

किंतु जो काया से सदाचार, वाणी से सदाचार, एवं मन से सदाचार करते हैं — वे स्वयं को रक्षित रखते हैं। भले ही उनकी रक्षा के लिए न हाथीसेना की टुकड़ी, न अश्वरोहीसेना की टुकड़ी, न रथसेना की टुकड़ी, न पैदलसेना की टुकड़ी तैनात की गई हो, तब भी वे सुरक्षित ही हैं। क्योंकि वह भीतरी सुरक्षा है, बाहरी नहीं। इसलिए वे वाकई सुरक्षित हैं।'"

ऐसा भगवान ने कहा। ऐसा कहकर सुगत ने, शास्ता ने आगे कहा:

**"कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।**
**मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो।**
**सब्बत्थ संवुतो लज्जी, रक्खितोति पवुच्चती"**

काया से संवर है भला, भला है वाणी से संवर।
मन से संवर है भला, भला है सर्वत्र संवर।
जो सर्वत्र संवृत शर्मिला, ‘रक्षित’ है कहलाता।

«संयुत्तनिकाय ३:५ : अत्तरक्खितसुत्त»

**उदकञ्हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं।**
**दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति सुब्बता।।**
जलप्रवाह निकाले सिंचक, बाणकार तीर को धार दे।
काष्ठ को आकार दे बढ़ई, संवृत स्वयं को वश में करे।

«धम्मपद दण्डवग्गो १४५»

**उट्ठानेनप्पमादेन, संयमेन दमेन च।**
**दीपं कयिराथ मेधावी, यं ओघो नाभिकीरति।।**
प्रयास से, अप्रमाद से, संयम से, आत्मवश से,
द्वीप गढ़ते मेधावी, न डूब सके जो बाढ़ से।

«धम्मपद अप्पमादवग्गो २५»

**कौशल-नरेश प्रसेनजित** ने एक-ओर बैठते हुए भगवान से कहा:

“अभी भन्ते! मैं दरबार में न्याय करने बैठा था तो देखा महासंपन्न क्षत्रिय, महासंपन्न ब्राह्मण, महासंपन्न वैश्य गृहस्थ — महाधनी, महाभोग महासंपत्तिशाली, विराट स्वर्ण एवं मुद्राकोष के धारक, विशाल सामग्रीभंडार, उत्पादभंडार के स्वामी — मात्र कामुकता के कारण, कामुकता के स्त्रोत एवं परिणामस्वरूप, जिसकी वजह केवल कामुकता ही है कि **जानबुझकर झूठ** बोलते हैं। तब मुझे विचार आया: ‘बहुत फैसलें कर लिया मैं! चलो, कोई अन्य भला मानुष न्याय के लिए जाना जाएँ!’”

“ऐसा ही होता है, महाराज! ऐसा ही होता है! महासंपन्न क्षत्रिय, महासंपन्न ब्राह्मण, महासंपन्न वैश्य गृहस्थ... कामुकता के कारण **जानबुझकर झूठ** बोलते हैं। जो उन्हें भविष्य में दीर्घकालीन अहित एवं दुःख की ओर ले जाएगा।”

ऐसा भगवान ने कहा। ऐसा कहकर सुगत ने, शास्ता ने आगे कहा:

“लालची कामसुख में मगन हो, कामुकता में बेहोश हो।
आगे बढ़े, न बोध हो, जैसे जाल में बढ़ती मछली हो।
फ़ल पक जाए जब पाप का, पश्चात बहुत ही कड़वा हो।”

«संयुत्तनिकाय ३:७ : अड्डकरणसुत्त»

**“एकधम्मं अतीतस्स, मुसावादिस्स जन्तुनो।**
**वितिण्णपरलोकस्स, नत्थि पापं अकारियं।।”**
एक धर्म में अतिक्रमण — झूठ बोले व्यक्ति जो।
लांघ चिंता परलोक की, कोई पाप नहीं जो करे न वो।

«इतिवुत्तक २५ : मुसावादसुत्त»

“**पाँच तरह से बर्बादी** होती है —

- सगेसंबन्धी की बर्बादी।
- संपत्ति की बर्बादी।
- रोग से बर्बादी
- शील बर्बादी
- दृष्टि बर्बादी।

इनमें से सगेसंबन्धी, संपत्ति एवं रोग से बर्बादी के कारण सत्व मरणोपरांत यातनालोक नर्क में **नहीं** उपजते हैं। किंतु शील एवं दृष्टि की बर्बादी के कारण सत्व यातनालोक नर्क में उपजते हैं।

**पाँच तरह से संपन्नता** होती हैं।

- सगेसंबन्धी से संपन्न
- संपत्ति संपन्न
- आरोग्य संपन्न
- शील संपन्न
- दृष्टि संपन्न।

इनमें से सगेसंबन्धी, संपत्ति एवं आरोग्य संपन्नता के कारण सत्व मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में **नहीं** उपजते हैं। किंतु शील एवं दृष्टि संपन्नता के कारण सत्व सद्गति होकर स्वर्ग में उपजते हैं।”

«अंगुत्तरनिकाय ५:१३० : ब्यसनसुत्त»

“शीलवान, शीलसम्पन्न होने के **पाँच ईनाम** हैं —

- ऐसा होता है कि कोई शीलवान, शीलसम्पन्न व्यक्ति अपने कार्य में अप्रमत्त [लापरवाह न] होने के कारण बड़ी मात्रा में धनसंपत्ति एकत्र करता है…
- उसकी सुयश कीर्ति फैलती है…
- वह क्षत्रियसभा, ब्राह्मणसभा, वैश्यसभा या श्रमणसभा में जाते हुए शर्मिंदा नहीं, बल्कि आत्मविश्वास के साथ जाता है।
- उसकी मृत्यु उन्माद-रहित होती है।
- वह मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजता है।”

«दीघनिकाय १६ : महापरिनिब्बाणसुत्त»

“तीन तरह से सुखकामना करने वाले धैर्यवान को अपने शील की रक्षा करनी चाहिए। कौन से तीन?

- ‘मुझे प्रशंसा मिले!’ [सोचते हुए]…
- ‘मुझे भोगसंपदा मिले!’ [सोचते हुए]…
- ‘मुझे मरणोपरांत स्वर्ग मिले!’ [सोचते हुए] धैर्यवान को अपने शील की रक्षा करनी चाहिए।

शीलरक्षा करें मेधावी, तीन सुख की कामना में
— प्रशंसा, लाभ संपत्ति, पश्चात खुशियां स्वर्ग में।
भले पाप न स्वयं करे, किंतु पापी के साथ जो,
उस पर भी पापशंका हो, हो जाती है बदनामी।
जैसा मित्र आप बनाते, साथ जिसका करते हो,
वैसे आप बनते जाए, संगत आप की जैसी हो।

जैसा साथ रहे सहवासी, छूनेवाला छूता जो,
जैसे तीर हो विषबुझा, बनाए विषैला तरकश वो।
धैर्यवान विष से भय खाएँ, न मित्र बनाए पापी को।
कुशघास में जो पुरुष, लपेट दे सड़ी मछली को,
बदबू फैलाती है कुश, वैसे साथ ले जो मूर्ख को।
किंतु पत्ती में पुरुष, लपेट दे चंदनचूर्ण जो,
सुगन्ध फैलाती है पत्ती, वैसे साथ ले जो ज्ञानी को।
जान लें इसलिए जैसा, लपेटने का नतीजा हो,
असन्त के न साथ रहें, सन्त का साथ ज्ञानी करे।
असन्त ले जाता नर्क, सद्गति में सन्त साथ रहे।"

«इतिवुत्तक ७६ : सुखपत्थनासुत्त»

• कोई **आत्महित** में कैसे चलता है, किंतु परहित में नहीं?

ऐसा होता है कि कोई स्वयं जीवहत्या से विरत रहता है, किंतु अन्य को जीवहत्या से विरत रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। वह स्वयं चोरी से विरत रहता है, किंतु अन्य को चोरी से विरत रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। वह स्वयं व्यभिचार से विरत रहता है, किंतु अन्य को व्यभिचार से विरत रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। वह स्वयं झूठ बोलने से विरत रहता है, किंतु अन्य को झूठ बोलने से विरत रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। वह स्वयं शराब मद्य आदि मदहोश करने वाले नशेपते से विरत रहता है, किंतु अन्य को शराब मद्य आदि मदहोश करने वाले नशेपते से विरत रहने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। इस तरह कोई आत्महित में चलता है, किंतु परहित में नहीं।

• और कोई आत्महित में नहीं, बल्कि **परहित** में कैसे चलता है?

ऐसा होता है कि कोई स्वयं जीवहत्या से विरत नहीं रहता, किंतु अन्य को जीवहत्या से विरत रहने के लिए प्रोत्साहित करता है। वह स्वयं चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलने... नशेपते से विरत नहीं रहता, किंतु अन्य को चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलने... नशेपते से विरत रहने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस तरह कोई आत्महित में नहीं, किंतु परहित में चलता है।

• और कोई न आत्महित में, न ही परहित में कैसे चलता है?

ऐसा होता है कि कोई न स्वयं जीवहत्या... चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलने... नशेपते से विरत रहता है, न ही अन्य को जीवहत्या... चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलने... नशेपते से विरत रहने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस तरह कोई न आत्महित में चलता है, न ही परहित में।

• और कोई आत्महित में, और साथ ही, परहित में कैसे चलता है?

ऐसा होता है कि कोई स्वयं जीवहत्या... चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलने... नशेपते से विरत रहता है, और अन्य को भी जीवहत्या... चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलने... नशेपते से विरत रहने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस तरह कोई आत्महित में, और साथ ही, परहित में भी चलता है।”

«अंगुत्तरनिकाय ४:९९ : सिक्खापदसुत्त»

## ~ मिथ्याधारणाओं का खंडन ~

“मुखिया! कोई ऐसे श्रमण ब्राह्मण हैं, जिनकी धारणा होती हैं, दृष्टि होती हैं कि ‘जो जीवहत्या करते हैं... चोरी करते हैं... व्यभिचार करते हैं... झूठ बोलते हैं — सभी इसी जीवन में दुःख एवं पीड़ा का अनुभव करते हैं।’

किंतु ऐसा भी होता है कि कोई पुरूष देखा जाता है — माला अलंकार पहने, सुस्नान कर श्रृंगार किए, केशदाढ़ी काट, स्त्रीकामसुख का लुत्फ़ उठाते, जैसे राजा हो। उसे देखकर लोग पुछते हैं, “ओ जनाब! इस पुरुष ने ऐसा क्या कर दिया, जो माला अलंकार पहने... लुत्फ़ उठा रहा है, जैसे राजा हो?” तब जवाब मिलता है, “ओ जनाब! इस पुरुष ने राजशत्रु पर हमला कर उसकी जान ले ली... या राजशत्रु पर हमला कर ख़ज़ाना लूट लाया... या राजशत्रु की पत्नियों को मोह लिया... या अपने मिथ्यावचन से राजा को हंसाया — तब राजा ने प्रसन्न होकर उसे ईनाम दिया है। इसलिए माला अलंकार पहने... लुत्फ़ उठा रहा है, जैसे राजा हो।”

और ऐसा भी होता है कि कोई पुरुष देखा जाता है — हाथ पीछे कड़ी रस्सी से बांधे हुए, सिर मुंडवाकर नगाड़े की तेज आवाज़ पर गली-गली, चौराहे-चौराहे प्रयाण करवाते हुए दक्षिणद्वार से निकालकर, उसका सिर कलम कर दिया जाता है। उसे देखकर लोग पुछते हैं, “ओ जनाब! इस पुरुष ने ऐसा क्या कर दिया, जो हाथ पीछे

कड़ी रस्सी से बांधे... उसका सिर कलम कर दिया?" तब जवाब मिलता है, "ओ जनाब! इस राजशत्रू पुरुष ने किसी स्त्री या पुरुष की जान ले ली... या गांव या जंगल से चुराकर चोरी को अंजाम दिया... या अच्छे कुलपरिवार की बहु-बेटियों को मोह लिया... या झूठ बोलकर किसी कुलपति या कुलपुत्र का अनर्थ कर दिया। इसलिए शासक ने उसे धरकर ऐसा दण्ड थोप दिया है।" तो मुखिया, तुम्हें क्या लगता है? क्या तुमने ऐसी घटनाएँ देखी है अथवा सुनी है?"

"मैने ऐसा देखा है, भन्ते! ऐसा सुना भी है। और ऐसा आगे भी सुनने मिलेगा।"

"तब, मुखिया! जो ऐसे श्रमण ब्राह्मण हैं, जिनकी धारणा होती है, दृष्टि होती हैं कि 'जो जीवहत्या... चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलते हैं — सभी इसी जीवन में दुःख एवं पीड़ा का अनुभव करते हैं।' — वे सत्य कहते हैं अथवा असत्य?"

"असत्य, भन्ते![28]"

«संयुत्तनिकाय ४२:१३ : पाटलियसुत्त»

**मुखिया असिबन्धकपुत्र**, निगण्ठ [जैन] शिष्य भगवान के पास गया, और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। भगवान ने कहा:

"मुखिया! निगण्ठ नाटपुत्र [महावीर जैन] अपने शिष्यों को कैसे धर्म सिखाते है?"

"भन्ते! निगण्ठ नाटपुत्र अपने शिष्यों को ऐसे धर्म सिखाते है: 'जो भी जीवहत्या... चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलते हैं — सभी यातनालोक जाते हैं, नर्क जाते हैं। जो जैसे बार-बार करे, वैसी ही नियति [तक़दीर] होती है।' निगण्ठ नाटपुत्र अपने शिष्यों को ऐसे धर्म सिखाते है।"

"'जो जैसे बार-बार करे, वैसे ही नियति होती है' — यदि यह सत्य है तो निगण्ठ नाटपुत्र के शब्दोनुसार कोई भी यातनालोक न जाएँ, नर्क न जाएँ। तुम्हें क्या लगता है, मुखिया? कोई जीवहत्या करता हो, उसका दिन-रात समय व्यतीत करना देखे तो क्या करने में अधिक समय बीतता होगा — जीवहत्या करने में अथवा न करने में?"

---

[28] अर्थात्, ऐसा संभव है पापी अपने भौतिक जीवन में सुखी रहे, तथा उसे सत्ताधारी पुरस्कृत करे। उसके पाप का घड़ा इसी जीवन में फूटेगा, यह आवश्यक नहीं है। किंतु यह निश्चित है कि आगे चलकर भविष्य में जब भी फूटेगा — शोक, पछतावा, विलाप, दुःख, पीड़ा एवं निराशा ही फलश्रुत होगी। उसी तरह ऐसा भी संभव है कि पुण्यशाली भौतिक जीवन में दुःखी रहे। किंतु यह निश्चित है कि आगे चलकर उसके पुण्य का घड़ा जब भी फूटेगा — सुख, खुशी, शान्ति, राहत एवं संतुष्टि ही फलश्रुत होगी। इसलिए भगवान चेताते हैं कि भले ही सत्ताधारी पापी को पुरस्कृत करे, किंतु पश्चात उसे पापसुख की बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है।

“जीवहत्या करने में कम समय बीतता होगा, भन्ते! जीवहत्या न करने में निश्चित ही अधिक समय बीतता होगा।”

“तब ‘जो जैसे बार-बार करे, वैसे ही नियति होती है’ — यदि सत्य है तो निगण्ठ नाटपुत्र के शब्दोनुसार कोई भी यातनालोक न जाएँ, नर्क न जाएँ। तुम्हें क्या लगता है, मुखिया? कोई चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलता हो, उसका दिन-रात समय व्यतीत करना देखे तो क्या करने में अधिक समय बीतता होगा — चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलने में अथवा न बोलने में?”

“चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलने में कम समय बीतता होगा, भन्ते! न बोलने में निश्चित ही अधिक समय बीतता होगा।”

“तब ‘जो जैसे बार-बार करे, वैसे ही नियति होती है’ — यदि सत्य है तो निगण्ठ नाटपुत्र के शब्दोनुसार कोई भी यातनालोक न जाएँ, नर्क न जाएँ।

ऐसा होता है मुखिया कि किसी गुरु की ऐसी धारणा एवं दृष्टि होती है — ‘जो भी जीवहत्या... चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलते हैं — सभी यातनालोक जाते हैं, नर्क जाते हैं।’ तब जो शिष्य उस गुरु पर आस्था रखता हो, उसे लगता है — ‘हमारे गुरु कहते हैं कि जो भी जीवहत्या... चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलते हैं — सभी यातनालोक जाते हैं, नर्क जाते हैं।’ मैंने भी जीवहत्या की है... चोरी की है... व्यभिचार किया है... झूठ बोला है। तब मैं भी यातनालोक के लिए नियत हूँ, नर्क के लिए नियत हूँ।’ वह इस दृष्टि को पकड़ लेता है। यदि वह उस धारणा को न त्यागे, उस चित्तावस्था को न त्यागे, उस दृष्टि का परित्याग न करे तो जैसे कोई जबरन खींच ले जाता है, वैसे ही उसे नर्क में ले जाकर रख दिया जाएगा।

ऐसा होता है, मुखिया! इस लोक में तथागत अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध उत्पन्न होते हैं। वे जीवहत्या की... चोरी की... व्यभिचार की... झूठ बोलने की अनेक तरह से निंदा करते हैं, आलोचना करते हैं, [कहते हुए] ‘जीवहत्या से... चोरी से... व्यभिचार से... झूठ बोलने से **विरत रहें!**’ तब जो शिष्य तथागत पर आस्था रखता हो, उसे लगता है — ‘हमारे शास्ता जीवहत्या की... चोरी की... व्यभिचार की... झूठ बोलने की अनेक तरह से निंदा करते हैं, आलोचना करते हैं, [कहते हुए] ‘जीवहत्या से... चोरी से... व्यभिचार से... झूठ बोलने से विरत रहें!’ मैंने भी छोटी-बड़ी मात्रा में जीवहत्या की है... चोरी की है... व्यभिचार किया है... झूठ बोला है। वह सही नहीं था, अच्छा नहीं था! किंतु यदि मैं उस

कारणवश ग्लानि [पश्चाताप] से भर जाऊँ, तब भी मेरा पापकृत्य मिटेगा नहीं' — वह ऐसा चिंतन कर उसी समय उसी जगह जीवहत्या... चोरी... व्यभिचार... झूठ बोलना **त्याग** देता है, तथा भविष्य में **संयम** बरतता है। इस तरह पापकृत्य का परित्याग होता है, पापकृत्य लांघा जाता है।[29]"

«संयुत्तनिकाय ४२:८ : सङ्खधमसुत्त»

**मुखिया असिबन्धकपुत्र** भगवान के पास गया और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। उसने बैठते हुए कहा:

"भन्ते, पश्चिमवर्ती इलाके में ब्राह्मण रहते हैं — कमंडलधारी, शैवालमाला पहने, जलशुद्धि एवं अग्निपूजा करने वाले। वे मृत व्यक्ति को उठाकर, निर्देश देकर स्वर्ग तक भेज देते हैं। तब 'भगवान अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध' तो निश्चित ऐसी व्यवस्था कर सकते होंगे कि 'संपूर्ण दुनिया' मरणोपरांत स्वर्ग में उत्पन्न हो?"

"अच्छा, मुखिया! मैं तुम्हें प्रतिप्रश्न करता हूँ। जैसे उचित लगे, उत्तर दो। ऐसा कोई हो जो जीवहत्या, चोरी एवं व्यभिचार करें; झूठ, फूट डालनेवाली, कटु एवं निरर्थक बातें करें; लालची, दुर्भावनापूर्ण हो एवं मिथ्यादृष्टि धारण करें [=दस अकुशल]। तब लोगों की बड़ी भीड़ इकठ्ठा होकर उसकी परिक्रमा करें, हाथ जोड़कर प्रार्थना-प्रशंसा करते हुए — "यह मरणोपरांत स्वर्ग में उपजे!" तो तुम्हें क्या लगता है? क्या वह पापी इस तरह भीड़ द्वारा हाथ जोड़कर प्रार्थना-प्रशंसा करने पर स्वर्ग उपजेगा?"

"नहीं, भन्ते!"

"कल्पना करो कि कोई पुरुष एक बड़ी चट्टान को गहरे तालाब में डाल दे। तब लोगों की बड़ी भीड़ इकठ्ठा होकर उसकी परिक्रमा करें, हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए — "हे चट्टान, उठो! हे चट्टान, तरंगते हुए ऊपर आओ! हे चट्टान, तैरते हुए किनारे

---

[29] आम जीवन में छोटे-बड़े पाप सभी से होते हैं। किंतु मूर्ख उसे पाप नहीं समझते हैं (=मिथ्यादृष्टि) और न बुराई ही त्यागते हैं (=नर्क)। जबकि बुद्धिमान उसमे पाप देखते हैं (=सम्यकदृष्टि) और बुराई त्याग देते हैं (=नर्क से छूटे!)। और जो पाप को पाप जानकर भी संयम ना बरते, वह सम्यकदृष्टिवान होकर भी नर्क से छूटा नहीं होता। उसे चाहिए कि वह भगवान द्वारा पुत्र राहुल को (द्वितीय अध्याय में) बताया तरीका अपनाएँ। अर्थात्, गलती पता चलने पर उसे किसी विश्वसनीय समझदार के आगे खोल देना, और त्यागने का संकल्प लेना। जो शर्मिंदगी के मारे न खोल पाए, जान लें कि वे दरअसल अपनी छवि की रक्षा नहीं कर रहे हैं, बल्कि भीतर पाप की, नर्क के टिकट की रक्षा कर रहे हैं। इसलिए जोख़िम न उठाएँ। हिम्मत जुटाएँ और खोल दें।

लगो!” तो तुम्हें क्या लगता है? क्या वह चट्टान भीड़ द्वारा प्रार्थना-प्रशंसा करने पर उठेगी, तरंगते हुए ऊपर आएगी और तैरते हुए किनारे लगेगी?”

“नहीं, भन्ते!”

“उसी तरह मुखिया! जो जीवहत्या आदि [दस अकुशल] करें, तब भले ही भीड़ इकठ्ठा होकर.. प्रार्थना-प्रशंसा परिक्रमा करें.. तब भी वह पापी यातनालोक नर्क में ही उपजेगा!

किंतु ऐसा कोई हो जो जीवहत्या, चोरी एवं व्यभिचार से **विरत** रहे; झूठ, फूट डालनेवाली, कटु एवं निरर्थक बातों से विरत रहे; न लालची, न दुर्भावनापूर्ण, बल्कि सम्यकदृष्टि धारण करें [=दस कुशल]। तब लोगों की बड़ी भीड़ इकठ्ठा होकर उसकी परिक्रमा करें, श्राप देते धिक्कारते हुए — “यह नर्क जाए!” तो तुम्हें क्या लगता है? क्या वह पुण्यशाली, भीड़ द्वारा श्राप देकर धिक्कारने पर नर्क जाएगा?”

“नहीं, भन्ते!”

“कल्पना करो कि कोई पुरुष घी-कुंभ या तेल-कुंभ को गहरे तालाब में डाल दे, जो भीतर जाकर टूट जाए। कुंभ के ठीकरें नीचे जाए, जबकि घी या तेल ऊपर उठे। तब लोगों की बड़ी भीड़ इकठ्ठा होकर उसकी परिक्रमा करें, श्राप देते धिक्कारते हुए — “हे घी तेल, डुब जाओ! हे घी तेल, नीचे चले जाओ! हे घी तेल, भीतर तल पर लगो!” तो तुम्हें क्या लगता है? क्या वह घी या तेल भीड़ द्वारा श्राप देकर धिक्कारने पर गहरे तालाब में डूब जाएगा, नीचे चले जाएगा, भीतर तल पर लगेगा?”

“नहीं, भन्ते!”

“उसी तरह मुखिया! जो जीवहत्या से विरत आदि [दस कुशल] करें, तब भले ही भीड़ इकठ्ठा होकर… श्राप देते धिक्कारने लगे… तब भी वह पुण्यशाली स्वर्ग ही उपजेगा!”

«संयुत्तनिकाय ४२:६ : असिबन्धकपुत्तसुत्त»

★ ★ ★

अध्याय छह

# व्रत

---

**भगवान** ने कहा:

“ब्राह्मण! बहुत समय पूर्व, राजा कौरव्य के राज्य में ‘सुप्रतिष्ठित’ नामक एक राजसी वटवृक्ष था। उसकी पाँच शाखाएँ शीतल छाया देती, हर्षित करती थी। उस सुप्रतिष्ठित की छत्रछाया बारह योजन, तथा जड़ें पाँच योजन तक फैली थी। उस सुप्रतिष्ठित के फ़ल चावल पकाने के बड़े बर्तन के आकार के, तथा शुद्ध शहद जैसे मीठे थे। उस सुप्रतिष्ठित का एक हिस्सा राजा एवं अंतःपुर उपयोग करते, तो दूसरा राजसेना। तीसरा हिस्सा गांव नगर की प्रजा करती, तो चौथा श्रमण एवं ब्राह्मण। तथा पाँचवा हिस्सा पशुपक्षी उपयोग करते थे। कोई उस सुप्रतिष्ठित के फ़लों की रक्षा न करता, किंतु कोई दूसरे का हिस्सा भी न लेता था।

तब किसी दिन एक पुरुष ने आकर सुप्रतिष्ठित के खूब सारे फ़ल तोड़कर जी भर के खाए, और एक शाखा तोड़कर ले गया। तब उस सुप्रतिष्ठित में निवास करते देवता को लगा, “कमाल है श्रीमान! अद्भुत है! कितना पापी मनुष्य था! आकर सुप्रतिष्ठित के खूब सारे फ़ल तोड़कर जी भर के खा लिए, और एक शाखा तोड़कर ले गया! ठीक है! अब मैं देखता हूँ कि राजसी वटवृक्ष को भविष्य में कैसे फ़ल आते हैं!”

और तब भविष्य में उस राजसी वटवृक्ष ने फ़ल देना बन्द कर दिया।

तब राजा कौरव्य ने देवराज इंद्र के पास जाकर कहा, “सुनिएँ, मान्यवर! जान लीजिए कि राजसी वटवृक्ष सुप्रतिष्ठित अब फ़ल नहीं दे रहा है।”

तब देवराज इंद्र ने अपने ऋद्धिबल की रचना से एक प्रचण्ड आंधी लायी, और राजसी वटवृक्ष सुप्रतिष्ठित को तोड़मरोड़ कर उखाड़ फेंका। तब उस सुप्रतिष्ठित में निवास करता देवता उदास एवं दुःखी हो, आंसू भरे चेहरे से रोते हुए एक-ओर खड़ा हुआ। तब देवराज इंद्र ने उसके पास जाकर कहा, “क्यों देवता, उदास एवं दुःखी हो, आंसू भरे चेहरे से रोते हुए एक-ओर खड़े हो?”

“क्योंकि मान्यवर, एक प्रचण्ड आंधी आयी और मेरे निवास को तोड़मरोड़ कर उखाड़ फेंकी।”

“किंतु देवता, क्या तुम तब वृक्षधर्म [वृक्ष के व्रतकर्तव्य] निभा रहे थे?”

“कैसे मान्यवर, कोई वृक्ष वृक्षधर्म निभाता है?”

“जब जिसे जड़ चाहिए, जड़ ले जाएँ। जब जिसे छाल चाहिए, छाल ले जाएँ। जब जिसे पत्तियां चाहिए, पत्तियां ले जाएँ। जब जिसे पुष्प चाहिए, पुष्प ले जाएँ। और जब जिसे फ़ल चाहिए, फ़ल ले जाएँ। किंतु उस कारण देवता न नाराज़ हो, न असंतुष्ट। इस तरह कोई वृक्ष वृक्षधर्म निभाता है।”

“तब मान्यवर, मैं वृक्षधर्म नहीं निभा रहा था।”

“यदि देवता, तुम वृक्षधर्म निभाओ तो तुम्हारा निवास पूर्ववत हो सकता है।”

“ज़रूर, मान्यवर! मैं वृक्षधर्म निभाऊँगा। मेरा निवास पूर्ववत हो जाएँ।”

तब देवराज इंद्र ने अपने ऋद्धिबल की रचना से एक और प्रचण्ड आंधी लायी, और राजसी वटवृक्ष सुप्रतिष्ठित को उठाकर खड़ा किया; जड़ें छाल से ढक गई।

उसी तरह, ब्राह्मण, अब मैं तुमसे पूछता हूँ — क्या तुम अपना व्रत निभा रहे थे?”

«अंगुत्तरनिकाय ६:५४ : धम्मिकसुत्त»

**वत्तं अपरिपूरेन्तो, न सीलं परिपूरति।**
**यं वत्तं परिपूरेन्तो, सीलम्पि परिपूरति।**
“व्रत जो अधूरा रखें, न शील उसके पूर्ण हो।
व्रत जो परिपूर्ण करें, शील भी उसके पूर्ण हो।”

«विनयपिटक चूळवग्ग ८: वत्तक्खन्धकं»

**गृहस्थपुत्र श्रृंगालक** प्रातः उठ, राजगृह से निकल कर भीगे वस्त्र, भीगे केश, दिशाओं को हाथ जोड़कर नमन कर रहा था। तब सुबह भगवान भिक्षाटन के लिए चीवर ओढ़े, पात्र धरे, राजगृह में प्रवेश कर रहे थे। उन्होंने गृहस्थपुत्र श्रृंगालक को भीगे वस्त्र, भीगे केश, दिशाओं को हाथ जोड़कर नमन करते देखा। भगवान ने कहा:

“गृहस्थपुत्र, दिशाओं को इस तरह नमन क्यों कर रहे हो?”

"भन्ते! मेरे पिता ने मुझसे मरते हुए कहा था, 'प्रिय! दिशाओं को नमन करना!' इसलिए पिता के शब्दों का आदर रखते हुए, सत्कार करते हुए, मानते हुए, पूजते हुए — मैं प्रातः उठ राजगृह से निकल कर भीगे वस्त्र, भीगे केश, हाथ जोड़कर पूर्व-दिशा, दक्षिण-दिशा, पश्चिम-दिशा, उत्तर-दिशा, निचली-दिशा एवं ऊपरी-दिशाओं को नमन कर रहा हूँ।"

"किंतु गृहस्थपुत्र, आर्यविनय में छह दिशाओं को इस तरह नमन नहीं करते है।"

"तब भन्ते, आर्यविनय में छह दिशाओं को कैसे नमन करते है? अच्छा होगा भन्ते, जो भगवान मुझे धर्मदेशना दें! मुझे कृपा कर बताएँ।"

"तब, गृहस्थपुत्र! ध्यान देकर गौर से सुनो। मैं बताता हूँ।"

"हाँ, भन्ते!"

"गृहस्थपुत्र, आर्यश्रावक चार 'दूषित कर्म' त्यागते हैं, चार 'आधार पर पापकर्म' नहीं करते हैं, तथा छह तरह से 'भोगसंपत्ति बर्बादी में शामिल' नहीं होते हैं। जब वे इस तरह कुल चौदह पापकृत्यों को पीछे छोड़ दें — तब छह दिशाएँ सुआच्छादित होती हैं, लोक-परलोक दोनों के विजयपथ पर चला जाता है, तथा वे लोक-परलोक में यशस्वी होते हैं। और वे मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में भी उपजते हैं।

वे कौन से **चार दूषित कर्म** त्यागते हैं?

जीवहत्या, चोरी, व्यभिचार एवं झूठ बोलना — ये चार दूषित कर्म त्यागते हैं।

वे कौन से **चार आधार पर पापकर्म** नहीं करते हैं?

**चाहत** «छन्द» के मारे पाप करना, **द्वेष** के मारे पाप करना, **भ्रम** के मारे पाप करना, **भय** के मारे पाप करना — ये चार आधार पर पापकर्म नहीं करते हैं।

धर्मस्वभाव जो लांघे — चाहत, द्वेष, भय एवं भ्रम
बर्बाद होती यशकीर्ति, जैसे कृष्णपक्ष में घटता चंद्रम।
धर्मस्वभाव न जो लांघे — चाहत, द्वेष, भय एवं भ्रम
बढ़ती जाती यशकीर्ति, जैसे शुक्लपक्ष में बढ़ता चंद्रम।

वे कौन से **छह तरह से भोगसंपत्ति बर्बादी** में शामिल नहीं होते हैं?

- शराब मद्य आदि मदहोश करने वाले नशेपते का लुत्फ़ उठाना,

- बेसमय [रात-बेरात] रास्ते-गलियारें घूमने का लुत्फ़ उठाना,
- मेला-समारोह घूमने [या पार्टी] का लुत्फ़ उठाना,
- जुआ आदि मदहोश करने वाले खेलों का लुत्फ़ उठाना,
- पापमित्रों का लुत्फ़ उठाना,
- आलस्य का लुत्फ़ उठाना।

• शराब मद्य आदि मदहोश करने वाले नशेपते का लुत्फ़ उठाने के छह नुक़सान होते हैं — अभी धनसंपत्ति की बर्बादी। कलह [झगड़ा फसाद] में बढ़ोतरी। रोग संभावना में बढ़ोतरी। बदनामी। अशोभनीय [अभद्र अश्लील] प्रकट होना। अंतर्ज्ञान दुर्बल होना।

• बेसमय रास्ते-गलियारें घूमने का लुत्फ़ उठाने के छह नुक़सान होते हैं — न स्वयं सुरक्षित न संरक्षित होता है। न संतान, न पत्नी सुरक्षित न संरक्षित होते हैं। न संपत्ति सुरक्षित न संरक्षित होती है। उस पर पाप शंका होती है। झूठी ख़बर [अफ़वाह] जुड़ जाती है। अनेक कष्टों से सामना होता है।

• मेला-समारोह घूमने का लुत्फ़ उठाने के छह नुक़सान होते हैं — [सदैव ढूंढते रहता है] "नृत्य कहाँ हो रहा है? गीत कहाँ हो रहा है? वाद्यसंगीत कहाँ बज रहा है? भाषण कहाँ हो रहा है? तालियां कहाँ बज रही हैं? ढ़ोल कहाँ बज रहा है?"

• जुआ आदि मदहोश करने वाले खेलों का लुत्फ़ उठाने के छह नुक़सान होते हैं — विजेता होकर [किसी को] शत्रु बनाता है। पराजित होकर वित्तहानि के मारे विलाप करता है। अभी संपत्ति बर्बाद करता है। सभाओं में उसकी बातों पर भरोसा नहीं किया जाता हैं। मित्र-सहजन घृणा करने लगते हैं। विवाह के लिए माँग नहीं होती है, [कहते हैं] "जुआरी पुरुष, पत्नी पालने में असमर्थ होता है!"

• पापमित्रों का लुत्फ़ उठाने के छह नुक़सान होते हैं — उसके मित्र-सहकर्मी कोई जुआरी होता है। कोई भुक्कड़ होता है। कोई पियक्कड़ होता है। कोई धोखेबाज होता है। कोई ठग होता है। कोई गुंडा होता है।

• आलस्य का लुत्फ़ उठाने के छह नुक़सान होते हैं — "बड़ी ठंडी है!" [सोचते हुए] कार्य नहीं करता है। "बड़ी गर्मी है!" कार्य नहीं करता है। "अभी देर है!" कार्य नहीं करता है। "देर हो गई!" कार्य नहीं करता है। "अभी भूखा हूँ!" कार्य नहीं करता है। "बहुत खा लिया!" कार्य नहीं करता है।

कुछ होते हैं मद्यमित्र, कुछ आगे मित्रता जतलातें।
ज़रूरत में किंतु साथ जो, माने सच्चा मित्र वो।
'देर से सोना, व्यभिचार, करना झगड़े और अनर्थ,
पापी मित्र और कंजूसी' — छह नाश करते पुरुष को।
पापमित्र संग पापसखा, पाप में समय बिताए,
इस लोक एवं परलोक में, वो पुरुष धंसते जाए।
'जुआ वेश्या नृत्यगीत, दिन सोता, रात भटकता जो,
पापी मित्र और कंजूसी' — छह नाश करते पुरुष को।
मद्य पीता, पासे खेलता, परस्त्री गमन भी करता,
हीन नीच सेवन करता, कृष्णपक्ष चंद्र जैसे मिटता।
शराबी दिवालिया निर्धन, पीकर प्यासा ही रहता
ऋण में डूबे जैसे पत्थर, शीघ्र ही कुलहीन होता।
सोकर दिन बिताता हो, रात में उठा रहता,
नित्य नशा, कामासक्त, न घर संभाल सकता।
"बड़ी ठंडी! बड़ी गर्मी! देर हो गई!" तरुण कहता,
यूँ सभी कार्य टालता, लाभ दूर खिसक जाता।
किंतु ठंडी, गर्मी को, घासफूस न समझता जो,
कार्य करता वह पुरुष, सुख न कम उसका हो।

गृहस्थपुत्र, चार [व्यक्तियों] को **मित्रवेष में अमित्र** [मित्र नहीं] जानना चाहिए — बटोरू, बातूनी, चाटुकार एवं उड़ाऊ को मित्रवेष में मित्र नहीं जानना चाहिए।

- **बटोरु** को चार तरह से मित्रवेष में अमित्र जानना चाहिए —

सभी वस्तुएँ ले जाता,
अल्प देकर अधिक चाहता,
भय के मारे कार्य करता,
स्वार्थ से संगत करता।

• **बातूनी** को चार तरह से मित्रवेष में अमित्र जानना चाहिए — अतीत में [किया] उपकार बताता है। भविष्य में [करेगा] उपकार बताता है। निरर्थक उपकार करता है। अभी ज़रूरत में दुर्भाग्य [असमर्थता] बताता है।

• **चाटुकार** को चार तरह से मित्रवेष में अमित्र जानना चाहिए — पापकृत्य में सहमत हो। कल्याण-कृत्य में भी सहमत हो। सम्मुख प्रशंसा करता हो। पीछे निंदा करता हो।

• **उड़ाऊ** को चार तरह से मित्रवेष में अमित्र जानना चाहिए — शराब मद्य आदि मदहोश करनेवाला नशापता करने में सहायक हो। बेसमय रास्ते-गलियारें घूमने में सहायक हो। मेला-समारोह घूमने में सहायक हो। जुआ आदि मदहोश करने वाले खेलों में सहायक हो।

जो मिले, बटोर लेता, बात निरर्थक करता,
प्रशंसा नकली करता, उड़ाने में मित्र होता।
दरअसल चारों न मित्र वे, विद्वान जानें उन्हें,
स्वयं उनसे दूर रहें, पथ भयानक मानें उन्हें।

गृहस्थपुत्र! चार को **सच्चे हृदय का मित्र** जानना चाहिए।

— उपकारी मित्र, सुख-दुःख में समान रहने वाला मित्र, हितकारी मित्र, एवं दयालु मित्र को सच्चे हृदय का जानना चाहिए।

• **उपकारी** को चार तरह से सच्चे हृदय का मित्र जानना चाहिए — आप बेपरवाह [या मदहोश] हो तो आपकी देखभाल करे। आपकी संपत्ति की देखभाल करे। आप भयभीत हो तो आपकी शरण [रक्षक] बने। आपको ज़रूरत हो तो दुगनी मदद करे।

• **सुख-दुःख में समान रहने वाले** को चार तरह से सच्चे हृदय का मित्र जानना चाहिए — अपनी गोपनीय बातें बताए। आपकी गोपनीय बातें गुप्त रखे। आपदा में साथ न छोड़े। आपको बचाने के लिए स्वयं को लुटाए।

• **हितकारी** को चार तरह से सच्चे हृदय का मित्र जानना चाहिए — पाप से रोकता है। कल्याण में समर्थन करता है। अनसुनी बातें बताता है। स्वर्ग का मार्ग दिखाता है।

• **दयालु** को चार तरह से सच्चे हृदय का मित्र जानना चाहिए — आपके दुर्भाग्य में आनंदित नहीं होता है। आपके सौभाग्य में आनंदित होता है। आपके खिलाफ़ बुरा बोलने वाले को रोकता है। आपके प्रति अच्छा बोलने वाले की प्रशंसा करता है।

जो मित्र उपकार करे, जो सुख दुःख में हो सखा,
जो मित्र हितकारी हो, और जो हो दयालु सखा
— सच्चे मित्र यही चारो, विद्वान उन्हें समझे,
उन्हे सँजोकर रखें जैसे, मां छाती-लिपटे संतान को।
विद्वान शीलसंपन्न, जैसे अग्नि जल पर दमकती हो,
संपत्ति जुटाते बढ़ती जाए, जैसे मधु जुटाती मक्खी हो।
यूं संपत्ति इकट्ठा हो, जैसे वर्मिक ऊँचा बढ़ती हो।
ऐसी संपत्ति प्राप्त कर, घर परिवार के हित लगे।
मित्रों से गांठ बांध, चार हिस्से विभाजित करें।
एक हिस्से का भोग करें, दो हिस्से कार्य में लगे,
चौथा हिस्सा बचाएँ राशि, भविष्य आपदा के लिए।

गृहस्थपुत्र, आर्यविनय में **छह दिशाओं को नमन** कैसे करते है?

आर्यविनय में छह दिशाएँ इस तरह जानी जाती हैं — पूर्व-दिशा माता-पिता के लिए जानी जाती है। दक्षिण-दिशा गुरुजनों के लिए जानी जाती है। पश्चिम-दिशा पत्नी एवं संतान के लिए जानी जाती है। उत्तर-दिशा मित्र-सहचारियों के लिए जानी जाती है। निचली-दिशा दास, नौकर एवं श्रमिकों के लिए जानी जाती है। तथा ऊपरी-दिशा श्रमण-ब्राह्मणों के लिए जानी जाती है।

• पुत्र पूर्व-दिशासूचक **माता-पिता की सेवा** पाँच तरह से करता है — [सोचते हुए] “मैं पला, अब उनका भरण-पोषण करूँगा!” “उनके प्रति कर्तव्य पूर्ण करूँगा!” “कुलवंश चलाऊँगा!” “विरासत की देखभाल करूँगा!” “मरणोपरांत प्रेत के नाम दानदक्षिणा करूँगा!”

और माता-पिता संतान पर पाँच तरह से **उपकार** करते हैं — उसे पाप से रोकते हैं। कल्याण में समर्थन करते हैं। [कमाने का] हुनर सिखाते हैं। उपयुक्त पत्नी ढूंढ देते हैं। तथा समय आने पर अपनी विरासत सौंपते हैं। इस तरह पूर्व-दिशा सुआच्छादित होती है, शान्त होकर भयमुक्त होती है।

• शिष्य दक्षिण-दिशासूचक **गुरुजनों की सेवा** पाँच तरह से करता है — [उनके सम्मानार्थ] खड़ा होता है। प्रतीक्षा करता है। ध्यान रखता है। सेवा करता है। हुनर सीखकर पारंगत होता है।

और गुरुजन शिष्य पर पाँच तरह से **उपकार** करते हैं — उसे भलीभांति पढ़ाते हैं। अभ्यास कराते हैं। समझानेवाली शिक्षाओं को समझाते हैं। सभी कलाओं में भलीभांति स्थापित करते हैं। मित्र-सहचारियों को सिफ़ारिश करते हैं। तथा सभी-दिशाओं में सुरक्षा प्रदान करते हैं। इस तरह दक्षिण-दिशा सुआच्छादित होती है, शान्त होकर भयमुक्त होती है।

• पति पश्चिम-दिशासूचक **पत्नी की सेवा** पाँच तरह से करता है — उसे सम्मान देता है। अपमानित नहीं करता है। निष्ठाहीन [बेवफ़ा] नहीं होता। उस पर ऐश्वर्य [प्रभुत्व स्वामित्व] छोड़ता है। गहने-अलंकार प्रदान करता है।

और पश्चिम-दिशासूचक पत्नी पति पर पाँच तरह से **उपकार** करती है — [कर्तव्य] कार्यों को सही अंजाम देती है। परिजनों को साथ लेकर चलती है। निष्ठाहीन नहीं होती। भंडार सामग्री की देखभाल करती है। सभी कार्यों में अनालसी हो [बिना आलस किए] निपुण बनती है। इस तरह पश्चिम-दिशा सुआच्छादित होती है, शान्त होकर भयमुक्त होती है।

• कुलपुत्र उत्तर-दिशासूचक **मित्र-सहचारियों की सेवा** पाँच तरह से करता है — दान उपहार से। प्रिय वचनों से। हितकारक देखभाल करने से। समान बर्ताव से। निष्ठा ईमानदारी [बिना छलकपट] से।

और मित्र-सहचारी कुलपुत्र पर पाँच तरह से **उपकार** करते हैं — बेपरवाह [या मदहोश] हो तो देखभाल करते हैं। बेपरवाह हो तो संपत्ति की देखभाल करते हैं। भयभीत हो तो शरण [रक्षक] बनते हैं। आपदा में छोड़ नहीं देते। संतानों पर कृपादृष्टि रखते हैं। इस तरह उत्तर-दिशा सुआच्छादित होती है, शान्त होकर भयमुक्त होती है।

• स्वामी निचली-दिशासूचक **दास-नौकरों पर उपकार** पाँच तरह से करता है — सामर्थ्य देखकर कार्य देता है। भोजन एवं वेतन देता है। रोग में देखभाल करता है। ख़ास व्यंजन बांटता है। समय पर छुट्टी देता है।

और दास-नौकर स्वामी की पाँच तरह से **सेवा** करते हैं — पहले उठते हैं। पश्चात सोते हैं। चुराते नहीं हैं। भलीभांति कार्य करते हैं। यशकीर्ति फैलाते हैं। इस तरह निचली-दिशा सुआच्छादित होती है, शान्त होकर भयमुक्त होती है।

• कुलपुत्र ऊपरी-दिशासूचक **श्रमण-ब्राह्मणों की सेवा** पाँच तरह से करता है — उनके प्रति सद्भावपूर्ण कायाकर्म करता है। उनके प्रति सद्भावपूर्ण वाणीकर्म करता है। उनके प्रति सद्भावपूर्ण मनोकर्म करता है। उनके लिए घर खुला करता है। उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

और श्रमण-ब्राह्मण कुलपुत्र पर **छह** तरह से **उपकार** करते हैं — उसे पाप से रोकते हैं। कल्याण में समर्थन करते हैं। मन से कल्याणकारी उपकार करते [कृपादृष्टि रखते] हैं। अनसुना [धर्म] सुनाते हैं। सुने [धर्म] को स्पष्ट करते हैं। स्वर्गमार्ग दिखाते हैं। इस तरह ऊपरी-दिशा सुआच्छादित होती है, शान्त होकर भयमुक्त होती है।

माता-पिता पूरब-दिशा, गुरुजन दक्षिण-दिशा,
पुत्र-पत्नी पश्चिम-दिशा, मित्र-सहचारी उत्तर-दिशा,
निचली-दिशा दास-नौकर, श्रमण-ब्राह्मण हो ऊपर,
— यह दिशाएँ नमन करें, सच्चा गृहस्थ कुलपूत्र।
'विद्वान हो शीलसंपन्न, मृदु हो एवं प्रतिभावान।
जो विनम्र, न अकड़ू रहे' — उसे सफ़लता खूब मिले।
'ऊर्जावान, निरालसी, आपदा में अकम्पित रहे,
निष्कपट वृत्ति, मेधावी' — उसे सफ़लता खूब मिले।
'साथ रहें, मित्र बनाएँ, स्वागत करें, न कंजूसी,
नेता अगुआ मार्गदर्शक' — उसे सफ़लता खूब मिले।
उपहार दें, प्रिय बोलें, जीवन में हितकारी रहें,
और जहाँ उपयुक्त हो, समानता का बर्ताव करें।
साथ जोड़े लोगों को, जैसे घूमते रथपहिये की नाभि हो।
जब ऐसा व्रत न पालन हो, तो मां को अपने संतान से,
और पिता को संतान से, न सम्मान न आदरभाव मिले।
किंतु ऐसा व्रत पालन हो, तो विद्वान ख्याल रखें!

इसी से वह महान बने, और प्रशंसा सभी करें।”

ऐसा कहा गया। तब गृहस्थपुत्र श्रृंगालक कह पड़ा, “अतिउत्तम, भन्ते! अतिउत्तम! जैसे कोई पलटे को सीधा करे, छिपे को खोल दे, भटके को मार्ग दिखाए, या अँधेरे में दीप जलाकर दिखाए, ताकि अच्छी आँखोंवाला स्पष्ट देख पाए — उसी तरह भगवान ने धर्म को अनेक तरह से स्पष्ट कर दिया। मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ! धर्म एवं संघ की! भगवान मुझे आज से लेकर प्राण रहने तक शरणागत उपासक धारण करें!”

«दीघनिकाय ३१ : सिङ्गालसुत्त»

“भिक्षुओं, जब **देवराज इंद्र** पूर्वजन्म में मनुष्य था, तब उसने जीवनपर्यन्त सात व्रतों का पालन किया। और सात व्रतों का पालन करने के कारण ही वह तैतीस देवताओं का राजा इंद्र बना। कौन से सात व्रत?

• जब तक जीवित रहूँ, माता-पिता का भरण-पोषण करूँ।

• जब तक जीवित रहूँ, कुल परिवार में ज्येष्ठ लोगों का सम्मान करूँ।

• जब तक जीवित रहूँ, मृदु वाणी बोलूं।

• जब तक जीवित रहूँ, फूट डालने वाले वचन न बोलूं।

• जब तक जीवित रहूँ, कंजूसी के मल से छूटा रहूँ — साफ़ चित्त का, मुक्त त्यागी, खुले हृदय का, उदारता में रत, याचनाओं का पूर्णकर्ता, दान-संविभाग में रत।

• जब तक जीवित रहूँ, केवल सच बोलूं।

• जब तक जीवित रहूँ, क्रोधित न होऊँ। क्रोध जाग जाए तो उसे तुरंत हटाऊँ।

वह मनुष्यावस्था में इन्ही सात व्रतों का पालन करने के कारण तैतीस देवताओं का राजा इंद्र बना।”

«संयुत्तनिकाय ११:१२ : सक्कनामसुत्त»

“भिक्षुओं! मैं कहता हूँ कि **दो लोगों का ऋण** चुकाना सरल नहीं है। कौन से दो? तुम्हारे माता और पिता!

भले ही तुम्हें मां को एक कन्धे पर बिठाकर और पिता को दुसरे कन्धे पर बिठाकर सौ वर्षों तक ढोना पड़े, तथा उनकी हर तरह से सेवा करनी पड़े — जैसे लेप लगाना,

हाथपैर दबाना, मालिश करना, नहलाना इत्यादि। और वे वहीं [तुम्हारे कन्धों पर] मल-मूत्र त्यागें — तब भी तुम उनका ऋण नहीं चुका पाओगे। भले ही तुम अपने माता-पिता को इस महापृथ्वी पर सप्तरत्नों के साथ संपूर्ण प्रभुत्व प्रदान करो[30] — तब भी उनका ऋण नहीं चुका पाओगे। ऐसा क्यों? क्योंकि माता और पिता, संतान की अपार सेवा करते हैं। उनकी देखभाल करते, भरण-पोषण करते, दुनिया का दर्शन कराते हैं।

• किंतु यदि कोई अपने अश्रद्धावान माता-पिता में **श्रद्धा** जगाए, उन्हें श्रद्धासंपदा में स्थिर करे, प्रतिष्ठित करे;

• या अपने दुष्शील माता-पिता में **शील** जगाए, उन्हें शीलसंपदा में स्थिर करे, प्रतिष्ठित करे;

• या अपने कंजूस माता-पिता में **त्याग** [दानशीलता] जगाए, उन्हें त्यागसंपदा में स्थिर करे, प्रतिष्ठित करे;

• या अपने दुष्प्रज्ञ माता-पिता में **अंतर्ज्ञान** जगाए, उन्हें अंतर्ज्ञानसंपदा में स्थिर करे, प्रतिष्ठित करे,

— तब उनका ऋण चुक सकता है।”

«अंगुत्तरनिकाय २:३२ : कतञ्ञूसुत्त»

“**ब्रह्म के साथ संवास** वह कुलपरिवार करता है, जहाँ संतान माता-पिता की पूजा करते हों। **प्रारंभिक देवता** के साथ संवास वह कुलपरिवार करता है, जहाँ संतान माता-पिता की पूजा करते हों। **प्रथम गुरु** के साथ संवास वह कुलपरिवार करता है, जहाँ संतान माता-पिता की पूजा करते हों। **उपहार देने योग्य** के साथ संवास वह कुलपरिवार करता है, जहाँ संतान माता-पिता की पूजा करते हों।

भिक्षुओं! माता-पिता ‘ब्रह्म’ कहलाते हैं, ‘प्रारंभिक देवता’ कहलाते हैं, ‘प्रथम गुरु’ कहलाते हैं, ‘उपहार देने योग्य’ कहलाते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि माता-पिता अपने संतान की अपार सेवा करते हैं। उनकी देखभाल करते, भरण-पोषण करते, दुनिया का दर्शन कराते हैं।

माता और पिता कृपालु, संतान के प्रति बने रहते,
‘ब्रह्म’, ‘प्रथम गुरु’, ‘उपहारयोग्य’ संतान द्वारा कहलाते।

---

[30] अर्थात्, भले ही कोई अपने माता-पिता को उपहार स्वरूप ‘चक्रवर्ती सम्राट’ बना दे।

जो उन्हें नमन करें, जो विद्वान उनका सत्कार करें —
अन्नपान, वस्त्र-शयन से, मालिश-स्नान, पैर धोने से।
माता और पिता की यूं, जो पण्डित सेवा करें,
यहाँ प्रशंसित होता, पश्चात स्वर्ग में आनंदित।"

«इतिवुत्तक १०६ : सब्रह्मकसुत्त»

**गृहस्थ उग्गह** ने तब एक-ओर बैठते हुए भगवान से कहा,

"मान्यवर! मेरी कुमारियाँ [पुत्रीयां] ब्याह कर पतियों के घर-परिवार जाएगी। भगवान कृपा कर उन्हें निर्देश दें, शिक्षित करें, जो उनके दीर्घकालीन हित एवं सुख के लिए हों।"

भगवान ने उन कुमारियों से कहा, "तब, कुमारियों! आपको ऐसा सीखना चाहिए — 'माता-पिता हमारा हित देखते हुए, हम पर अनुकंपा और करुणा करते हुए हमें पति के सुपुर्द कर रहे हैं। तो हम पति के पूर्व उठेंगे, पश्चात सोएँगे, कर्तव्यशील बने रहेंगे, मनोरूप आचरण करेंगे, प्रिय वाणी बोलेंगे।'

फ़िर कुमारियों! आपको ऐसा सीखना चाहिए — 'हमारे पति के आदरपात्र माता-पिता, श्रमण-ब्राह्मण का हम भी आदर करेंगे, सत्कार करेंगे, उन्हें मानेंगे, पूजेंगे। वे अतिथिरूप आएँ तो उन्हें ऊँचें आसन में बिठाएँगे, जलपान कराएँगे।'

फ़िर कुमारियों! आपको ऐसा सीखना चाहिए — 'हमारे पति के लिए हम सिलाई, बुनाई इत्यादि गृहस्थ कार्यों में बिना आलस किए निपुण बनेंगे। हम प्रत्येक कार्यों को सही अंजाम देने की बुद्धिमानी सीखते रहेंगे।'

फ़िर कुमारियों! आपको ऐसा सीखना चाहिए — 'पति के दास, नौकर एवं कर्मचारी ने क्या कार्य पूर्ण किया हैं एवं क्या अपूर्ण रखा हैं — हम यह जानेंगे। कौन रोगी है, कौन कार्य के लिए उपयुक्त, कौन अनुपयुक्त हैं — हम यह जानेंगे। हम प्रत्येक के लिए उचित मात्रा में खाद्य एवं भोजन बांटेंगे।'

फ़िर कुमारियों! आपको ऐसा सीखना चाहिए — 'चाहे मुद्रा, अनाज, स्वर्ण या चांदी हो — हम पति की आमदनी की सुरक्षा करेंगे, बचत करेंगे। न अधिक खर्च करेंगे, न चुराएँगे, न बर्बाद करेंगे, न खो देंगे।' इस तरह कुमारियों, आपको सीखना चाहिए।

जब स्त्री में यह पाँच सद्गुण हो, तो वह मरणोपरांत 'मनोनुकूल काया वाले' देवताओं के साथ स्वर्ग में उपजती है।

'जो सदैव देखभाल करे, सदैव कर्मठ, तत्पर रहे,
सभी चाहत पूर्ण करे' — ऐसे पति को न कम आँके।
ऐसे पति पर अच्छी स्त्री, न कभी ईर्ष्या से रोष करे,
पति के आदरपात्र सभी को पूजती है पण्डिता।
कर्मठ हो निरालसी, सभी को साथ ले चलती,
पति के मनोरूप चलती, संपत्ति की रक्षा करती।
पति की पसंद के अनुरूप, जो नारी वर्तन करती,
मनोनुकूल नामक देवताओं में वो जाकर उपजती।"

«अंगुत्तरनिकाय ५:३३ : उग्गहसुत्त»

एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवन विहार में रह रहे थे। तब देर रात, कोई देवता अत्याधिक कांति से संपूर्ण जेतवन रौशन करते हुए भगवान के पास गया, और पहुँचकर अभिवादन कर एक-ओर खड़ा हुआ। खड़े होकर भगवान के समक्ष गाथाओं का उच्चार किया:

"बहुत से देव एवं मानव, अपने मंगल का चिंतन करते हैं,
भलाई की आकांक्षा रखते हैं। कृपा कर 'उत्तम मंगल' बताएँ?"

**[भगवान:]**

"मूर्खों से असंगति, विद्वानों से संगति,
पूजनीयों की पूजा — उत्तम मंगल हैं!
सभ्य प्रदेश में निवास, पूर्व पुण्यों का होना,
स्वयं का सही संचालन — उत्तम मंगल है!
विस्तृत ज्ञान, कार्यकौशलता, अनुशासन में सुशिक्षित होना,
वाणी में सुभाषिता — उत्तम मंगल हैं!
माता-पिता को सहारा, पत्नी-संतान का पोषण
कार्यों को न अधूरा छोड़ना — उत्तम मंगल हैं!
दान एवं धर्मचर्या, रिश्तेदारों को सहारा,

निर्दोष कार्य करना — उत्तम मंगल हैं!
पाप टाल, विरत रहना, मद्यपान में संयम,
धर्म की परवाह होना — उत्तम मंगल हैं!
आदर एवं विनम्रता, संतुष्टि एवं कृतज्ञता,
समय-समय पर धर्म सुनना — उत्तम मंगल हैं!
क्षमाशीलता, आज्ञाकारिता, श्रमणों का दर्शन,
समय-समय पर धर्मचर्चा — उत्तम मंगल हैं!
तप एवं ब्रह्मचर्य, आर्यसत्यों का दर्शन,
निर्वाण का साक्षात्कार — उत्तम मंगल हैं!
लोकधर्म[31] छूने पर चित्त न कंपित होना,
बिना शोक, निर्मल, सुरक्षित होना — उत्तम मंगल हैं!
इस तरह कार्य कर, सर्वत्र अपराजित रह,
सर्वत्र भलाई में जो जाएँ — वह उत्तम मंगल होता हैं!"

«खुद्दकनिकाय ५ : मङ्गलसुत्त»

**देवराज इंद्र** ने वैजयन्त महल से उतरकर [रथ पर सवार होने पूर्व] हाथ जोड़कर सभी दिशाओं को नमन किया। यह देखकर सारथी मातलि ने गाथाओं में कहा,

"तीन वेदों के ज्ञाता [ब्राह्मण] नमन आप को करें।
पृथ्वी के सभी क्षत्रिय नमन आप को करें।
चार महाराज देवतागण नमन आप को करें।
[३३ में] तीस प्रभावी देवतागण नमन आप को करें।
किंतु, देवेंद्र, उस यक्ष का क्या नाम है,
जिन्हें, महामहिम, आप भी नमन करें?"

[31] **लोकधर्म** आठ होते हैं — लाभ-हानि, यश-अपयश, निंदा-प्रशंसा एवं सुख-दुःख। भगवान अनुसार, आठ लोकधर्म दुनिया के गोल-गोल घूमते हैं। तथा दुनिया भी इन्हीं आठ लोकधर्मों के गोल-गोल चक्कर काटती है।

[देवराज इंद्र:]
“तीन वेदों के ज्ञाता मुझे नमन करें,
पृथ्वी के तमाम क्षत्रिय मुझे नमन करें।
चार महाराज देवतागण मुझे नमन करें।
तीस प्रभावी देवतागण मुझे नमन करें।
और मैं शीलसंपन्नों को,
चिरकाल से समाहितो को,
सम्यक तरह से प्रवज्यितो को,
ब्रह्मचारियों को वंदन करूँ।
और शीलवान उपासकों को
पुण्य करने वाले गृहस्थों को
धर्मपूर्वक घर चलाने वालों को,
मातलि, मैं नमन करूँ।”
[मातलि:]
“लोक में वे श्रेष्ठ दिखें
जिन्हें, देवेंद्र, आप नमन करे,
मैं भी उन्हें नमन कर लूं।
जिन्हें, वासव, आप नमन करे।”

इस तरह दिशाओं को नमन करने पश्चात, देवराज इंद्र रथ पर सवार हुआ।

«संयुत्तनिकाय ११:१८ : गहट्ठवन्दनासुत्त»

**कोई भिक्षु** दस्त से पीड़ित, मलमूत्र में सना हुआ पड़ा था। तब भगवान अपने सेवक आनन्द भन्ते के साथ भिक्षुसंघ आवास का निरीक्षण दौरा करते हुए उस भिक्षु के निवास गए, और पहुँचकर उन्होंने उस दस्त से पीड़ित भिक्षु को मलमूत्र में सने हुए पड़ा देखा। उसे देखकर भगवान उसके पास गए और कहा:

“क्या रोग है तुम्हें, भिक्षु?”

“भगवान! मुझे दस्त है।”

"क्या तुम्हारी सेवा में कोई है?"

"नहीं, भगवान!"

"तब भिक्षु तुम्हारी सेवा क्यों नहीं करते हैं?"

"भन्ते! मैं भिक्षुओं के लिए कुछ नहीं करता हूँ। इसलिए भिक्षु मेरी सेवा नहीं करते हैं।"

तब भगवान ने आनन्द भन्ते से कहा, "जाओ आनन्द, थोड़ा जल ले आओ। हम इस भिक्षु को नहलाएँगे।"

"जैसे आप कहें, भगवान!" आनन्द भन्ते ने उत्तर दिया, और जल ले आए। तब भगवान ने उस भिक्षु पर जल छिड़का, तथा आनन्द भन्ते ने उसे नहलाया। तब भगवान ने उसे सिर से पकड़, तथा आनन्द भन्ते ने उसे पैर से पकड़, उसे उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया।

तब भगवान ने भिक्षुओं को उस कारण से, उस घटना से एकत्रित किया और पूछताछ करने के पश्चात कहा, "भिक्षुओं, न तुम्हारी मां है, न पिता, जो तुम्हारी देखभाल कर सके। यदि तुम एक-दूसरे की देखभाल न करो, तो तुम्हारी देखभाल कौन करेगा? **जिसे मेरी सेवा करनी हो, वह रोगी की सेवा करें!**"

तब आगे भगवान ने भिक्षुसंघ के लिए रोगी सेवा से संबन्धित नए व्रत नियम का गठन किया। तत्पश्चात उन्होंने कहा,

"पाँच सद्गुणों से संपन्न व्यक्ति, रोगी की सेवा के लिए उपयुक्त होता है —

- दवाई मिलाने में निपुण हो।
- रोगी के इलाज के लिए उचित-अनुचित जानता हो। अनुचित ले जाए और उचित ले आए।
- सद्भाव चित्त से प्रेरित हो, आमिष लाभ से नहीं।
- मल, मूत्र, थूक या वमन [उल्टी] साफ़ करने में घिन न करे।
- रोगी को उचित अवसर पर धर्मकथा से निर्देशित करने में, आग्रह करने में, उत्साहित करने में, तथा प्रेरित करने में निपुण हो।

इन पाँच सद्गुणों से संपन्न व्यक्ति, रोगी की सेवा के लिए उपयुक्त होता है।"

«विनयपिटक महावग्ग ८:२६ : गिलानवत्थुकथा »

**अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया, तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन।**

**पुञ्ञं सुखं जीवितसङ्खयम्हि, सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहानं।।**

ज़रूरत पड़ने पर सहायक: सुखद!

जो हो उसमे संतुष्टि: सुखद!

जीवन के आख़िर पुण्य: सुखद!

समस्त दुःखों का त्याग: सुखद!!

**सुखा मत्तेय्यता लोके, अथो पेत्तेय्यता सुखा।**

**सुखा सामञ्ञता लोके, अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा।।**

इस दुनिया में माता सेवा: सुखद!

और पिता सेवा भी: सुखद!

इस दुनिया में श्रमण सेवा: सुखद!

और ब्राह्मण सेवा भी: सुखद!!

**सुखं याव जरा सीलं, सुखा सद्धा पतिट्ठिता।**

**सुखो पञ्ञाय पटिलाभो, पापानं अकरणं सुखं।।**

बुढ़ापे में शील: सुखद!

श्रद्धा में प्रतिष्ठित होना: सुखद!

अंतर्ज्ञान का प्रतिलाभ: सुखद!

पापों को न करना: सुखद!!

«धम्मपद नागवग्गो ३३१-३३३»

# उपोसथ व्रत

एक समय भगवान श्रावस्ती में मिगारमाता महल «पुब्बाराम» पूर्व विहार में रह रहे थे। तब वह उपोसथ-दिवस होने पर **मिगारमाता विशाखा** दिन के मध्यस्थ भगवान के पास गई, और पहुँचकर अभिवादन कर एक-ओर बैठ गई। भगवान ने कहा:

"विशाखा! भला दिन के मध्यस्थ कैसे आना हुआ?"

"भन्ते, आज मैंने उपोसथ ग्रहण किया है।"

"तीन उपोसथ होते हैं, विशाखा। कौन से तीन? गोपालक उपोसथ, निगण्ठ उपोसथ तथा आर्य उपोसथ।

**गोपालक उपोसथ** क्या होता है? जैसे देर सायंकाल कोई गोपालक [चरवाहा] मालिकों को गाय सौपते हुए सोचता है, "आज गायों को अमुक-अमुक जगह घुमाया, अमुक-अमुक जगह जल पिलाया। कल उन्हें अमुक-अमुक जगह घुमाऊँगा, अमुक-अमुक जगह जल पिलाऊँगा।" इसी तरह होता है कि कोई उपोसथ धारक सोचता है, "आज मैने यह खाद्य खाया, वह भोजन किया। कल मैं वह खाद्य खाऊँगा, वह भोजन करूँगा।" पूरा दिन ऐसे ही लालसाभरे चित्त के साथ बीत जाता है। यह होता है विशाखा, गोपालक उपोसथ! जब कोई गोपालक उपोसथ ग्रहण करे, तो न महाफ़ल मिलता है, न महापुरस्कार। न उसकी महामहिमा है, न महातेज।

**निगण्ठ उपोसथ** क्या होता है? कुछ श्रमण, निगण्ठ [जैन] कहलाते हैं। वे श्रावकों को ग्रहण कराते हैं, "आईए श्रीमान! सौ योजन तक पूर्व-दिशा में... सौ योजन तक दक्षिण-दिशा में... सौ योजन तक पश्चिम-दिशा में... सौ योजन तक उत्तर-दिशा में रहने वाले जीवों के प्रति दण्ड नीचे रख दो!" इस तरह वे श्रावकों को कुछ जीवों के प्रति दया एवं अनुकंपा धारण कराते हैं, किंतु सभी के प्रति नहीं!

उपोसथ दिवस पर वे श्रावकों को ग्रहण कराते हैं, "आईए श्रीमान! अपने सभी वस्त्र निकाल कर कहिए, "मैं कुछ नहीं हूँ, किसी का कोई नहीं हूँ! और मेरा कुछ नहीं है, किसी का कुछ भी मेरा नहीं है!" किंतु ऐसा कहने पर भी उसके माता-पिता जानते हैं, "यह हमारा पुत्र है!" वह स्वयं जानता है, "यह मेरे माता-पिता हैं!" उसकी पत्नी-संताने जानते हैं, "यह मेरा पति है। मेरे पिता है!" वह स्वयं जानता है, "यह मेरी पत्नी है। मेरी संतान हैं!" उसके नौकर-दास जानते हैं, "यह हमारे मालिक है!" वह स्वयं जानता है, "यह मेरे नौकर हैं, दास हैं!" इस तरह जिस [पवित्र] दिन उससे सत्य धारण

कराना चाहिए था, उस समय उससे असत्य धारण कराते हैं। इसे मैं «मुसावाद» झूठ बोलना कहता हूँ! रात बीतने पर वह स्वयं ही अपनी वस्तुएँ, बिना किसी के थमाए, ले लेता है। इसे मैं «अदिन्नादान» चुराना कहता हूँ! यह होता है विशाखा, निगण्ठ उपोसथ! जब कोई निगण्ठ उपोसथ ग्रहण करे, तो न महाफ़ल मिलता है, न महापुरस्कार। न उसकी महामहिमा है, न महातेज।

और **आर्य उपोसथ** क्या होता है? योग्य उपक्रम कर दूषित चित्त साफ़ करना। कोई योग्य उपक्रम कर दूषित चित्त कैसे साफ़ करता है?

• ऐसा होता है कि आर्यश्रावक **तथागत का अनुस्मरण** करता है — 'वाकई भगवान अर्हंत [=काबिल] सम्यक-सम्बुद्ध है — विद्या एवं आचरण में संपन्न, परम मंजिल पा चुके, दुनिया के जानकार, दमनयोग्य पुरुष के सर्वोपरि सारथी, देवता एवं मानव के गुरु, पवित्र बोधिप्राप्त!' तथागत का अनुस्मरण कर चित्त शान्त [आश्वस्त] होता है, प्रसन्नता उपजती है, तथा चित्त से मलीनता छूट जाती है।

जैसे योग्य उपक्रम कर **सिर** धोया जाता है। लेप लगाकर, मिट्टी लगाकर [आजकल शाम्पू], जल लगाकर एवं थोड़ी मेहनत कर सिर धोया जाता है। उसी तरह [तथागत का अनुस्मरण कर] दूषित चित्त साफ़ किया जाता है। तब कहते है विशाखा, "इस आर्यश्रावक ने **ब्रह्म-उपोसथ** ग्रहण किया है! वह ब्रह्म के साथ संवास कर रहा है! ब्रह्मकृपा से उसका चित्त शान्त है, प्रसन्नता उपजी है, तथा उसके चित्त में जो मलीनता हो, छूट रही है!" इस तरह विशाखा, योग्य उपक्रम कर दूषित चित्त साफ़ करते है।

• ऐसा होता है कि आर्यश्रावक **धर्म का अनुस्मरण** करता है, "भगवान का धर्म — स्पष्ट बताया है, तुरंत दिखता है, सर्वकालिक है, आजमाने योग्य है, प्रासंगिक है, समझदार द्वारा स्वानुभूति योग्य!" धर्म का अनुस्मरण कर चित्त शान्त होता है, प्रसन्नता उपजती है, तथा चित्त से मलीनता छूट जाती है।

जैसे योग्य उपक्रम कर **शरीर** धोया जाता है। स्वस्ति लगाकर, चूर्ण लगाकर [आजकल साबुन], जल लगाकर एवं थोड़ी मेहनत कर शरीर धोया जाता है। उसी तरह [धर्म का अनुस्मरण कर] दूषित चित्त साफ़ किया जाता है। तब कहते है विशाखा, "इस आर्यश्रावक ने **धर्म-उपोसथ** ग्रहण किया है! वह धर्म के साथ संवास कर रहा है! धर्मकृपा से उसका चित्त शान्त है, प्रसन्नता उपजी है, तथा उसके चित्त में जो मलीनता हो, छूट रही है!" इस तरह विशाखा, योग्य उपक्रम कर दूषित चित्त साफ़ करते है।

• ऐसा होता है कि आर्यश्रावक **संघ का अनुस्मरण** करता है, "भगवान का श्रावकसंघ सुमार्ग पर चलता है, सीधे मार्ग पर चलता है, व्यवस्थित मार्ग पर चलता है, उचित मार्ग पर चलता है। चार जोड़ी में, आठ तरह के आर्यजन — यही भगवान का श्रावकसंघ है — उपहार देने योग्य, अतिथि बनाने योग्य, दक्षिणा देने योग्य, प्रणाम करने योग्य, दुनिया के लिए सर्वोपरि पुण्यक्षेत्र!" संघ का अनुस्मरण कर चित्त शान्त होता है, प्रसन्नता उपजती है, तथा चित्त से मलीनता छूट जाती है।

जैसे योग्य उपक्रम कर **वस्त्र** धोया जाता है। ऊष्मा देकर, क्षार लगाकर, गोबर लगाकर [आजकल डिटर्जेंट], जल लगाकर एवं थोड़ी मेहनत कर वस्त्र धोया जाता है। उसी तरह [संघ का अनुस्मरण कर] दूषित चित्त साफ़ किया जाता है। तब कहते है विशाखा, "इस आर्यश्रावक ने **संघ-उपोसथ** ग्रहण किया है! वह संघ के साथ संवास कर रहा है! संघकृपा से उसका चित्त शान्त है, प्रसन्नता उपजी है, तथा उसके चित्त में जो मलीनता हो, छूट रही है!" इस तरह विशाखा, योग्य उपक्रम कर दूषित चित्त साफ़ करते है।

• ऐसा होता है कि आर्यश्रावक **अपने शील का अनुस्मरण** करता है, "जो अखंडित हो, अछिद्रित हो, बेदाग हो, बेधब्बा हो, निष्कलंक हो, विद्वानों द्वारा प्रशंसित हो, छुटकारा दिलाते हो और समाधि की ओर बढ़ाते हो।" अपने शील का अनुस्मरण कर चित्त शान्त होता है, प्रसन्नता उपजती है, तथा चित्त से मलीनता छूट जाती है।

जैसे योग्य उपक्रम कर **दर्पण** धोया जाता है। तेल लगाकर, राख लगाकर [आजकल कॉलिन], बाल का गुच्छा रगड़कर, थोड़ी मेहनत कर दर्पण धोया जाता है। उसी तरह [अपने शील का अनुस्मरण कर] दूषित चित्त साफ़ किया जाता है। तब कहते है विशाखा, "इस आर्यश्रावक ने **शील-उपोसथ** ग्रहण किया है! वह शील के साथ संवास कर रहा है! शीलकृपा से उसका चित्त शान्त है, प्रसन्नता उपजी है, तथा उसके चित्त में जो मलीनता हो, छूट रही है!" इस तरह विशाखा, योग्य उपक्रम कर दूषित चित्त साफ़ करते है।

• ऐसा होता है कि आर्यश्रावक **देवताओं का अनुस्मरण** करता है, "चार महाराज देवता होते हैं! तैतीस देवता होते हैं! याम देवता होते हैं! तुषित देवता होते हैं! निर्माणरती देवता होते हैं! परिनिर्मित वशवर्ती देवता होते हैं! ब्रह्मकायिक देवता होते हैं! उनसे परे भी देवता होते हैं! वे जिस **श्रद्धा** से संपन्न हो, यहाँ से च्युत होने पर वहाँ उत्पन्न हुए थे, वहीं श्रद्धा मुझ में भी है! वे जिस **शील** से संपन्न हो, यहाँ से च्युत होने पर वहाँ उत्पन्न

हुए थे, वहीं शील मुझ में भी है! वे जो [सद्धर्म] **सुनने** से संपन्न हो, यहाँ से च्युत होने पर वहाँ उत्पन्न हुए थे, वहीं श्रुत मुझ में भी है! वे जिस **त्याग** [दानशीलता] से संपन्न हो, यहाँ से च्युत होने पर वहाँ उत्पन्न हुए थे, वहीं त्याग मुझ में भी है! वे जिस **अंतर्ज्ञान** से संपन्न हो, यहाँ से च्युत होने पर वहाँ उत्पन्न हुए थे, वहीं अंतर्ज्ञान मुझ में भी है!" देवताओं का अनुस्मरण कर चित्त शान्त होता है, प्रसन्नता उपजती है, तथा चित्त से मलीनता छूट जाती है।

जैसे योग्य उपक्रम कर **चांदी** को धोया जाता है। भट्टी तपाकर, नमक लगाकर, गेरू लगाकर, फूंकनी लेकर, थोड़ी मेहनत कर चांदी को धोया जाता है। उसी तरह [देवताओं का अनुस्मरण कर] दूषित चित्त साफ़ किया जाता है। तब कहते है विशाखा, "इस आर्यश्रावक ने **देव-उपोसथ** ग्रहण किया है! वह देवताओं के साथ संवास कर रहा है! देवकृपा से उसका चित्त शान्त है, प्रसन्नता उपजी है, तथा उसके चित्त में जो मलीनता हो, छूट रही है!" इस तरह विशाखा, योग्य उपक्रम कर दूषित चित्त साफ़ करते है।

• और आगे विशाखा, आर्यश्रावक चिन्तन करता है, "अर्हन्त जीवित रहते तक हिंसा त्यागकर **जीवहत्या से विरत** रहते हैं — डंडा एवं शस्त्र फेंक चुके, शर्मिले एवं दयावान, समस्त जीवहित के प्रति करुणामयी! आज मैं भी दिन एवं रात तक हिंसा त्यागकर जीवहत्या से विरत रहूँगा — डंडा एवं शस्त्र फेंक चुका, शर्मिला एवं दयावान, समस्त जीवहित के प्रति करुणामयी! मैं इस गुण से अर्हन्तों का अनुकरण कर उपोसथ पूर्ण करूँगा!

• अर्हन्त जीवित रहते तक 'न सौंपी चीज़ें' त्यागकर **चुराने से विरत** रहते हैं। गांव या जंगल से न दी गई, न सौंपी, पराई वस्तु चोरी की इच्छा से नहीं उठाते, नहीं लेते हैं। बल्कि मात्र सौंपी चीज़ें ही उठाते, स्वीकारते हैं। पावन जीवन जीते हैं, चोरी चुपके नहीं! आज मैं भी आज दिन एवं रात तक 'न सौंपी चीज़ें' त्यागकर चुराने से विरत रहूँगा। गांव या जंगल से न दी गई, न सौंपी, पराई वस्तु चोरी की इच्छा से नहीं उठाऊँगा, नहीं लूंगा! बल्कि मात्र सौंपी चीज़ें ही उठाऊँगा एवं स्वीकारूँगा! पावन जीवन जिऊँगा, चोरी चुपके नहीं! मैं इस गुण से अर्हन्तों का अनुकरण कर उपोसथ पूर्ण करूँगा!

• अर्हन्त जीवित रहते तक ब्रह्मचर्य धारण कर अब्रह्मचर्य से पृथक, विरत रहते हैं — 'देहाती' मैथुनधर्म से विरत! आज मैं भी दिन एवं रात तक ब्रह्मचर्य धारण कर अब्रह्मचर्य से पृथक, विरत रहूँगा — 'देहाती' मैथुनधर्म से विरत! मैं इस गुण से अर्हन्तों का अनुकरण कर उपोसथ पूर्ण करूँगा!

• अर्हन्त जीवित रहते तक झूठ बोलना त्यागकर असत्यवचन से विरत रहते हैं! वह सत्यवादी, सत्य के पक्षधर, दृढ़ एवं भरोसेमंद होते हैं! दुनिया को ठगते नहीं हैं! आज मैं भी दिन एवं रात तक झूठ बोलना त्यागकर असत्यवचन से विरत रहूँगा! मैं सत्यवादी, सत्य का पक्षधर, दृढ़ एवं भरोसेमंद बनूंगा! दुनिया को ठगुंगा नहीं! मैं इस गुण से अर्हन्तों का अनुकरण कर उपोसथ पूर्ण करूँगा!

• अर्हन्त जीवित रहते तक शराब मद्य आदि मदहोश करनेवाला नशापता त्यागकर नशेपते से विरत रहते हैं। आज मैं भी दिन एवं रात तक शराब मद्य आदि मदहोश करने वाले नशेपते से विरत रहूँगा! मैं इस गुण से अर्हन्तों का अनुकरण कर उपोसथ पूर्ण करूँगा!

• अर्हन्त जीवित रहते तक दिन में एक ही बार भोजन करते हैं — रात्रिभोज एवं विकालभोज [मध्यान्ह के पश्चात] से विरत! आज मैं भी दिन एवं रात तक दिन में एक ही बार भोजन करूँगा — रात्रिभोज एवं विकालभोज से विरत! मैं इस गुण से अर्हन्तों का अनुकरण कर उपोसथ पूर्ण करूँगा!

• अर्हन्त जीवित रहते तक नृत्य गीत वाद्यसंगीत एवं नाट्य मनोरंजन, तथा माला गंध लेप, सुडौलता लाने वाले एवं अन्य सौंदर्य प्रसाधन से विरत रहते हैं। आज मैं भी दिन एवं रात तक नृत्य गीत वाद्यसंगीत एवं नाट्य मनोरंजन, तथा माला गंध लेप, सुडौलता लाने वाले एवं अन्य सौंदर्य प्रसाधन से विरत रहूँगा! मैं इस गुण से अर्हन्तों का अनुकरण कर उपोसथ पूर्ण करूँगा!

• अर्हन्त जीवित रहते तक ऊँचे एवं बड़े आसन अथवा पलंग के उपयोग से विरत रहते हैं। आज मैं भी दिन एवं रात तक ऊँचे एवं बड़े आसन अथवा पलंग के उपयोग से विरत रहूँगा! मैं इस गुण से अर्हन्तों का अनुकरण कर उपोसथ पूर्ण करूँगा!

यह होता है विशाखा, आर्य उपोसथ। जब कोई आर्य उपोसथ ग्रहण करे तो महाफ़ल, महापुरस्कार मिलता है। उसकी महामहिमा, महातेज होता है। कैसे?

जैसे किसी व्यक्ति को सप्तरत्नों के साथ [जम्बूद्वीप के] सोलहों महाराज्यों — अङ्ग, मगध, कासी, कोसल, वज्जी, मल्ल, चेती, वङ्ग, कुरू, पञ्चाल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक, अवन्ती, गन्धार एवं कम्बोज — पर संपूर्ण ऐश्वर्य एवं आधिपत्य के साथ राज करने दिया जाए! तब भी वह अष्टांगिक आर्य उपोसथ के सोलहवें हिस्से के बराबर न होगा! ऐसा क्यों? क्योंकि मानवों पर राज दिव्यसुख के आगे तुच्छ है!

मनुष्य के ५० वर्ष, विशाखा, **चार-महाराज** देवताओं का मात्र एक दिन-रात [२४ घंटे] के बराबर है। ऐसे तीस दिन-रातों का एक माह होता है, बारह माह का एक वर्ष। ऐसे ५०० दिव्यवर्ष [=९० लाख मानववर्ष] चार-महाराज देवताओं की आयु होती है। अब विशाखा, संभव है कि कोई स्त्री या पुरुष यहाँ 'अष्टांगिक आर्य उपोसथ' ग्रहण करता हो, तो मरणोपरांत चार-महाराज देवताओं में जन्म ले। इसलिए कहते है कि मानवों पर राज दिव्यसुख के आगे तुच्छ है!

और विशाखा, मनुष्य के १०० वर्ष **तैतीस** देवताओं के मात्र एक दिन-रात के बराबर है। ऐसे तीस दिन-रातों का एक माह होता है, बारह माह का एक वर्ष। ऐसे १,००० दिव्यवर्ष [=३ करोड़ ६० लाख मानववर्ष] तैतीस देवताओं की आयु होती है। अब विशाखा, संभव है कि कोई स्त्री या पुरुष यहाँ अष्टांगिक आर्य उपोसथ ग्रहण करता हो, तो मरणोपरांत तैतीस देवताओं में जन्म ले। इसलिए कहते है कि मानवों पर राज दिव्यसुख के आगे तुच्छ है!

और विशाखा, मनुष्य के २०० वर्ष, **याम** देवताओं के मात्र एक दिन-रात के बराबर है। ऐसे तीस दिन-रातों का एक माह होता है, बारह माह का एक वर्ष। ऐसे २,००० दिव्यवर्ष [=१४ करोड़ ४० लाख मानववर्ष] याम देवताओं की आयु होती है। अब विशाखा, संभव है कि कोई स्त्री या पुरुष यहाँ अष्टांगिक आर्य उपोसथ ग्रहण करता हो, तो मरणोपरांत याम देवताओं में जन्म ले। इसलिए कहते है कि मानवों पर राज दिव्यसुख के आगे तुच्छ है!

और विशाखा, मनुष्य के ४०० वर्ष, **तुषित** देवताओं के मात्र एक दिन-रात के बराबर है। ऐसे तीस दिन-रातों का एक माह होता है, बारह माह का एक वर्ष। ऐसे ४,००० दिव्यवर्ष [=५७ करोड़ ६० लाख मानववर्ष] तुषित देवताओं की आयु होती है। अब विशाखा, संभव है कि कोई स्त्री या पुरुष यहाँ अष्टांगिक आर्य उपोसथ ग्रहण करता हो, तो मरणोपरांत तुषित देवताओं में जन्म ले। इसलिए कहते है कि मानवों पर राज दिव्यसुख के आगे तुच्छ है!

और विशाखा, मनुष्य के ८०० वर्ष, **निर्माणरति** देवताओं के मात्र एक दिन-रात के बराबर है। ऐसे तीस दिन-रातों का एक माह होता है, बारह माह का एक वर्ष। ऐसे ८,००० दिव्यवर्ष [=२ अरब ३० करोड़ ४० लाख मानववर्ष] निर्माणरति देवताओं की आयु होती है। अब विशाखा, संभव है कि कोई स्त्री या पुरुष यहाँ अष्टांगिक आर्य उपोसथ ग्रहण

करता हो, तो मरणोपरांत निर्माणरति देवताओं में जन्म ले। इसलिए कहते है कि मानवों पर राज दिव्यसुख के आगे तुच्छ है!

और विशाखा, मनुष्य के १६०० वर्ष, **परनिर्मित वशवर्ती** देवताओं के मात्र एक दिन-रात के बराबर है। ऐसे तीस दिन-रातों का एक माह होता है, बारह माह का एक वर्ष। ऐसे १६,००० दिव्यवर्ष [=९ अरब २१ करोड़ ६० लाख मानववर्ष] परनिर्मित वशवर्ती देवताओं की आयु होती है। अब विशाखा, संभव है कि कोई स्त्री या पुरुष यहाँ अष्टांगिक आर्य उपोसथ ग्रहण करता हो, तो मरणोपरांत परनिर्मित वशवर्ती देवताओं में जन्म ले। इसलिए कहते है कि मानवों पर राज दिव्यसुख के आगे तुच्छ है!

न प्राण हरें, न चुराएँ,
न झूठ बोलें, न मद्य पिएँ,
अब्रह्मचर्य, मैथुन से विरत रहें,
न रात्रिभोज, विकालभोज करें।
न माला धारण करें, न गन्ध लगाएँ,
सन्थत बिछाकर जमीन पर सोएँ।
ऐसा अष्टांगिक उपोसथ,
दुःख अन्तगुण बुद्ध ने प्रकाशित किए।
चंद्र एवं सूर्य, दोनों सुदर्शन,
जहाँ जातें, कान्ति फैलाते।
अंतरिक्ष से गुजरते, अंधकार मिटातें।
नभ उज्ज्वल करतें, दिशाएँ जगमगातें।
उसी बीच धन हैं पता चलतें —
मोती, मणि, वैदूर्य [हरा रत्न], भद्रक [भाग्यशाली रत्न],
श्रृंग [प्लेटिनम], स्वर्ण एवं ऐसे खज़ाने,
‘हटक’ नामक परिशुद्ध चांदी —
अष्टांगिक उपोसथ की तुलना में
वे सोलहवा हिस्सा भी न बनें।
जैसे चंद्रप्रभा के आगे, तारें फीके लगते हो।

ऐसे शीलवान, नर अथवा नारी हो
जो अष्टांगिक उपोसथ ग्रहण किए हो,
वे सुखवर्धक पुण्य करते हैं।
अनिंदित रह, स्वर्ग भी जाते हैं।”

«अंगुत्तरनिकाय ३:७१ : मूलूपोसथसुत्त»

एक समय भगवान [अपने कुलजात] **शाक्यों के साथ** कपिलवस्तु में वटवृक्ष विहार में रह रहे थे। तब उपोसथ-दिवस होने पर बहुत से शाक्य उपासक भगवान के पास गए, और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गए। एक-ओर बैठे शाक्यों से भगवान ने कहा:

“शाक्यों, क्या आप अष्टांगिक उपोसथ ग्रहण करते हैं?”

“कभी करते हैं, भन्ते! तो कभी नहीं करते हैं।”

“आपका लाभ नहीं है, शाक्यों! शोक के खतरे में पड़े इस जीवन में, मौत के खतरे में पड़े इस जीवन में, कभी आप अष्टांगिक उपोसथ ग्रहण करते हैं, तो कभी नहीं करते हैं।

क्या लगता हैं, शाक्यों? यदि कोई पुरुष किसी व्यवसाय से, बिना अकुशल दिनों का सामना किए, अर्ध ‘कहापण’ [समकालीन स्वर्णमुद्रा] कमाता हो। क्या उसे दक्ष, कर्मठ पुरुष पुकारना योग्य होगा?”

“हाँ, भन्ते!”

“यदि कोई पुरुष किसी व्यवसाय से, बिना अकुशल दिनों का सामना किए, एक कहापण... दो... तीन... चार... पाँच... दस... बीस... तीस... चालीस... पचास... सौ कहापण कमाता हो। क्या उसे दक्ष, कर्मठ पुरुष पुकारना योग्य होगा?”

“हाँ, भन्ते!”

“तब क्या लगता हैं, शाक्यों? एक दिन में कोई एक सौ कहापण कमाकर, एक हजार कहापण कमाकर, उसकी बचत करते हुए सौ वर्षों तक जीएँ। तो क्या उस पुरुष की [अंततः] महाभोगसंपत्ति हो जाएगी?”

“हाँ, भन्ते!”

“तब क्या लगता हैं, शाक्यों? क्या वह पुरुष उस भोगसंपत्ति के कारण पूर्ण दिन या रात तक, या अर्ध दिन या अर्ध रात तक अमिश्रित सुख की अनुभूति करेगा?”

“नहीं, भन्ते! क्योंकि कामसुख अनित्य होते हैं, खोखले होते हैं, झूठे होते हैं, छलावा होते हैं।”

“अब शाक्यों! ऐसा होता है कि कोई मेरा श्रावक फिक्रमंद, सचेत एवं दृढ़निश्चयी होकर दस वर्ष बिताएँ, मेरी शिक्षा पर चले। तो वह सौ वर्षों तक, सौ शताब्दियों तक, सौ सहस्त्राब्दियों तक अमिश्रित सुख की अनुभूति करेगा। तथा वह अनागामी, सकृदागामी, या कम से कम श्रोतापन्न बनेगा।

शाक्यों, दस वर्ष छोड़ों! कोई मेरा श्रावक फिक्रमंद, सचेत एवं दृढ़निश्चयी होकर नौ... आठ... सात... छह... पाँच... चार... तीन... दो... एक वर्ष बिताएँ... एक वर्ष भी छोड़ों! दस माह... नौ... आठ... सात... छह... पाँच... चार... तीन... दो... एक... अर्धमाह बिताएँ... अर्धमाह भी छोड़ों! दस दिन-रात... नौ... आठ... सात... छह... पाँच... चार... तीन... दो... एक दिन-रात बिताएँ, मेरी शिक्षा पर चले। तो वह सौ वर्षों तक, सौ शताब्दियों तक, सौ सहस्त्राब्दियों तक अमिश्रित सुख की अनुभूति करेगा। तथा वह अनागामी, सकृदागामी, या कम से कम श्रोतापन्न बनेगा।

आपका लाभ नहीं है, शाक्यों! शोक के खतरे में पड़े इस जीवन में, मौत के खतरे में पड़े इस जीवन में, कभी आप अष्टांगिक उपोसथ ग्रहण करते हैं, तो कभी नहीं करते हैं।”

“तब, भन्ते! हम आज से [नियमित] अष्टांगिक उपोसथ ग्रहण करेंगे!”

«अंगुत्तरनिकाय ३:७१ : सक्कसुत्त»

★ ★ ★

अध्याय सात

# भावना

---

**भगवान** ने कहा:

“भिक्षुओं, संपत्ति सात तरह की होती हैं। कौन सी सात? श्रद्धासंपत्ति, शीलसंपत्ति, लज्जासंपत्ति, फ़िक्रसंपत्ति, श्रुतसंपत्ति, त्यागसंपत्ति एवं अंतर्ज्ञानसंपत्ति।

- **श्रद्धासंपत्ति** क्या है? ऐसा होता है कि किसी आर्यश्रावक को बुद्ध पर अटूट आस्था होती है: ‘वाकई भगवान अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध है — विद्या एवं आचरण में संपन्न, परम मंजिल पा चुके, दुनिया के जानकार, दमनयोग्य पुरुष के सर्वोपरि सारथी, देवता एवं मानव के गुरु, पवित्र बोधिप्राप्त!’ यह श्रद्धासंपत्ति है।

- **शीलसंपत्ति** क्या है? ऐसा होता है कि कोई आर्यश्रावक जीवहत्या से विरत, चोरी से विरत, व्यभिचार से विरत, झूठ बोलने से विरत, शराब मद्य आदि मदहोश करने वाले नशेपते से विरत रहता है। यह शीलसंपत्ति है।

- **लज्जासंपत्ति** क्या है? ऐसा होता है कि कोई आर्यश्रावक काया से दुराचार, वाणी से दुराचार एवं मन से दुराचार करने में लज्जा महसूस करता है। वह पाप, अकुशल स्वभाव में लिप्त होने पर लज्जा महसूस करता है। यह लज्जासंपत्ति है।

- **फ़िक्रसंपत्ति** क्या है? ऐसा होता है कि कोई आर्यश्रावक काया से दुराचार, वाणी से दुराचार एवं मन से दुराचार करने में डर लगता है। वह पाप, अकुशल स्वभाव में लिप्त होने पर भयभीत होता है। यह फ़िक्रसंपत्ति है।

- **श्रुतसंपत्ति** क्या है? ऐसा होता है कि कोई आर्यश्रावक बार-बार धर्म सुनता है, सुना याद रखता है, सुना संचित करता है। जो शुरुवात में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी एवं अन्त में कल्याणकारी हो, ऐसा सर्वपरिपूर्ण परिशुद्ध ‘ब्रह्मचर्य धर्म’ अर्थ एवं विवरण के साथ, वह बार-बार सुनता है, याद रखता है, चर्चा करता है, संचित करता है, मन से जाँच-पड़ताल करता है, और गहराई से समझकर सम्यकदृष्टि धारण करता है। यह श्रुतसंपत्ति है।

• **त्यागसंपत्ति** क्या है? ऐसा होता है कि कोई आर्यश्रावक घर रहते हुए दानी होता है — कंजूसी के मल से छूटा, साफ़ चित्त का, मुक्त त्यागी, खुले हृदय का, उदारता में रत होता, याचनाओं का पूर्णकर्ता, दान-संविभाग में रत रहता है। यह त्यागसंपत्ति है।

• **अंतर्ज्ञानसंपत्ति** क्या है? ऐसा होता है कि किसी आर्यश्रावक में अंतर्ज्ञान होता है — आर्य, भेदक, उदय-व्यय पता करने योग्य, दुःखों का सम्यक अन्तकर्ता! यह अंतर्ज्ञानसंपत्ति है। ऐसे संपत्ति, सात तरह की होती हैं।

श्रद्धा हो एवं शील हो, लज्जा एवं फ़िक्र हो,
श्रुत, त्याग, अंतर्ज्ञान भी — यह कुल सप्तसंपत्ति!
स्त्री अथवा पुरुष की, जिसकी भी संपत्ति हो,
उसे दरिद्र नहीं कहते, जीया नहीं मदहोश वो।
इसलिए श्रद्धा और शील, आस्था और धर्मदर्शन,
विकसित करता मेधावी, स्मरण करते बुद्धशासन।”

«अंगुत्तरनिकाय ७:६ : वित्थतधनसुत्त»

**गृहस्थ अनाथपिंडक** भगवान के पास गया और अभिवादन कर एक और बैठ गया। भगवान ने कहा:

“गृहस्थ! क्या अब भी तुम्हारा परिवार दान-दक्षिणा करता है?”

“हाँ भन्ते! अब भी हमारा परिवार दानदक्षिणा करता है। किंतु अब वह निकृष्ट होता है — भूसी के साथ पकाया टूटा चावल, अचार के साथ[32]।”

“गृहस्थ! भले ही दान निकृष्ट हो अथवा उत्कृष्ट — किंतु कोई उसे न ध्यान रखते हुए दे, न आदरपूर्वक दे, न स्वयं के हाथों से दे, ऐसे दे जैसे फेंक रहा हो, जैसे कोई फ़ल नहीं मिलेगा — जब इस तरह किए दान का फ़ल मिलता है तो उसका चित्त — न उत्तम भोजन का लुत्फ़ उठा पाता है, न उत्तम वस्त्रों का लुत्फ़ उठा पाता है, न उत्तम सवारी का लुत्फ़ उठा पाता है, न ही उत्तम पञ्चकामसुख का लुत्फ़ उठा पाता है। उसके संतान,

[32] अट्ठकथानुसार अनाथपिंडक जो भोजनदान अनाथ एवं दरिद्र लोगों को देता था, यहाँ उसके बारे में कह रहा है। क्योंकि उसने भिक्षु एवं भिक्षुणी संघ को सदैव ही उत्तम दर्जे का भोजनदान दिया। किंतु संभव है कि ऐसा न हो। बल्कि वह दुर्भिक्ष या अन्य विपरीत स्थिति का समय रहा हो, जिसके चलते वह सभी को निम्न दर्जे का ही भोजन दे पाता हो।

पत्नी, दास-दासियां, नौकर, श्रमिक आदि न उसका ध्यान रखते हैं, न कान देकर सुनते हैं, न ही ह्रदयपूर्वक सेवा करते हैं। क्यों? क्योंकि ध्यान न रखते हुए किए पुण्यों का यही «विपाक» परिणाम होता है।

और गृहस्थ! भले ही दान निकृष्ट हो अथवा उत्कृष्ट — किंतु कोई उसे ध्यान रखते हुए दे, आदरपूर्वक दे, स्वयं के हाथों से दे, ऐसे दे जैसे फेंक न रहे हों, जैसे कोई सुखद फ़ल मिलेगा — जब इस तरह किए दान का फ़ल मिलता है तो उसका चित्त — उत्तम भोजन का लुत्फ़ उठा पाता है, उत्तम वस्त्रों का लुत्फ़ उठा पाता है, उत्तम सवारी का लुत्फ़ उठा पाता है, उत्तम पञ्चकामसुख का लुत्फ़ उठा पाता है। उसकी संतान, पत्नी, दास-दासियां, नौकर, श्रमिक आदि उसका ध्यान रखते हैं, कान देकर सुनते हैं, ह्रदयपूर्वक सेवा करते हैं। क्यों? क्योंकि ध्यान रखते हुए किए पुण्यों का यही परिणाम होता है।

एक समय की बात है, गृहस्थ! **वेलाम** नामक एक ब्राह्मण था। उसके द्वारा दी गई महादान दक्षिणा [यज्ञ] का स्वरूप इस तरह था — उसने ८४,००० **स्वर्णथालियां** — चांदी से भरी हुई, ८४,००० **चांदीथालियां** — स्वर्ण से भरी हुई, ८४,००० **तांबाथालियां** — रत्नों से भरी हुई दान कर दी! उसने ८४,००० स्वर्ण-अलंकृत **हाथी** — स्वर्ण पताका एवं स्वर्ण-रेशों के बुने जाल से आच्छादित कर दान कर दिए! उसने ८४,००० **रथ** — सिंहखाल से बिछे, बाघखाल से बिछे, तेंदुआखाल से बिछे, भगवा कंबलों से बिछे, स्वर्ण पताका एवं स्वर्ण-रेशों के बुने जाल से आच्छादित कर दान कर दिए! उसने ८४,००० **दुग्ध गाएँ** — उत्तम जूटरस्सी से बंधी, तांबे की दुग्ध बाल्टियों के साथ दान कर दिए! उसने ८४,००० **कुंवारिया** — रत्न झुमकों से अलंकृत कर दान कर दिए! उसने ८४,००० **आसन** [सोफ़ा] — लंबे ऊन से आच्छादित, सफ़ेद ऊन से आच्छादित, कढ़ाईकार्य [एँब्रॉयडरी] से आच्छादित, कदली मृगखाल के गलिचों के साथ प्रत्येक पर छत्र एवं दोनों ओर लाल तकिए रखकर दान कर दिए! उसने ८४,००० लंबाई के **वस्त्र** — सर्वोत्तम लिनन के, सर्वोत्तम कपास के, सर्वोत्तम ऊन के, सर्वोत्तम रेशम के दान कर दिए! अन्न पान, भोज्य खाद्य, लेप एवं बिस्तरों का कहना ही क्या! वे तो ऐसे बहें, जैसे नदियां हो!

अब, गृहस्थ! यदि तुम्हें लगे कि ‘वह वेलाम ब्राह्मण कोई और था, जिसने ऐसा महादान दक्षिणा दिया!’ तो ऐसा न देखा जाए। मैं ही उस समय वेलाम ब्राह्मण था! मैने ही ऐसा महादान दक्षिणा दिया था। किंतु उस दक्षिणा में कोई भी दक्षिणायोग्य न था। किसी ने वह महादान परिशुद्ध नहीं किया।

यदि कोई मात्र एक दृष्टिसंपन्न [श्रोतापन्न] व्यक्ति को भोज कराए, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया था!

यदि कोई मात्र एक सकृदागामी [एक बार लौटने वाले] व्यक्ति को भोज कराए, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही १०१ दृष्टिसंपन्न व्यक्ति को भोज कराना!

यदि कोई मात्र एक अनागामी [न लौटने वाले] व्यक्ति को भोज कराए, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही १०१ सकृदागामी व्यक्तियों को भोज कराना!

यदि कोई मात्र एक अर्हंत [विमुक्त] को भोज कराए, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही १०१ अनागामी व्यक्तियों को भोज कराना!

यदि कोई मात्र एक प्रत्येकबुद्ध को भोज कराए, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही १०१ अर्हंतों को भोज कराना!

यदि कोई 'तथागत अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध' को भोज कराए, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही १०१ प्रत्येकबुद्धों को भोज कराना!

यदि कोई 'बुद्ध नेतृत्व में भिक्षुसंघ' को भोज कराए, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही 'तथागत अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध' को भोज कराना!

यदि कोई चार दिशाओं से आते संघ को उद्देश्य कर **विहार** बनवाए, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही 'बुद्ध नेतृत्व में भिक्षुसंघ' को भोज कराना!

यदि कोई आस्था [आश्वस्त] चित्त से **बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण** जाए, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही चार दिशाओं से आते संघ को उद्देश्य कर विहार बनवाना!

यदि कोई आस्था चित्त से [पञ्चशील] **शिक्षापद** ग्रहण करे — जीवहत्या से विरत रहना, चुराने से विरत रहना, कामुक व्यभिचार से विरत रहना, झूठ बोलने से विरत

रहना, शराब, मद्य आदि मदहोश करने वाले नशेपते से विरत रहना — तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही आस्था चित्त से बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण जाना!

यदि कोई एक फूंक मारते क्षण के लिए भी **सद्भावना चित्त** विकसित करे, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही आस्था चित्त से शिक्षापद ग्रहण करना!

किंतु यदि कोई एक ऊंगली चटकाते क्षण के लिए भी **अनित्य नज़रिया** विकसित करे, तो वह उस महादान दक्षिणा से अधिक फ़लदायी होगा जो वेलाम ब्राह्मण ने दिया और साथ ही १०१ दृष्टिसंपन्न व्यक्तियों को भोज... और साथ ही १०१ सकृदागामी व्यक्तियों को भोज... और साथ ही १०१ अनागामी व्यक्तियों को भोज... और साथ ही १०१ अर्हंतों को भोज... और साथ ही १०१ प्रत्येकबुद्धों को भोज... और साथ ही तथागत अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध को भोज... और साथ ही बुद्ध नेतृत्व में भिक्षुसंघ को भोज... और साथ ही चार दिशाओं से आते संघ को उद्देश्य कर विहार... और साथ ही आस्था चित्त से बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण... और साथ ही आस्था चित्त से [पञ्चशील] शिक्षापद ग्रहण... और साथ ही एक फूंक मारते क्षण के लिए सद्भावना चित्त विकसित करना!”

«अंगुत्तरनिकाय ९:२० : वेलामसुत्त»

“बहुत समय पूर्व, भिक्षुओं! किसी कलाबाज़ ने बांस खड़ा किया और अपनी सहायक ‘मेदकथालीका’ को आमंत्रित किया: “आओ, प्रिय मेदकथालीके! बांस पर चढ़कर मेरे कन्धों पर खड़ी हो जाओ।”

“जैसे आप कहें, गुरुजी!” कहते हुए मेदकथालीका बांस पर चढ़कर उसके कन्धों पर खड़ी हो गई।

तब कलाबाज़ ने कहा: “प्रिय मेदकथालीके! अब तुम मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। इस तरह हम एक-दूसरे की रक्षा करते हुए, एक-दूसरे को बचाते हुए कलाबाज़ी दिखाएँगे, ईनाम प्राप्त करेंगे और बांस से सुरक्षित उतर आएँगे।”

तब मेदकथालीका ने कहा: “किंतु ऐसे से नहीं होगा, गुरुजी। मैं स्वयं की रक्षा करती हूँ। आप स्वयं की रक्षा करें। इस तरह हम आत्मरक्षा करते हुए, आत्मबचाव करते हुए कलाबाज़ी दिखाएँगे, ईनाम प्राप्त करेंगे और बांस से सुरक्षित उतर आएँगे।”

अब भिक्षुओं! जो उस मामले में मेदकथालीका ने कहा था, वही उपाय श्रेष्ठ था।

स्मृतिप्रस्थान की साधना [=स्मरणशीलता स्थापित करना] भी इसी विचार से होनी चाहिए, 'मैं आत्मरक्षा करूँगा।' स्मृतिप्रस्थान की साधना इसी विचार से होनी चाहिए, 'मैं पररक्षा करूँगा।' आत्मरक्षा करते हुए दूसरों को बचाते हैं, और पररक्षा करते हुए स्वयं को बचाते हैं।

आत्मरक्षा करते हुए दूसरों को कैसे बचाते हैं? **[धर्मस्वभाव के] पीछे पड़ने से, उसे विकसित करने से, बार-बार करने से** आत्मरक्षा करते हुए दूसरों को बचाते हैं।

और पररक्षा करते हुए स्वयं को कैसे बचाते है? **सहनशीलता से, अहिंसा से, सद्भाव चित्त से** पररक्षा करते हुए स्वयं को बचाते हैं।"

«संयुत्तनिकाय ४७:१९ : सेदकसुत्त»

"यदि कोई कहे 'जैसा कर्म करे, वैसा फ़ल भुगते!' तब ब्रह्मचर्यता निरर्थक हो जाए और दुःखों के सम्यक निरोध का कोई अवसर न मिले।

परंतु कोई कहे 'ऐसा-ऐसा कर्म करे, तो वैसा-वैसा परिणाम महसूस हो!' तब ब्रह्मचर्यता सार्थक हो जाए और दुःखों के सम्यक निरोध का अवसर भी मिले।

ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति का छोटा-सा पापकर्म उसे नर्क ले जाता है। और ऐसा भी होता है कि उसी तरह का पापकर्म, किसी अन्य व्यक्ति को इसी जीवन में मात्र क्षणभर के लिए महसूस होता है।

किस तरह के व्यक्ति का छोटा-सा पापकर्म उसे नर्क ले जाता है? ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति **काया में अविकसित** रहता है, **शील में अविकसित** रहता है, **चित्त में अविकसित** रहता है, तथा **अंतर्ज्ञान में अविकसित** रहता है — **संकीर्ण सोच, संकुचित हृदय वाला** व्यक्ति, जो **पीड़ित** रहता हो। इस तरह के व्यक्ति का छोटा-सा पापकर्म उसे नर्क ले जाता है।

और किस तरह के व्यक्ति का छोटा-सा पापकर्म उसे इसी जीवन में मात्र क्षणभर महसूस होता है? ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति **काया में विकसित** रहता है, **शील में विकसित** रहता है, **चित्त में विकसित** रहता है, तथा **अन्तर्ज्ञान में विकसित** रहता है — **खुले मन, उदार हृदय वाला** व्यक्ति, जो '**विस्तृत, विशाल, असीम मानस**' से रहता हो।

इस तरह के व्यक्ति का छोटा-सा पापकर्म उसे इसी जीवन में मात्र क्षणभर महसूस होता है।

• कल्पना करो कि कोई नमक का ढेला जल से भरे प्याले में डाल दे। तुम्हें क्या लगता है? क्या उस कारण प्याले का जल अत्याधिक नमकीन, पीने के अयोग्य होगा?"

"हाँ, भन्ते। नमक के ढेले से प्याले का अल्पजल अत्याधिक नमकीन, पीने के अयोग्य होगा।"

"कल्पना करो कि कोई नमक का ढेला गंगा नदी के जल में डाल दे। तुम्हें क्या लगता है? क्या उस कारण गंगा जल अत्याधिक नमकीन, पीने के अयोग्य होगा?"

"नहीं, भन्ते। गंगा नदी में अथाह जल है। नमक के ढेले से गंगा जल अत्याधिक नमकीन, पीने के अयोग्य नहीं होगा।"

"उसी तरह ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति का छोटा-सा पापकर्म उसे नर्क ले जाता है। और ऐसा भी होता है कि उसी तरह का पापकर्म, किसी अन्य व्यक्ति को इसी जीवन में मात्र क्षणभर के लिए महसूस होता है।

• ऐसा होता है कि किसी पुरुष को सौ कार्षापर्ण के लिए... एक कार्षापण के लिए... या मात्र अर्ध कार्षापण [चुराने] के लिए भी कारावास में डाल दिया जाता है। और ऐसा भी होता है कि किसी अन्य पुरुष को अर्ध... एक... या सौ कार्षापर्ण के लिए भी कारावास में नहीं डाला जाता है।

किस तरह के पुरुष को सौ कार्षापर्ण के लिए... एक कार्षापण के लिए... या मात्र अर्ध कार्षापण के लिए भी कारावास में डाल दिया जाता है? ऐसा होता है कि कोई पुरुष निर्धन, ग़रीब एवं अल्पसंपन्न होता है। इस तरह के पुरुष को सौ... एक... या मात्र अर्ध कार्षापर्ण के लिए भी कारावास में डाल दिया जाता है।

और किस तरह के पुरुष को अर्ध कार्षापण के लिए... एक कार्षापण के लिए... या सौ कार्षापर्ण के लिए भी कारावास में नहीं डाला जाता है? ऐसा होता है कि कोई पुरुष महाधनी, महासंपत्तिशाली एवं महाभोगसंपदा का स्वामी होता है। इस तरह के पुरुष को अर्ध... एक... या सौ कार्षापर्ण के लिए भी कारावास में नहीं डाला जाता है।

उसी तरह ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति का छोटा-सा पापकर्म उसे नर्क ले जाता है। और ऐसा भी होता है कि उसी तरह का पापकर्म, किसी अन्य व्यक्ति को इसी जीवन में मात्र क्षणभर के लिए महसूस होता है।

• जैसे कोई बकरी चोर पकड़े जाने पर कसाई को छूट होती है कि वह उसे पीटे, बांधे, काटे या जैसा चाहे करे। जबकि कोई अन्य बकरी चोर के पकड़े जाने पर कसाई को छूट नहीं होती है कि वह उसे पीटे, बांधे, काटे या जैसा चाहे करे।

किस तरह का बकरी चोर पकड़े जाने पर कसाई को छूट होती है? ऐसा होता है कि कोई पुरुष निर्धन, ग़रीब, अल्पसंपन्न होता है। इस तरह का बकरी चोर के पकड़े जाने पर कसाई को छूट होती है कि वह उसे पीटे, बांधे, काटे या जैसा चाहे करे।

और किस तरह का बकरी चोर पकड़े जाने पर कसाई को छूट नहीं होती? ऐसा होता है कि कोई पुरुष महाधनी, महासंपत्तिशाली एवं महाभोगसंपदा का स्वामी, राजा अथवा राजमंत्री होता है। इस तरह का बकरी चोर पकड़े जाने पर कसाई को छूट नहीं होती कि वह उसे पीटे, बांधे, काटे या जैसा चाहे करे। अधिकतम वह यही कर सकता है कि हृदय के आगे हाथ जोड़कर याचना करें: “साहब, कृपा कर मेरी बकरी या उसकी कीमत ही दे दीजिए!”

उसी तरह ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति का छोटा-सा पापकर्म उसे नर्क ले जाता है। और ऐसा भी होता है कि उसी तरह का पापकर्म, किसी अन्य व्यक्ति को इसी जीवन में मात्र क्षणभर के लिए महसूस होता है।

इस तरह जो व्यक्ति काया में अविकसित, शील में अविकसित, चित्त में अविकसित, तथा अंतर्ज्ञान में अविकसित रहता हो — संकीर्ण सोच, संकुचित हृदय वाला व्यक्ति, जो पीड़ित रहता हो, उसका छोटा-सा पापकर्म भी उसे नर्क ले जाता है।

और जो व्यक्ति काया में विकसित, शील में विकसित, चित्त में विकसित, अन्तर्ज्ञान में विकसित रहता हो — खुले मन, उदार हृदय वाला व्यक्ति, जो ‘विस्तृत, विशाल, असीम मानस’ से रहता हो, उसका छोटा-सा पापकर्म उसे इसी जीवन में मात्र क्षणभर महसूस होता है।

इसलिए, भिक्षुओं! यदि कोई कहे ‘जैसा कर्म करे, वैसा फ़ल भुगते!’ तब ब्रह्मचर्यता निरर्थक हो जाए और दुःखों के सम्यक निरोध का कोई अवसर न मिले।

परंतु कोई कहे 'ऐसा-ऐसा कर्म करे, तो वैसा-वैसा परिणाम महसूस हो!' तब ब्रह्मचर्यता सार्थक हो जाए और दुःखों के सम्यक निरोध का अवसर भी मिले।"

«अंगुत्तरनिकाय ३:१०१ : लोणकपल्लसुत्त»

"जो पुण्यक्रिया के तमाम आधार आपोआप [स्वर्ग में] उत्पन्न कराते हैं, वे '**सद्भावना द्वारा चेतोविमुक्ति**' के सोलहवें हिस्से के बराबर नहीं हैं। 'सद्भावना' «मेत्ता» तमाम पुण्यों से आगे बढ़कर अधिक चमकती है, उजाला करती है, चकाचौंध करती है।

जैसे तमाम टिमटिमाते तारों की चमक **चंद्रमा** की चमक के सोलहवें हिस्से के बराबर नहीं है। चंद्रमा टिमटिमाते तारों को फीका कर अधिक चमकता है, उजाला करता है, चकाचौंध करता है।...

जैसे वर्षा के अंतिम माह शरदऋतु में, जब आकाश खुला एवं मेघविहीन हो, तब अंधकार में डूबे आकाश को पीछे छोड़, उगता **सूरज** अधिक चमकता है, उजाला करता है, चकाचौंध करता है।...

जैसे भोर होने पूर्व के घोर अंधेरे में **ध्रुव** तारा अधिक चमकता है, उजाला करता है, चकाचौंध करता है। उसी तरह, जो पुण्यक्रिया के तमाम आधार आपोआप उत्पन्न कराते हैं, वे 'सद्भावना द्वारा चेतोविमुक्ति' के सोलहवें हिस्से के बराबर नहीं हैं। सद्भावना तमाम पुण्यों से आगे बढ़कर अधिक चमकती है, उजाला करती है, चकाचौंध करती है।

स्मरणशील हो कोई, असीम सद्भाव विकसित करें,
आसक्ति छूटते देख कर, बंधन टूटते जाएँ।
कोई अदूषित चित्त से, एक भी प्राणी प्रति,
सद्भाव जो रखें यदि, वह खूब कुशल होते जाएँ।
किंतु जो आर्य हो, वो तमाम प्राणियों के प्रति,
दया मानस रख के, अपार पुण्य करते जाएँ।
जीतकर इस पृथ्वी को, सत्वों से हो भरी हुई,
राजश्री यज्ञबलि, जो पूर्व चढ़ाते चले गए:
—अश्वमेध पुरुषमेध, जलक्रिया वाजपेय महापरिणामी!
किंतु ये भी न बराबर हो, सोलहवें हिस्से के,

किसी सामान्य सद्भाव-चित्त सुविकसित के आगे।
जैसे चंद्रप्रभा लगती हो, तमाम तारों के आगे।
इसलिए न हत्या करें, न करवाएँ,
न जीतें, न किसी को जितवाएँ,
सद्भाव रखें तमाम जीवों के प्रति,
बैर न रखें किसी के प्रति।"

«इतिवुत्तक २७ : सद्भावनाभावनासुत्त»

"जो सद्भावना द्वारा चेतोविमुक्ति विकसित करे, साधना करे, बार-बार करे, आगे बढ़ाए, आधार दे, स्थिर करे, मजबूत करे, भलीभांति धारण करे — उसे **ग्यारह लाभ** मिलना अपेक्षित हैं। कौन से ग्यारह?

वह सुख से सोता है। सुख से जागता है। पाप स्वप्न नहीं देखता है। मनुष्यों का प्रिय होता है। अ-मनुष्यों का प्रिय होता है। देवता रक्षण करते हैं। उसे न अग्नि, न विष, न शस्त्र मार पातें हैं। तुरंत चित्त समाहित होता है। चेहरे का रंग खिलता है। बेहोशी में मौत न होती। और यदि परमार्थ न भेद पाए, तब भी ब्रह्मलोक जाता है।"

«अंगुत्तरनिकाय ११:१५ : सद्भावनासुत्त»

## सद्भावना की साधना:

किसी ध्येयकुशल, 'सन्तपद' पाने के अभिलाषी साधक को यह करना चाहिए —

"सक्षम, सीधा एवं स्पष्टवादी हो। आज्ञाधारक और सौम्य रहें।
अहंकारी न हो। संतुष्ट एवं सहज पालनयोग्य रहें।
कम ज़िम्मेदारियाँ, कम रख-रखाव रखें।
शान्तइंद्रियों के साथ निपुण एवं विनम्र रहें।
[दायक] कुलपरिवारों के प्रति लालची न रहें।
कदापि ऐसा कृत्य न करें, जिसे देख बुद्धिमान लोग निंदा करें।
[मनोकामना करें:] 'सभी सत्व राहतपूर्ण एवं सुरक्षित होकर सुखी होएँ!
जो भी प्राणियों का अस्तित्व हो

— दुर्बल या बलवान, लंबे विशाल मध्यम छोटे सूक्ष्म या स्थूल, दृश्य या अदृश्य, समीप या दूर, जन्में या जन्म-संभावित —

सभी सत्व सुखी होएँ!

न कोई किसी से धोखाधड़ी करें, न कही किसी की घृणा करें!

न क्रोधित होकर या चिढ़कर किसी के प्रति दुःखकामना करें!'

जैसे कोई माता इकलौते संतान की रक्षा करती है — उसी तरह सभी सत्वों के प्रति 'असीम मानस' की साधना करें!

समस्त दुनिया के प्रति 'सद्भावनापूर्ण असीम मानस' की साधना करें!

— ऊपर, नीचे, सभी ओर

— बिना बाधा, बिना बैर, बिना दुर्भावना के

— खड़े, चलते, बैठते, लेटते

— जब तक आलस्य न छूटे

मात्र इसी नज़रिए पर अधिष्ठान बनाए रखने को

इसी जीवन में 'ब्रह्मविहार' करना कहते है।

ऐसा शीलवान — मिथ्यादृष्टि में न पड़ा, सम्यकदर्शन-संपन्न,

कामुकता हटाकर पुनः गर्भ में नहीं पड़ेगा।"

«खुद्दकपाठ ९ : मेत्तसुत्त»

**बड़ी संख्या में भिक्षुगण** भगवान के पास गए और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गए। उन्होंने एक-ओर बैठकर कहा:

"भन्ते! अभी श्रावस्ती में एक भिक्षु की सर्पदंश पश्चात मृत्यु हो गई।"

"तब भिक्षुओं, निश्चित ही उसने चार सर्पराजकुलों के प्रति सद्भाव चित्त नहीं फैलाया होगा। क्योंकि यदि उसने चार सर्पराजकुलों के प्रति सद्भाव चित्त फैलाया होता, तो सर्पदंश होने पर मृत्यु न होती। कौन से चार सर्पराजकुल हैं?

- विरूपक्ष सर्पराजकुल,
- ऐरापथ सर्पराजकुल,
- छब्यापुत्र सर्पराजकुल,

- कान्हा गोतम सर्पराजकुल।

मैं अनुमति देता हूँ, भिक्षुओं! आत्मकवच, आत्मसुरक्षा, आत्मबचाव के लिए चार सर्पराजकुलों के प्रति सद्भाव चित्त फैलाएँ —

विरूपक्षों के प्रति मैं सद्भावना करूँ, सद्भावना करूँ मैं ऐरापथों के प्रति।
छब्यापुत्रों के प्रति मैं सद्भावना करूँ, सद्भावना करूँ मैं कान्हा गोतमों के प्रति।
बेपैर [जीवों] के प्रति मैं सद्भावना करूँ, सद्भावना करूँ मैं दुपैरों के प्रति।
चतुपैरों के प्रति मैं सद्भावना करूँ, सद्भावना करूँ मैं बहुपैरों के प्रति।
बेपैर मेरे प्रति न हिंसा करें, मेरे प्रति हिंसा न करें दुपैर।
चतुपैर मेरे प्रति न हिंसा करें, मेरे प्रति हिंसा न करें बहुपैर।
सभी सत्व, सभी प्राणी, सभी जीव, हर कोई —
मात्र भलाई देखें। पाप से किंचित भी समागम न करें।
बुद्ध असीम है! धर्म असीम है! संघ असीम है!
किंतु रेंगते जीव सीमित होते हैं — सांप, बिच्छू, गोजर,
मकड़ियां, छिपकलियां, चूहें।
स्वयं को मैने संरक्षित किया। मैने स्वयं पर कवच बांध लिया।
चले जाएँ सभी जीव!
मैं नमन करूँ भगवान को।
नमन है सातों सम्यक-सम्बुद्ध को!”

«अंगुत्तरनिकाय ४:६७ : अहिराजसुत्त»

“ऐसा होता है कि कोई आर्यश्रावक लालसा छोड़, दुर्भावना छोड़, भ्रम छोड़, सचेत एवं स्मरणशील होकर **सद्भाव चित्त... करुण चित्त... प्रसन्न चित्त... तटस्थ चित्त** को एक-दिशा में फैलाकर व्याप्त करता है। उसी तरह दूसरी-दिशा में... तीसरी-दिशा में... चौथी-दिशा में... ऊपर... नीचे... तत्र सर्वत्र... संपूर्ण ब्रह्मांड में निर्बैर निर्द्वेष, विस्तृत विराट असीम चित्त फैलाकर परिपूर्णतः व्याप्त करता है।

जैसे कोई बलवान पुरुष ज़ोरदार **शंखनाद** कर सरलतापूर्वक सभी दिशाओं को सूचित करें। उसी तरह भिक्षु **सद्भावना चेतोविमुक्ति... करुणा चेतोविमुक्ति...**

**प्रसन्नता चेतोविमुक्ति... तटस्थता चेतोविमुक्ति** की साधना करें, बार-बार करें तो सीमित पापकर्म टिक नहीं पाते हैं, रह नहीं पाते हैं।

तब उसे पता चलता है, 'पूर्व मेरा चित्त सीमित एवं अविकसित था। किंतु अब वह असीम एवं सुविकसित है। जो कर्म सीमित अवस्था में हुए थे, अब वे न रहेंगे, न शेष बचेंगे।'

तुम्हें क्या लगता है, भिक्षुओं? यदि कोई युवक बचपन से ही सद्भावना... करुणा... प्रसन्नता... तटस्थता चेतोविमुक्ति सुविकसित करे, तो क्या वह पाप करेगा?"

"नहीं, भन्ते!"

"पाप न करने से क्या वह दुःख छुएगा?"

"नहीं, भन्ते! पाप न करे, तो भला वह दुःख कैसे छुएगा?"

"इसलिए भिक्षुओं! चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष — सद्भावना... करुणा... प्रसन्नता...तटस्थता द्वारा चेतोविमुक्ति सुविकसित करनी चाहिए। न कोई स्त्री, न ही कोई पुरुष अपनी इस काया को [मरणोपरांत] साथ ले जा सकते है। मर्त्य [नाशवान] का चित्तान्तर होता है, भिक्षुओं। उसे पता चलता है, 'कर्म से उपजे इस काया ने जो भी पाप किए है, सभी इसी जीवन में महसूस होंगे, पश्चात नहीं।' इस तरह जिस अंतर्ज्ञानी भिक्षु की सर्वोपरि विमुक्ति न हुई हो, उसे सुविकसित सद्भावना... करुणा... प्रसन्नता... तटस्थता द्वारा चेत्तोविमुक्ति 'अनागामिता' की ओर ले जाती है।"

«संयुत्तनिकाय ४२:८ : सङखधमसुत्त + अंगुत्तरनिकाय १०:२१९ : करजकायसुत्त »

"जब ऐसा हो कि कोई कहे, "भले ही मैने **सद्भावना** द्वारा चेतोविमुक्ति को विकसित किया, रत रहा, आधार बनाया, स्थिर किया, दृढ़ किया, भलीभांति अनुसरण किया — तब भी **दुर्भावना** मेरे चित्त पर हावी हो जाती है।" तब उसे कहना चाहिए, "ऐसा मत कहो। तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। भगवान का मिथ्यावर्णन न करो। भगवान का मिथ्यावर्णन करना अच्छा नहीं है। चूंकि भगवान ऐसा नहीं कहेंगे। ऐसा असंभव है! ऐसा नहीं हो सकता कि जब कोई सद्भावना द्वारा चेतोविमुक्ति को विकसित करे, रत रहे, आधार बनाए, स्थिर करे, दृढ़ करे, भलीभांति अनुसरण करे — तब भी दुर्भावना उसके चित्त पर हावी हो जाएँ।"

या जब ऐसा हो कि कोई कहे, "भले ही मैने **करुणा** द्वारा... **प्रसन्नता** द्वारा... **तटस्थता** द्वारा चेतोविमुक्ति को विकसित किया, रत रहा, आधार बनाया, स्थिर किया, दृढ़ किया, भलीभांति अनुसरण किया — तब भी **हिंसा... नाराजी** [या कुढ़ना]... **दिलचस्पी** मेरे चित्त पर हावी हो जाती है।" तब उसे कहना चाहिए, "ऐसा मत कहो। तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। भगवान का मिथ्यावर्णन न करो। भगवान का मिथ्यावर्णन करना अच्छा नहीं है। चूंकि भगवान ऐसा नहीं कहेंगे। ऐसा असंभव है! ऐसा हो नहीं सकता कि जब कोई करुणा द्वारा... प्रसन्नता द्वारा... तटस्थता द्वारा चेतोविमुक्ति को विकसित करे, रत रहे, आधार बनाए, स्थिर करे, दृढ़ करे, भलीभांति अनुसरण करे — तब भी हिंसा... नाराजी... दिलचस्पी उसके चित्त पर हावी हो जाएँ।"

«अंगुत्तरनिकाय ६:१३ : निस्सारणीयसुत्त»

"ऐसा होता है कि कोई व्यक्ती दुनिया के प्रति लालसा छोड़, दुर्भावना छोड़, भ्रम छोड़, सचेत एवं स्मरणशील होकर **सद्भाव चित्त** को एक-दिशा में फैलाकर व्याप्त करता है। उसी तरह दूसरी-दिशा में... तीसरी-दिशा में... चौथी-दिशा में... ऊपर... नीचे... तत्र सर्वत्र... संपूर्ण ब्रह्मांड में निर्बैर निर्द्वेष, विस्तृत विराट असीम सद्भाव चित्त फैलाकर परिपूर्णतः व्याप्त करता है।

तब वह उसका खूब स्वाद उठाता है, उसके प्रति तड़पता है, उसी में तृप्त होता है। और वह उसी अवस्था में जमे रहने पर, विहार करने पर, च्यूत न होने पर मरणोपरांत **ब्रह्मपरिषद** [=महाब्रह्म के दरबारी] देवलोक में उत्पन्न होता है। ब्रह्मपरिषद देवलोक की आयु एक कल्प होती है। वहाँ रहता धर्म न सुना आम व्यक्ति दिव्य-आयु के व्यय हो जाने पर नर्क, पशुयोनि या भूखे प्रेतलोक में गिर जाता है।

किंतु भगवान का श्रावक दिव्य-आयु के व्यय होने पर उसी अवस्था में परिनिर्वृत होता है। यही अंतर है, भिक्षुओं! यही भेद है! यही विशिष्टता है धर्म न सुने आम व्यक्ति और धर्म सुने आर्यश्रावक के बीच में, जब [मरणोपरांत] गति एवं पुनःउत्पत्ति होती है।

या ऐसा होता है कि कोई व्यक्ती... **करुण चित्त** को... फैलाकर परिपूर्णतः व्याप्त करता है। तब वह उसका खूब स्वाद उठाता है... और मरणोपरांत **आभाश्वर** [आभा-किरणों से दमकते] देवलोक में उत्पन्न होता है। आभाश्वर देवलोक की आयु दो कल्प होती है...

या ऐसा होता है कि कोई व्यक्ती... **प्रसन्न चित्त** को... फैलाकर परिपूर्णतः व्याप्त करता है। तब वह उसका खूब स्वाद उठाता है... और मरणोपरांत **शुभकिन्ह** [सुंदर कृष्णलोक] देवलोक में उत्पन्न होता है। शुभकिन्ह देवलोक की आयु चार कल्प होती है...

या ऐसा होता है कि कोई व्यक्ती... **तटस्थ चित्त को...** फैलाकर परिपूर्णतः व्याप्त करता है। तब वह उसका खूब स्वाद उठाता है... और मरणोपरांत **वेहफ़्फ़ल** [आसमां के फ़ल] देवलोक में उत्पन्न होता है। वेहफ़्फ़ल देवलोक की आयु पाँच सौ कल्प होती है। वहाँ रहता धर्म न सुना आम व्यक्ति दिव्य-आयु के व्यय हो जाने पर नर्क, पशुयोनि या भूखे प्रेतलोक में गिर जाता है।

किंतु भगवान का श्रावक दिव्य-आयु के व्यय होने पर उसी अवस्था में परिनिर्वृत होता है। यही अंतर है, भिक्षुओं! यही भेद है! यही विशिष्टता है धर्म न सुने आम व्यक्ति और धर्म सुने आर्यश्रावक के बीच में, जब गति एवं पुनःउत्पत्ति होती है।"

«अंगुत्तरनिकाय ४:१२५ : पठमसद्धावनासुत्त»

## मुक्ति की ओर

**गृहस्थ अनाथपिंडक**, पाँच सौ उपासकों के साथ भगवान के पास गया, और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। भगवान ने कहा:

"गृहस्थों! आप ने भिक्षुसंघ को चीवर, भोजन, आवास एवं रोग के लिए औषधि-भैषज्य दिए हैं। किंतु इतने पर आप संतुष्ट न रहें कि 'हम ने भिक्षुसंघ को चीवर, भोजन, आवास एवं रोग के लिए औषधि-भैषज्य दिए हैं।' बल्कि गृहस्थों, आप को सीखना चाहिए कि 'कैसे हम समय-समय पर 'निर्लिप्त एकांतवास की प्रफुल्लता' में प्रवेश पाकर रह सकते हैं?' इस तरह आप को सीखना चाहिए!"

जब ऐसा कहा गया, तो भन्ते सारिपुत्र कह पड़े, "आश्चर्य है, भगवान! अद्भुत है! भगवान ने कितना अच्छा कहा! जब कोई आर्यश्रावक 'निर्लिप्त एकांतवास की प्रफुल्लता' में प्रवेश पाकर रहता है, तब उसमे पाँच गुण उपस्थित नहीं रहते हैं —

- कामुकता से जुड़ा बदनदर्द एवं मनोव्यथा नहीं होती।
- कामुकता से जुड़ा कायासुख एवं मनोहर्ष नहीं होता।
- अकुशलता से जुड़ा बदनदर्द एवं मनोव्यथा नहीं होती।
- अकुशलता से जुड़ा कायासुख एवं मनोहर्ष नहीं होता।

• तथा कुशलता से जुड़ा बदनदर्द एवं मनोव्यथा नहीं होती।"

"साधु साधु, सारिपुत्र! सच है कि जब कोई आर्यश्रावक निर्लिप्त एकांतवास की प्रफुल्लता में प्रवेश पाकर रहता है, तो उस समय उसमे पाँच गुण उपस्थित नहीं होते हैं — कामुकता से जुड़ा बदनदर्द एवं मनोव्यथा, कामुकता से जुड़ा कायासुख एवं मनोहर्ष, अकुशलता से जुड़ा बदनदर्द एवं मनोव्यथा, अकुशलता से जुड़ा कायासुख एवं मनोहर्ष, कुशलता से जुड़ा बदनदर्द एवं मनोव्यथा।"

«अंगुत्तरनिकाय ५:१७६ : पीतिसुत्त»

"होशियार एवं स्मरणशील को **असीम समाधि**[33] विकसित करनी चाहिए। जब कोई होशियार एवं स्मरणशील 'असीम समाधि' विकसित करे, तो उसे पाँच ज्ञान उत्पन्न होते हैं। कौन से पाँच?

• 'यह समाधि वर्तमान में सुखदायक है, तथा भविष्य में सुखद फ़ल देगी।'

• 'यह समाधि आर्य है, निरामिष [=भौतिक स्थिति से परे] है।'

• 'यह समाधि नीच लोगों के लिए नहीं है।'

• 'यह शांतिमय एवं सर्वोत्कृष्ट समाधि — प्रशान्ति अर्जित कराती है, एक-भाव प्राप्त कराती है, जबरन संयमपूर्ण रचना से नहीं बनी रहती है।'

• 'इस समाधि में स्मरणशील होकर प्रवेश पाता हूँ, तथा स्मरणशील होकर ही उठता हूँ।'

— जब कोई होशियार एवं स्मरणशील 'असीम समाधि' विकसित करे, तो उसे यह पाँच ज्ञान उत्पन्न होते हैं।"

«अंगुत्तरनिकाय ५:२७ : समाधिसुत्त»

**कोई भिक्षु** भगवान के पास गया और पहुँचकर अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। उसने एक-ओर बैठकर कहा,

"भन्ते! अच्छा होगा जो भगवान मुझे संक्षिप्त में धर्म सिखाएँ। ताकि भगवान से धर्म सुनकर मैं निर्लिप्त एकांतवास में फिक्रमंद, सचेत एवं दृढ़निश्चयी होकर रहूँ।"

---

[33] असीम अथवा अप्रमाण समाधि, अर्थात् (सद्भावना, करुणा, प्रसन्नता एवं तटस्थता) ब्रह्मविहार की असीम भावना कर, उसके आधार पर चित्तसमाधि लगाना।

“तब, भिक्षु! तुम्हें इस तरह सीखना चाहिए — ‘मेरा चित्त भीतर स्थापित रहेगा, भीतर ही जमे रहेगा। जो कभी पाप, अकुशल स्वभाव उत्पन्न हो, तो चित्त को जकड़े नहीं रहेगा।’

तब तुम्हें सीखना चाहिए — ‘**सद्भावना द्वारा चेत्तोविमुक्ति** को विकसित करूँगा, रत रहूँगा, आधार बनाऊँगा, स्थिर करूँगा, दृढ़ करूँगा, भलीभांति अनुसरण करूँगा!’ जब इस तरह यह समाधि विकसित करोगे, तब उसे —

- «सवितक्कं सविचारं» सोच के साथ एवं विचार के साथ विकसित करना चाहिए।
- «अवितक्कं विचारमत्तं» बिना सोच एवं थोड़ी मात्रा में विचार के साथ विकसित करना चाहिए।
- «अवितक्कं अविचारं» बिना सोच एवं बिना विचार के विकसित करना चाहिए।
- «सप्पीति» प्रफुल्लता के साथ विकसित करना चाहिए।
- «निप्पीति» बिना प्रफुल्लता के विकसित करना चाहिए।
- «सातसहगतं» सुख के साथ विकसित करना चाहिए।
- «उपेक्खासहगतं» तटस्थता के साथ विकसित करना चाहिए।

जब इस तरह यह समाधि विकसित हो जाएँ, सुविकसित हो जाएँ, तब तुम्हें सीखना चाहिए — ‘**करुणा द्वारा चेत्तोविमुक्ति... प्रसन्नता द्वारा चेतोविमुक्ति... तटस्थता द्वारा चेतोविमुक्ति** को विकसित करूँगा, रत रहूँगा, आधार बनाऊँगा, स्थिर करूँगा, दृढ़ करूँगा, भलीभांति अनुसरण करूँगा!’ जब इस तरह यह समाधि विकसित करोगे, तब उसे — सोच के साथ एवं विचार के साथ... बिना सोच एवं थोड़ी मात्रा में विचार के साथ... बिना सोच एवं बिना विचार के... प्रफुल्लता के साथ... बिना प्रफुल्लता के... सुख के साथ... तटस्थता के साथ विकसित करना चाहिए।

जब इस तरह यह समाधि विकसित हो जाएँ, सुविकसित हो जाएँ, तब तुम्हें सीखना चाहिए — ‘मैं **काया को काया देखते हुए** रहूँगा — तत्पर सचेत एवं स्मरणशील, दुनिया के प्रति लालसा एवं नाराज़ी हटाते हुए। जब इस तरह यह समाधि विकसित करोगे, तब उसे — सोच के साथ एवं विचार के साथ... बिना सोच एवं थोड़ी मात्रा में विचार के साथ... बिना सोच एवं बिना विचार के... प्रफुल्लता के साथ... बिना प्रफुल्लता के... सुख के साथ... तटस्थता के साथ विकसित करना चाहिए।

जब इस तरह यह समाधि विकसित हो जाएँ, सुविकसित हो जाएँ, तब तुम्हें सीखना चाहिए — 'मैं **संवेदना को संवेदना देखते हुए** रहूँगा — तत्पर सचेत एवं स्मरणशील, दुनिया के प्रति लालसा एवं नाराज़ी हटाते हुए... **चित्त को चित्त देखते हुए** रहूँगा — तत्पर सचेत एवं स्मरणशील, दुनिया के प्रति लालसा एवं नाराज़ी हटाते हुए... **स्वभाव को स्वभाव देखते हुए** रहूँगा — तत्पर सचेत एवं स्मरणशील, दुनिया के प्रति लालसा एवं नाराज़ी हटाते हुए। जब इस तरह यह समाधि विकसित करोगे, तब उसे — सोच के साथ एवं विचार के साथ... बिना सोच एवं थोड़ी मात्रा में विचार के साथ... बिना सोच एवं बिना विचार के... प्रफुल्लता के साथ... बिना प्रफुल्लता के... सुख के साथ... तटस्थता के साथ विकसित करना चाहिए।

जब इस तरह यह समाधि विकसित हो जाएँ, सुविकसित हो जाएँ, तब तुम जहाँ जाओगे, चैन से जाओगे। जहाँ बैठोगे, चैन से बैठोगे। जहाँ लेटोगे, चैन से लेटोगे।"

वह भिक्षु भगवान से देशना पाकर आसन से उठकर भगवान को अभिवादन किया, और भगवान को दाएँ रख प्रदक्षिणा कर चला गया। तब वह निर्लिप्त एकांतवास में फिक्रमंद, सचेत एवं दृढ़निश्चयी होकर रहते हुए ब्रह्मचर्य की सर्वोच्च मंज़िल पर पहुँच कर स्थित हुआ, जिसके लिए वाकई कुलपुत्र घर से बेघर होकर प्रवज्यित होते हैं। उसने स्वयं जाना और साक्षात्कार किया। उसे पता चला — 'जन्म समाप्त हुए! ब्रह्मचर्य परिपूर्ण हुआ! काम पूरा हुआ! अभी यहाँ करने के लिए कुछ बचा नहीं!' और इस तरह वह भिक्षु अर्हंतों में एक हुआ।

«अंगुत्तरनिकाय ८:६३ : संखित्तसुत्त»

"• ऐसा होता है कि कोई भिक्षु किसी शान्त चेतोविमुक्ति में प्रवेश पाकर रहता है, तब वह **तादात्म्य निरोध** पर गौर करता है। किंतु तब उसका चित्त न उछलता है, न आश्वस्त होता है, न स्थिर होता है, न ही स्थापित होता है। उसके लिए तादात्म्य भाव का अन्त होना अपेक्षित नहीं है।

जैसे कोई गोंद से सने हाथ से टहनी पकड़े, तो उसका हाथ वही चिपकता, जकड़ता, जम जाता है। उसी तरह यदि किसी भिक्षु द्वारा 'तादात्म्य निरोध' पर गौर करने पर उसका चित्त न उछले, न आश्वस्त हो, न स्थिर हो, न ही स्थापित हो, तो उसके लिए तादात्म्य भाव का अन्त होना अपेक्षित नहीं है।

और ऐसा होता है कि कोई अन्य भिक्षु किसी शान्त चेतोविमुक्ति में प्रवेश पाकर रहता है, तब वह 'तादात्म्य निरोध' पर गौर करता है। और उसका चित्त उछलता है, आश्वस्त होता है, स्थिर होता है, स्थापित हो जाता है। उसके लिए तादात्म्य भाव का अन्त होना अपेक्षित है।

जैसे कोई स्वच्छ हाथ से टहनी पकड़े, तो उसका हाथ वही न चिपकता, न जकड़ता, न जम जाता है। उसी तरह यदि किसी भिक्षु द्वारा तादात्म्य निरोध पर गौर करने पर उसका चित्त उछले, आश्वस्त हो, स्थिर हो, स्थापित हो, तो उसके लिए तादात्म्य भाव का अन्त होना अपेक्षित है।

• तथा ऐसा होता है कि कोई भिक्षु किसी शान्त चेतोविमुक्ति में प्रवेश पाकर रहता है, तब वह **अविद्या भेदन** पर गौर करता है। किंतु तब उसका चित्त न उछलता है, न आश्वस्त होता है, न स्थिर होता है, न ही स्थापित होता है। उसके लिए अविद्या भेदन होना अपेक्षित नहीं है।

जैसे कोई जलाशय मैला हो, अनेक वर्षों से सड़ता हुआ। तब कोई पुरुष आकर भीतर आता जलप्रवाह रोक दे, तथा बाहर निकलता जलप्रवाह खोल दे, और मेघदेवता अच्छी वर्षा न कराएँ। तब मैले जलाशय का तट भेदन [ओवरफ्लो] होना अपेक्षित नहीं है। उसी तरह यदि किसी भिक्षु द्वारा 'अविद्या भेदन' पर गौर करने पर उसका चित्त न उछले, न आश्वस्त हो, न स्थिर हो, न ही स्थापित हो, तो उसके लिए अविद्या भेदन होना अपेक्षित नहीं है।

और ऐसा होता है कि कोई भिक्षु किसी शान्त चेतोविमुक्ति में प्रवेश पाकर रहता है, वह 'अविद्या भेदन' पर गौर करता है। और तब उसका चित्त उछलता है, आश्वस्त होता है, स्थिर होता है, स्थापित हो जाता है। उसके लिए अविद्या भेदना अपेक्षित है।

जैसे कोई जलाशय मैला हो, अनेक वर्षों से सड़ता हुआ। तब कोई पुरुष आकर भीतर आता जलप्रवाह खोल दे, बाहर निकलता जलप्रवाह रोक दे, और मेघदेवता भी अच्छी वर्षा कराएँ। तब मैले जलाशय का तट भेदन होना अपेक्षित है। उसी तरह यदि कोई भिक्षु 'अविद्या भेदन' पर गौर करने पर उसका चित्त उछले, आश्वस्त हो, स्थिर हो, स्थापित हो, तो उसके लिए अविद्या भेदना अपेक्षित है।"

«अंगुत्तरनिकाय ४:१७८ : जम्बालीसुत्त»

एक व्यक्ती दुनिया के प्रति लालसा छोड़, दुर्भावना छोड़, भ्रम छोड़, सचेत एवं स्मरणशील होकर **सद्भाव चित्त... करुण चित्त... प्रसन्न चित्त... तटस्थ चित्त** को एक-दिशा में फैलाकर व्याप्त करता है। उसी तरह दूसरी-दिशा में... तीसरी-दिशा में... चौथी-दिशा में... ऊपर... नीचे... तत्र सर्वत्र... संपूर्ण ब्रह्मांड में निर्बैर निर्द्वेष, विस्तृत विराट असीम चित्त फैलाकर परिपूर्णतः व्याप्त करता है।

तब वह रूप, संवेदना, नजरिया, रचना एवं चैतन्यता [पाँच आधार-संग्रह] से जुड़े सभी स्वभावों पर योग्य तरह से गौर करता है कि "वे अनित्य है, कष्टपूर्ण है, रोग है, फोड़ा है, तीर है, पीड़ादायक है, मुसीबत है, पराये है, भंग होते है, शून्य है, अनात्म है!" तब वह मरणोपरांत 'शुद्धवास ब्रह्मलोक' में उत्पन्न होता है। यह जन्म सामान्यजन के लिए नहीं है। [मात्र आर्य अनागामि व्यक्ति के लिए है।]

या तब उसे समीक्षा करने पर पता चलता है — 'यह सद्भावना चेत्तोविमुक्ति... करुणा चेत्तोविमुक्ति... प्रसन्नता चेत्तोविमुक्ति... तटस्थता चेत्तोविमुक्ति **चेतनापूर्ण रची** गई है। अब जो चेतनापूर्ण रचित हो, वह अनित्य-स्वभाव की है, निरोध-स्वभाव की है।' तब उसका चित्त वही रुके बहाव थमने «आसवक्खय» तक पहुँचता है। यदि न भी पहुँचे, तो उसका 'धर्म दिलचस्पी, धर्म हर्ष' के चलते निचले पाँच-संयोजन टूटने से वहाँ प्रकट होना अपेक्षित है, जहाँ से पुनः न लौटकर वही परिनिर्वृत होते हैं। [=शुद्धवास ब्रह्मलोक]"

«अंगुत्तरनिकाय ४:१२६ : दुतियसद्भावनासुत्त + मज्झिमनिकाय ५२ : अट्ठकनागरसुत्त»

★ ★ ★

अध्याय आठ

# अपार पुण्य

**भगवान** ने कहा:

"**अपार पुण्य**, अपार कुशलता, सुख आहार चार होते हैं। कौन से चार?

• ऐसा होता है कि किसी आर्यश्रावक को **बुद्ध पर अटूट आस्था** होती है कि 'वाकई भगवान ही अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध है — विद्या एवं आचरण में संपन्न, परम मंजिल पा चुके, दुनिया के जानकार, दमनयोग्य पुरुष के सर्वोपरि सारथी, देवता एवं मानव के गुरु, पवित्र बोधिप्राप्त!' यह प्रथम अपार पुण्य, अपार कुशलता, सुख आहार है।

• आगे, उसे **धर्म पर अटूट आस्था** होती है कि 'वाकई भगवान का धर्म — स्पष्ट बताया है, तुरंत दिखता है, सर्वकालिक है, आजमाने योग्य है, प्रासंगिक है, समझदार द्वारा स्वानुभूति योग्य!' यह द्वितीय अपार पुण्य, अपार कुशलता, सुख आहार है।

• आगे, उसे **संघ पर अटूट आस्था** होती है कि 'वाकई भगवान का श्रावकसंघ सुमार्ग पर चलता है, सीधे मार्ग पर चलता है, व्यवस्थित मार्ग पर चलता है, उचित मार्ग पर चलता है। चार जोड़ी में, आठ तरह के आर्यजन — यही भगवान का श्रावकसंघ है — उपहार देने योग्य, अतिथि बनाने योग्य, दक्षिणा देने योग्य, प्रणाम करने योग्य, दुनिया के लिए सर्वोपरि पुण्यक्षेत्र!' यह तृतीय अपार पुण्य, अपार कुशलता, सुख आहार है।

• आगे, वह **आर्यपसंद शील से संपन्न** होता है — जो अखंडित रहें, अछिद्रित रहें, बेदाग रहें, बेधब्बा रहें, निष्कलंक रहें, विद्वानों द्वारा प्रशंसित हो, छुटकारा दिलाते हो, और समाधि की ओर बढ़ाते हो। यह चतुर्थ अपार पुण्य, अपार कुशलता, सुख आहार है।

[अथवा चतुर्थ अपार पुण्य अगले सूत्रानुसार इस तरह है:]

• आगे, वह घर रहते हुए **दानी** होता है — कंजूसी के मल से छूटा, साफ़ चित्त का, मुक्त त्यागी, खुले हृदय का, उदारता में रत होता, याचनाओं का पूर्णकर्ता, दान-संविभाग में रत रहता है। यह चतुर्थ अपार पुण्य, अपार कुशलता, सुख आहार है।

[अथवा चतुर्थ अपार पुण्य अगले सूत्रानुसार इस तरह है:]

• आगे, उसमे **अंतर्ज्ञान** होता है — आर्य, भेदक, उदय-व्यय पता करने योग्य, दुःखों का सम्यक अन्तकर्ता! यह चतुर्थ अपार पुण्य, अपार कुशलता, सुख आहार है।"

"जैसे समुद्र का जल मापना सरल नहीं है कि — 'यह जल मात्र इतनी बाल्टियां हैं, या इतनी सैकड़ों बाल्टियां हैं, या इतनी हज़ार बाल्टियां हैं, या इतनी लाख बाल्टियां हैं।' बल्कि ऐसे समझा जाता है कि यह समुद्र का महाजलसंग्रह 'अथाह, असीम' है!

उसी तरह जब कोई चार 'अपार पुण्य, अपार कुशलता' से संपन्न हो, तो उसका पुण्य मापना सरल नहीं है कि 'यह मात्र इतना अपार पुण्य, अपार कुशल, सुख आहार, स्वर्ग ले जाता, स्वर्गिक खुशी में पकता, प्रिय मनचाहा सुखद मोहक एवं लाभकारी होगा।' उसे बस ऐसे समझे कि यह अपार पुण्य का महाढ़ेर 'अथाह, असीम' है!"

"जब कोई भलीभांति धर्म सुना आर्यश्रावक चार अपार पुण्य से संपन्न हो, तो उसे मौत आने पर अगले जीवन को लेकर न आतंक होता है, न घबराहट होती है, न ही भय लगता है।"

«संयुत्तनिकाय ५५ : ३१, ३२, ३३, ४१, २७ : पुञ्ञाभिसन्दवग्गो»

तब भगवान ने गृहस्थ उपालि को **धर्म अनुक्रम** से बताया — [प्रथम] दान की बात.. [फिर] शील की बात.. [फिर] स्वर्ग की बात.. [और फिर] कामुकता के दुष्परिणाम, पतन एवं दूषितता बताकर, [तब] 'संन्यास के लाभ' प्रकाशित किए।

और जब भगवान ने देखा कि गृहस्थ उपालि का चित्त तैयार, मृदु, बिना व्यवधान का, उल्लासित एवं आश्वस्त हुआ, तब उन्होंने **बुद्धविशेष धर्मदेशना** उजागर की — दुःख, उत्पत्ति, निरोध, मार्ग [=चार आर्यसत्य]।

जैसे कोई स्वच्छ, दागरहित वस्त्र भली प्रकार रंग पकड़ता है, उसी तरह गृहस्थ उपालि को उसी आसन पर बैठे हुए धूलरहित, निर्मल **धर्मचक्षु** उत्पन्न हुए — 'जो उत्पत्ति-स्वभाव का है, सब निरोध-स्वभाव का है!'

तब धर्म देख चुका, धर्म पा चुका, धर्म जान चुका, धर्म में गहरे उतर चुका गृहस्थ उपालि, संदेह लांघकर, परे चला गया। तब उसे कोई सवाल न बचे। उसे निडरता प्राप्त हुई। तथा वह शास्ता के शासन में स्वावलंबी हुआ [=श्रोतापति लक्षण]।

«मज्झिमनिकाय ५६ : उपालिसुत्त»

**लिच्छवियों के प्रधानमंत्री नन्दक** से भगवान ने कहा:

"नन्दक! यदि कोई आर्यश्रावक 'चार अपार पुण्य' से संपन्न हो, तो वह श्रोतापन्न है, धर्म में स्थापित है, दुर्गतिलोक में नहीं पड़ता है, सम्बोधी की ओर बढ़ता है।

आगे, यदि कोई आर्यश्रावक 'चार अपार पुण्य' से संपन्न हो, तो वह दिव्य अथवा मानवीय **दीर्घायु** होता है। वह दिव्य अथवा मानवीय **सौंदर्यवान** होता है। वह दिव्य अथवा मानवीय **सुखपूर्वक** होता है। वह दिव्य अथवा मानवीय **प्रतिष्ठा-संपन्न** होता है। वह दिव्य अथवा मानवीय **ऐश्वर्यशाली** होता है।

नन्दक, मैं यह किसी अन्य श्रमण या ब्राह्मण से सुनकर नहीं बता रहा हूँ। बल्कि जो मुझे स्वयं ज्ञात हुआ, दिखा तथा साक्षात्कार हुआ, वह बता रहा हूँ।"

तब अचानक किसी ने लिच्छवियों के प्रधानमंत्री नन्दक से कहा:

"श्रीमान! यह आप के स्नान का समय है।"

"मैं कहता हूँ, बहुत हुआ बाहरी स्नान! मैं भीतरी स्नान से संतुष्ट हुआ — भगवान पर अटूट आस्था से!"

«संयुत्तनिकाय ५५:३० : नन्दकलिच्छविसुत्त»

**सारिपुत्र भन्ते** भगवान के पास गए और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गए। भगवान ने कहा:

"सारिपुत्र, 'श्रोतापतिअंग श्रोतापतिअंग' कहते हैं। यह **श्रोतापतिअंग** क्या है?"

"भन्ते, श्रोतापतिअंग चार होते हैं —

- «सप्पुरिससंसेव» सत्पुरुष से संगति,
- «सद्धम्मस्सवन» सद्धर्म सुनना,
- «योनिसोमनसिकार» उचित बात [आर्यसत्यों] पर गौर करना,

• «धम्मानुधम्मप्पटिपत्ति» धर्मानुसार ही धर्म पर चलना।”

“साधु साधु, सारिपुत्र! सच हैं! श्रोतापतिअंग चार होते हैं — सत्पुरुष से संगति, सद्धर्म सुनना, उचित बात पर गौर करना, तथा धर्मानुसार ही धर्म पर चलना।

और, सारिपुत्र! ‘श्रोत श्रोत’ कहते हैं। यह **श्रोत** क्या है?”

“भन्ते, ‘आर्य अष्टांगिक मार्ग’ ही श्रोत है। अर्थात् सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवचन, सम्यककार्य, सम्यकजीविका, सम्यकमेहनत, सम्यकस्मृति, सम्यकसमाधि।”

“साधु साधु, सारिपुत्र! सच है! आर्य अष्टांगिक मार्ग ही श्रोत है। अर्थात् सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवचन, सम्यककार्य, सम्यकजीविका, सम्यकमेहनत, सम्यकस्मृति, सम्यकसमाधि।

और, सारिपुत्र! ‘श्रोतापन्न श्रोतापन्न’ कहते हैं। यह **श्रोतापन्न** क्या है?”

“भन्ते! जब कोई आयुष्मान, किसी भी कुल एवं गोत्र का, ‘आर्य अष्टांगिक मार्ग’ से संपन्न हो तो उसे श्रोतापन्न कहते हैं।”

“साधु साधु, सारिपुत्र! सच है! जब कोई आयुष्मान, किसी भी कुल एवं गोत्र का, ‘आर्य अष्टांगिक मार्ग’ से संपन्न हो तो उसे श्रोतापन्न कहते हैं।”

«संयुत्तनिकाय ५५:५ : दुतियसारिपुत्तसुत्त»

**आर्य अष्टांगिक मार्ग:**

“**सम्यकदृष्टि** क्या है?

- दुःख का ज्ञान,
- दुःख की उत्पत्ति का ज्ञान,
- दुःख के निरोध का ज्ञान,
- दुःख के निरोधकर्ता प्रगतिपथ का ज्ञान।

**सम्यकसंकल्प** क्या है?

- संन्यास का संकल्प,
- दुर्भावनाविहीन संकल्प,
- अहिंसा का संकल्प।

**सम्यकवचन** क्या है?

- असत्य वचन से विरत रहना,
- फूट डालने वाले वचन से विरत रहना,
- कटु वचन से विरत रहना,
- निरर्थक वचन से विरत रहना।

**सम्यककार्य** क्या है?

- जीवहत्या से विरत रहना,
- चुराने से विरत रहना,
- अब्रह्मचर्य [=कामुक-स्वभाव] से विरत रहना।

**सम्यकजीविका** क्या है?

कोई आर्यश्रावक मिथ्या-जीविका त्यागता है, और सम्यक जीविका[34] से जीवन यापन करता है।

**सम्यकमेहनत** क्या है?

• अनुत्पन्न पाप अकुशल स्वभाव आगे न उत्पन्न हो, उसके लिए भिक्षु चाह पैदा करता है, मेहनत करता है, ज़ोर लगाता है, इरादा बनाकर जुटता है।

• उत्पन्न पाप अकुशल स्वभाव को छोड़ने के लिए भिक्षु चाह पैदा करता है, मेहनत करता है, ज़ोर लगाता है, इरादा बनाकर जुटता है।

• अनुत्पन्न कुशल स्वभाव को उत्पन्न करने के लिए भिक्षु चाह पैदा करता है, मेहनत करता है, ज़ोर लगाता है, इरादा बनाकर जुटता है।

• और उत्पन्न कुशल स्वभाव को टिकाए रखने, आगे लाने, वृद्धि करने, प्रचुरता लाने, विकसित कर परिपूर्ण करने के लिए भिक्षु चाह पैदा करता है, मेहनत करता है, ज़ोर लगाता है, इरादा बनाकर जुटता है।

---

[34] ऐसी जीविका, जिससे किसी का किसी भी तरह से अहित न हो। भगवान कहते हैं, "उपासक ने पाँच तरह के व्यापार नहीं करने चाहिए। कौन से पाँच? शस्त्र व्यापार, सत्व व्यापार [अर्थात्, जीवित मानव या पशु की ख़रीद-बिक्री], मांस व्यापार, मद्य व्यापार, और विष व्यापार।" «अंगुत्तरनिकाय ५:१७७ : वणिज्जासुत्तं»

**सम्यकस्मृति** क्या है?

• कोई **काया** को [मात्र] काया देखते हुए रहता है — तत्पर सचेत एवं स्मरणशील, दुनिया के प्रति लालसा एवं नाराज़ी हटाते हुए।

• **संवेदना** को [मात्र] संवेदना देखते हुए रहता है — तत्पर सचेत एवं स्मरणशील, दुनिया के प्रति लालसा एवं नाराज़ी हटाते हुए।

• **चित्त** को [मात्र] चित्त देखते हुए रहता है — तत्पर सचेत एवं स्मरणशील, दुनिया के प्रति लालसा एवं नाराज़ी हटाते हुए।

• **स्वभाव** को [मात्र] स्वभाव देखते हुए रहता है — तत्पर सचेत एवं स्मरणशील, दुनिया के प्रति लालसा एवं नाराज़ी हटाते हुए।

**सम्यकसमाधि** क्या है?

• कोई आर्यश्रावक त्याग का आलंबन बनाकर समाधि लगाता है और चित्त एकाग्र करता है। वह काम स्वभाव से निर्लिप्त हो, अकुशल स्वभाव से निर्लिप्त हो, सोच एवं विचार के साथ निर्लिप्तता से जन्मी प्रफुल्लता एवं सुख वाले **प्रथम-झान** में प्रवेश पाकर रहता है।

• आगे सोच एवं विचार रुक जाने पर भीतर आश्वस्त हुआ मानस एकरस होता है। तब वह बिना-सोच बिना-विचार के साथ समाधि से जन्मे प्रफुल्लता एवं सुख वाले **द्वितीय-झान** में प्रवेश पाकर रहता है।

• आगे वह प्रफुल्लता से विरक्ति लेकर स्मरणशीलता व सचेतता के साथ तटस्थता धारण कर शरीर से सुख महसूस करता है। जिसे आर्यजन 'तटस्थ स्मरणशील सुखविहारी' कहते है, वह ऐसे **तृतीय-झान** में प्रवेश पाकर रहता है।

• आगे सुख एवं दर्द हटाकर, हर्ष एवं नाराजी पूर्व विलुप्त होने से, अब वह तटस्थता एवं स्मरणशीलता की परिशुद्धि के साथ नसुख-नदर्द वाले **चतुर्थ-झान** में प्रवेश पाकर रहता है।"

«संयुत्तनिकाय ४५:८ : विभङ्गसुत्त»

“ऐसा होता है, ब्राह्मण! जो सद्धर्म को लेकर निश्चितता पर पहुँच जाता है, उसे न संदेह होता है, न उलझन। यदि उसे कोई गंभीर रोग भी हो जाए, तो उसे लगता है — “मुझे न संदेह है, न उलझन! मैं सद्धर्म को लेकर निश्चितता पर पहुँच चुका हूँ।” तब वह न अफ़सोस करता है, न ढ़ीला पड़ता है, न मातम करता है, न छाती पीटता है, न ही बावला हो जाता है। यह भी एक व्यक्ति है, जो मरण-धर्म से घिरा होकर भी मृत्यु से न भयभीत होता है, न आतंकित।”

«अंगुत्तरनिकाय ४:१८४ : अभयसुत्त»

भगवान ने अँगूठे की नाखून पर धूल उठाते हुए कहा:

“क्या लगता है भिक्षुओं! क्या यह नाखून की धूल अधिक है अथवा विशाल पृथ्वी?”

“विशाल पृथ्वी बहुत अधिक है, भगवान! भगवान के नाखून की धूल कुछ भी नहीं है। उसे गिना भी न जाएगा। कोई तुलना ही नहीं, बेहद कम है। विशाल पृथ्वी से तुलना करें तो भगवान के नाखून की धूल एक अंश भी नहीं है!”

“उसी तरह भिक्षुओं! जो दृष्टिसंपन्न [=श्रोतापन्न] व्यक्ति भली प्रकार धर्म समझ जाए, उसकी अत्याधिक दुःख एवं पीड़ा खत्म हुई, समाप्त हुई। और जो बच गई, जो उसे अधिक से अधिक सात जन्मों में मिलेगी — वह कुछ भी नहीं है। उसे गिना भी न जाएगा। कोई तुलना ही नहीं, बेहद कम है। पूर्व दुःख के ढ़ेर से तुलना करे, तो बचा दुःख एवं पीड़ा एक अंश भी नहीं है!

इतना विशाल पुरस्कार मिलता है, भिक्षुओं, जिसे धर्म भली प्रकार समझ जाए! इतना महान पुरस्कार मिलता है, जिसे धर्मचक्षु प्राप्त हो!”

«संयुत्तनिकाय १३:१ : नखसिखासुत्त»

“भिक्षुओं! भले ही कोई **चक्रवर्ती सम्राट** हो — जो चारों दिशाओं में ऐश्वर्यपूर्ण आधिपत्य भोगने के पश्चात मरणोपरांत सद्गति होकर तैतीस देवताओं के स्वर्ग में उपजता हो। जहाँ नन्दनवन में रहते हुए, वह अप्सराओं से घिरे रहे और दिव्य पञ्चकामसुख का खूब लुत्फ़ उठाए। किंतु वह ‘चार अपार पुण्य’ धर्म से असंपन्न होने

के कारण न पशुयोनी [की संभावना] से छूटा होता है, न भूखे प्रेतलोक से छूटा होता है, न ही यातनालोक नर्क से छूटा होता है।

दूसरी ओर, कोई **आर्यश्रावक** हो — जो भिक्षा में मिले टुकड़ों पर जीवन यापन करता हो, चिथड़े-सिला चीवर ओढ़ता हो। किंतु वह 'चार अपार पुण्य' धर्म से संपन्न होने के कारण पशुयोनी से छूटा होता है, भूखे प्रेतलोक से छूटा होता है, और यातनालोक नर्क से भी छूटा होता है।

भिक्षुओं! यदि दोनो में तुलना करे, तो 'चार दिशाएँ पाना' 'चार धर्म पाने' के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं हैं।"

«संयुत्तनिकाय ५५:१ : चक्कवत्तिराजसुत्त»

**पथब्या एकरज्जेन, सग्गस्स गमनेन वा**
**सब्बलोकाधिपच्चेन, सोतापत्तिफ़लं वरं।**

पृथ्वी पर एकछत्र-राज्य, पश्चात स्वर्ग जाकर समस्त विश्वों पर आधिपत्य!
उससे भी बेहतर है श्रोतापतिफ़ल!

«धम्मपद लोकवग्गो १७८»

★ ★ ★

अध्याय नौ

# मरण

**महानाम शाक्य** [भगवान का चचेरा भाई] भगवान के पास गया, और अभिवादन कर एक-ओर गया। उसने बैठकर कहा:

“भन्ते! मैने सुना है कि ‘बहुत से भिक्षु भगवान के लिए चीवर सिलने में व्यस्त हैं। वर्षावास के तीन माह समाप्त होने के पश्चात, चीवर सिलकर तैयार होने के साथ ही भगवान भ्रमण पर निकल पड़ेंगे।’ किंतु मैने अब तक भगवान के समक्ष यह नहीं सुना, यह नहीं सीखा कि कोई प्रज्ञावान उपासक, किसी बीमार, गंभीर रोग से पीड़ित प्रज्ञावान उपासक को कैसे उपदेश करे?”

“महानाम! प्रज्ञावान उपासक को चाहिए कि वह किसी बीमार, गंभीर रोग से पीड़ित प्रज्ञावान उपासक को **चार आश्वासन** दें —

• ‘आश्वस्त रहो मित्र, जो तुम्हें **बुद्ध पर अटूट आस्था** है कि — ‘वाकई भगवान अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध है — विद्या एवं आचरण में संपन्न, परम मंजिल पा चुके, दुनिया के जानकार, दमनयोग्य पुरुष के सर्वोपरि सारथी, देवता एवं मानव के गुरु, पवित्र बोधिप्राप्त!’

• ‘आश्वस्त रहो मित्र, जो तुम्हें **धर्म पर अटूट आस्था** है कि वाकई — ‘भगवान का धर्म — स्पष्ट बताया है, तुरंत दिखता है, सर्वकालिक है, आजमाने योग्य है, प्रासंगिक है, समझदार द्वारा स्वानुभूति योग्य!’

• ‘आश्वस्त रहो मित्र, जो तुम्हें **संघ पर अटूट आस्था** है कि वाकई — ‘भगवान का श्रावकसंघ सुमार्ग पर चलता है, सीधे मार्ग पर चलता है, व्यवस्थित मार्ग पर चलता है, उचित मार्ग पर चलता है। चार जोड़ी में, आठ तरह के आर्यजन — यही भगवान का

श्रावकसंघ है — उपहार देने योग्य, अतिथि बनाने योग्य, दक्षिणा देने योग्य, प्रणाम करने योग्य, दुनिया के लिए सर्वोपरि पुण्यक्षेत्र!'

• 'आश्वस्त रहो मित्र, जो तुम्हारे **आर्यपसंद शील** हैं — 'अखंडित हैं, अछिद्रित हैं, बेदाग हैं, बेधब्बा हैं, निष्कलंक हैं, विद्वानों द्वारा प्रशंसित हैं, छुटकारा दिलाते हैं, समाधि की ओर बढ़ाते हैं।'

महानाम! यह चार आश्वासन देने के पश्चात प्रज्ञावान उपासक को चाहिए कि वह उस बीमार, गंभीर रोग से पीड़ित प्रज्ञावान उपासक को पूछें, "मित्र! क्या तुम अपने **माता-पिता** के लिए चिंतित हो?"

यदि वह कहे, 'हाँ, मैं अपने माता-पिता के लिए चिंतित हूँ!' तो उससे कहना चाहिए, "मेरे प्रिय मित्र, तुम मरण-स्वभाव के हो! जो तुम अपने माता-पिता के लिए चिंतित रहोगे, तब भी मरोगे। जो तुम अपने माता-पिता के लिए चिंतित नहीं रहोगे, तब भी मरोगे। अच्छा होगा जो तुम अपने माता-पिता की चिंता छोड़ दो!"

यदि वह कहे, 'मैने माता-पिता की चिंता छोड़ दी है!' तो पूछना चाहिए, "मित्र, क्या तुम अपनी **पत्नी एवं संतान** के लिए चिंतित हो?"

यदि वह कहे, 'हाँ, मैं अपनी पत्नी एवं संतान के लिए चिंतित हूँ!' तो उससे कहना चाहिए, "मेरे प्रिय मित्र, तुम मरण-स्वभाव के हो! जो तुम अपने पत्नी एवं संतान के लिए चिंतित रहोगे, तब भी मरोगे। जो तुम अपने पत्नी एवं संतान के लिए चिंतित नहीं रहोगे, तब भी मरोगे। अच्छा होगा जो तुम अपने पत्नी एवं संतान की चिंता छोड़ दो!"

यदि वह कहे, 'मैने पत्नी एवं संतान की चिंता छोड़ दी है!' तो पूछना चाहिए, "मित्र, क्या तुम **मानवीय पञ्चकामसुख** के लिए चिंतित हो?"

यदि वह कहे, 'हाँ, मैं मानवीय पञ्चकामसुख के लिए चिंतित हूँ!' तो उससे कहना चाहिए, "मेरे प्रिय मित्र, मानवीय कामसुख के बजाए **दिव्य** कामसुख अधिक उत्तम, अधिक उत्कृष्ट होते हैं। अच्छा होगा जो अपने चित्त को मानवीय कामसुख से उठाकर चार महाराज देवताओं पर टिका दो!"

यदि वह कहे, 'हाँ, मेरा चित्त मानवीय कामसुख से उठकर चार महाराज देवताओं पर टिक गया है!' तो उससे कहना चाहिए, "मेरे प्रिय मित्र, चार महाराज देवताओं के

बजाए **तैतीस देवता** अधिक उत्तम, अधिक उत्कृष्ट होते हैं। अच्छा होगा जो अपने चित्त को चार महाराज देवताओं से उठाकर तैतीस देवताओं पर टिका दो!"

यदि वह कहे, 'हाँ, मेरा चित्त चार महाराज देवताओं से उठकर तैतीस देवताओं पर टिक गया है!' तो उससे कहना चाहिए, "मेरे प्रिय मित्र, तैतीस देवताओं के बजाए **याम देवता... तुषित देवता... निर्माणरति देवता... परनिर्मित वशवर्ती देवता... ब्रह्मलोक** अधिक उत्तम, अधिक उत्कृष्ट होते हैं। अच्छा होगा जो अपने चित्त को तैतीस देवताओं से उठाकर, याम देवता... तुषित देवता... निर्माणरति देवता... परनिर्मित वशवर्ती देवता... ब्रह्मलोक पर टिका दो!"

यदि वह कहे, 'हाँ, मेरा चित्त परनिर्मित वशवर्ती देवताओं से उठकर ब्रह्मलोक पर टिक गया है!' तो उससे कहना चाहिए, "मेरे प्रिय मित्र, ब्रह्मलोक भी अनित्य होता है! सदा बना नहीं रहता! तादात्म्य में ही सम्मिलित रहता है। अच्छा होगा जो अब चित्त को ब्रह्मलोक से उठाकर **तादात्म्य निरोध** करा दो!"

यदि वह कहे, 'मेरा चित्त ब्रह्मलोक से उठकर तादात्म्य निरोध हो गया है!' तब, महानाम, मैं कहता हूँ कि उस बहावमुक्त उपासक के विमुक्तचित्त में तथा किसी भिक्षु के विमुक्तचित्त में कोई अंतर नहीं रहा!"

«संयुत्तनिकाय ५५:५४ : गिलानसुत्त»

**ब्राह्मण धनञ्जानि** कुछ समय पश्चात बीमार पड़ा, गंभीर रोग से पीड़ित। [...तब उसने एक पुरुष भेजा।] उस पुरुष ने विहार जाकर भगवान के चरणों पर शीर्ष रख नमन करते हुए कहा, "भन्ते, ब्राह्मण धनञ्जानि बीमार पड़ा है, गंभीर रोग से पीड़ित। वह भगवान के चरणों पर शीर्ष रख नमन करता है।" तब, वह उठकर भन्ते सारिपुत्र के पास गया, और उनके चरणों पर शीर्ष रख नमन करते हुए कहा, "भन्ते, ब्राह्मण धनञ्जानि बीमार पड़ा है, गंभीर रोग से पीड़ित। वह आपके चरणों पर शीर्ष रख नमन करता है। अच्छा होगा भन्ते, जो सारिपुत्र भन्ते ब्राह्मण धनञ्जानि पर अनुकम्पा करते हुए उसके निवास आएँ।" भन्ते सारिपुत्र ने मौन स्वीकृति दी।

तब भन्ते सारिपुत्र चीवर ओढ़, पात्र और संघाटी लेकर, उसके निवास में गए। और बिछे आसन पर बैठते हुए, उन्होंने ब्राह्मण धनञ्जानि से कहा, "आशा करता हूँ ब्राह्मण, तुम ठीक होंगे! राहत से होंगे! आशा करता हूँ, तुम्हारी पीड़ा शान्त होगी, बढ़ नहीं रही होगी। पीड़ा का शान्त होना दिखाई दे रहा होगा, बढ़ना नहीं।"

“सारिपुत्र गुरुजी, मैं ठीक नहीं हूँ! राहत से नहीं हूँ। मेरी पीड़ा बढ़ रही है, शान्त नहीं हो रही। पीड़ा बढ़ते जाना ही दिखाई दे रहा हैं, शान्त होना नहीं। जैसे कोई बलवान पुरुष तेज़ तलवार से मेरा सिर काटकर खोल रहा हो, ऐसी उग्र वात मेरा सिर काट रही है।... जैसे कोई बलवान पुरुष चमड़े के रूखे पट्टे से मेरा सिर कसते जा रहा हो, ऐसी उग्र यातनाएँ मेरे सिर में हो रही हैं।... जैसे कोई निपुण कसाई तेज़ कसाईशस्त्र से गाय का पेट काटकर अलग कर रहा हो, ऐसी उग्र वात मेरा पेट काट रही है।... जैसे दो बलवान पुरुष किसी दुर्बल की बाहें दबोच कर, उसे घसीटते हुए धधकते अंगारों से भरे गड्ढे में डालकर भूनने लगें, ऐसी उग्र जलन मेरी काया में सर्वत्र हो रही है। मैं ठीक नहीं हूँ, गुरुजी! राहत से नहीं हूँ। मेरी पीड़ा बढ़ रही है, शान्त नहीं हो रही। पीड़ा बढ़ते जाना ही दिखाई दे रहा हैं, शान्त होना नहीं।”

“क्या लगता है तुम्हें, धनञ्जानि? क्या श्रेष्ठ है — नर्क अथवा पशुयोनी?”

“पशुयोनी, गुरुजी!”

“और क्या श्रेष्ठ है — पशुयोनी अथवा प्रेतलोक?”

“प्रेतलोक, गुरुजी!”

“और क्या श्रेष्ठ है — प्रेतलोक अथवा मनुष्यलोक?”

“मनुष्यलोक, गुरुजी!”

“और क्या श्रेष्ठ है — मनुष्यलोक अथवा चार महाराजा देवताओं का स्वर्गलोक?”

“चार महाराजा देवताओं का स्वर्गलोक, गुरुजी!”

“और क्या श्रेष्ठ है — चार महाराजा देवताओं का स्वर्गलोक अथवा तैतीस देवताओं का स्वर्गलोक?”

“तैतीस देवताओं का स्वर्गलोक, गुरुजी!”

“और क्या श्रेष्ठ है — तैतीस देवताओं का स्वर्गलोक अथवा याम देवताओं का स्वर्गलोक?”

“याम देवताओं का स्वर्गलोक, गुरुजी!”

“और क्या श्रेष्ठ है — याम देवताओं का स्वर्गलोक अथवा तुषित देवताओं का स्वर्गलोक?”

“तुषित देवताओं का स्वर्गलोक, गुरुजी!”

“और क्या श्रेष्ठ है — तुषित देवताओं का स्वर्गलोक अथवा निर्माणरति देवताओं का स्वर्गलोक?”

“निर्माणरति देवताओं का स्वर्गलोक, गुरुजी!”

“और क्या श्रेष्ठ है — निर्माणरति देवताओं का स्वर्गलोक अथवा परनिर्मित वशवर्ती देवताओं का स्वर्गलोक?”

“परनिर्मित वशवर्ती देवताओं का स्वर्गलोक, गुरुजी!”

“और क्या श्रेष्ठ है — परनिर्मित वशवर्ती देवताओं का स्वर्गलोक अथवा ब्रह्मलोक?”

“सारिपुत्र गुरुजी ने ‘ब्रह्मलोक’ कहा!! सारिपुत्र गुरुजी ने ‘ब्रह्मलोक’ कहा!!”

तब सारिपुत्र भन्ते ने सोचा, “यह ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोक के प्रति अधिमुख होते [झुकते] हैं। चलो, क्यों न मैं ब्राह्मण धनञ्जानि को ब्रह्मलोक में संवास करने का ही मार्ग बताऊँ?” तब उन्होंने कहा, “अच्छा धनञ्जानि! मैं तुम्हें ब्रह्मलोक में संवास करने का मार्ग बताता हूँ। ध्यान देकर गौर से सुनो।”

“हाँ, गुरुजी!”

“ब्रह्मलोक में संवास करने का मार्ग क्या है? ऐसा होता है, धनञ्जानि! कोई आर्यश्रावक **सद्भाव चित्त... करुण चित्त... प्रसन्न चित्त... तटस्थ चित्त** को एक-दिशा में फैलाकर व्याप्त करता है। उसी तरह दूसरी-दिशा में... तीसरी-दिशा में... चौथी-दिशा में... ऊपर... नीचे... तत्र सर्वत्र... संपूर्ण ब्रह्मांड में निर्बैर निर्द्वेष, विस्तृत विराट असीम चित्त फैलाकर परिपूर्णतः व्याप्त करता है। यही ब्रह्मलोक में संवास करने का मार्ग है।”

“तब सारिपुत्र गुरुजी, मेरे नाम से भगवान के चरणों पर शीर्ष रख नमन करते हुए कहिएगा, “भन्ते, ब्राह्मण धनञ्जानि बीमार है, गंभीर रोग से पीड़ित। वह आपके चरणों पर शीर्ष रख नमन करता है।”

तब सारिपुत्र भन्ते ने ब्राह्मण धनञ्जानि को हीन ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित कर आसन से उठकर चले गए, जबकि अभी और किया जाना शेष था। सारिपुत्र भन्ते जाने के तुरंत पश्चात ब्राह्मण धनञ्जानि की मौत हुई और वह ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

तब भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया, “भिक्षुओं! सारिपुत्र ने ब्राह्मण धनञ्जानि को हीन ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित कर आसन से उठकर चला गया, जबकि अभी और किया जाना शेष था।”

तब सारिपुत्र भन्ते विहार में लौटकर, भगवान के चरणों पर शीर्ष रख नमन करते हुए कहा, “भन्ते, ब्राह्मण धनञ्जानि बीमार है, गंभीर रोग से पीड़ित। वह भगवान के चरणों पर शीर्ष रख नमन करता है।”

“सारिपुत्र, तुमने ब्राह्मण धनञ्जानि को हीन ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित कर आसन से उठकर क्यों चले गए, जबकि अभी और किया जाना शेष था?”

“भन्ते! मैने सोचा, “यह ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोक के प्रति अधिमुख होते हैं। चलो, क्यों न मैं ब्राह्मण धनञ्जानि को ब्रह्मलोक में संवास करने का ही मार्ग बताऊँ?”

“सारिपुत्र! ब्राह्मण धनञ्जानि मर चुका है और ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ है।”

«मज्झिमनिकाय ९७ : धनञ्जानिसुत्त»

**गृहस्थ चित्त** उस समय बीमार था, गंभीर रोग से ग्रस्त। तब बड़ी संख्या में उद्यानदेवता, वनदेवता, वृक्षदेवता तथा औषधिनुमा तृण वनस्पति में रहने वाले देवतागण इकट्ठा हुए, और उससे कहा, “निश्चय करो, गृहस्थ! मैं भविष्य में चक्रवर्ती सम्राट बनूं!”

जब ऐसा कहा गया, तब गृहस्थ चित्त ने कहा, “किंतु, वह भी तो अनित्य है! वह भी तो बने नहीं रहता! उसे भी तो छोड़कर जाना ही पड़ता है!”

जब ऐसा कहा गया, तब गृहस्थ चित्त के मित्र-सहचारी, रिश्तेदार-संबन्धियों ने कहा, “स्मरणशीलता स्थिर करिए, स्वामी! बड़बड़ाए नहीं!”

“मैने ऐसा क्या कहा, जो आप मुझे स्मरणशीलता स्थिर करने, न बड़बड़ाने के लिए चेता रहे हैं?”

“आपने अभी ऐसा कहा: ‘किंतु, वह भी तो अनित्य है! वह भी तो बने नहीं रहता! उसे भी तो छोड़कर जाना ही पड़ता है!’”

“वह तो इसलिए कहा, क्योंकि यहाँ बड़ी संख्या में उद्यानदेवता, वनदेवता, वृक्षदेवता तथा औषधिनुमा तृण वनस्पति में रहने वाले देवतागण इकट्ठा हुए हैं, और उन्होंने मुझसे कहा, ‘निश्चय करो, गृहस्थ! मैं भविष्य में चक्रवर्ती सम्राट बनूं!’ उस पर

मैने कहा: 'किंतु, वह भी तो अनित्य है! वह भी तो बने नहीं रहता! उसे भी तो छोड़कर जाना ही पड़ता है!'"

"स्वामी! वे उद्यानदेवता, वनदेवता, वृक्षदेवता तथा औषधिनुमा तृण वनस्पति में रहने वाले देवतागण कौन सा पुख़्ता कारण देखकर कहते हैं: 'निश्चय करो, गृहस्थ! मैं भविष्य में चक्रवर्ती सम्राट बनूं!'"

"उन्हें लगता हैं कि यह गृहस्थ चित्त शीलवान, कल्याणकारी, धार्मिक व्यक्ति है। यदि इसने मरते हुए [कुछ भी] निश्चय किया तो शीलवान, कल्याणकारी, धार्मिक होने से, उसकी मनोकामना विशुद्ध होने से धर्मानुसार उसे वह फ़ल मिलते देखा जा सकता हैं।"

"स्वामी! तब हमें भी कुछ निर्देश दें!"

"तब तुम्हें सीखना चाहिए कि हम **बुद्ध पर अटूट आस्था** से संपन्न रहेंगे कि 'वाकई भगवान अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध है — विद्या एवं आचरण में संपन्न, परम मंजिल पा चुके, दुनिया के जानकार, दमनयोग्य पुरुष के सर्वोपरि सारथी, देवता एवं मानव के गुरु, पवित्र बोधिप्राप्त!'

हम **धर्म पर अटूट आस्था** से संपन्न रहेंगे कि वाकई 'भगवान का धर्म — स्पष्ट बताया है, तुरंत दिखता है, सर्वकालिक है, आजमाने योग्य है, प्रासंगिक है, समझदार द्वारा स्वानुभूति योग्य!'

हम **संघ पर अटूट आस्था** से संपन्न रहेंगे कि वाकई 'भगवान का श्रावकसंघ सुमार्ग पर चलता है, सीधे मार्ग पर चलता है, व्यवस्थित मार्ग पर चलता है, उचित मार्ग पर चलता है। चार जोड़ी में, आठ तरह के आर्यजन — यही भगवान का श्रावकसंघ है — उपहार देने योग्य, अतिथि बनाने योग्य, दक्षिणा देने योग्य, प्रणाम करने योग्य, दुनिया के लिए सर्वोपरि पुण्यक्षेत्र!'

'जो कुछ दानयोग्य कुलपरिवार में हो, उसे हम खुले हृदय से शीलवान, कल्याणकारी व्यक्ति को बांटेंगे।' — ऐसा तुम्हें सीखना चाहिए।"

तब गृहस्थ चित्त अपने मित्र-सहचारियों, रिश्तेदार-संबन्धियों को बुद्ध, धर्म एवं संघ के प्रति आस्था में, और त्याग [दानशीलता] में प्रेरित करते हुए चल बसा।

«संयुत्तनिकाय ४१:१० : गिलानदस्सनसुत्त»

**गृहस्थ नकुलपिता** उस समय बीमार, गंभीर रोग से पीड़ित था। तब नकुलमाता ने उससे कहा, “मरते हुए चिंतित न हो, गृहपति! चिंतित के लिए मौत पीड़ादायक होती है। भगवान ने चिंतित होकर मरने की आलोचना की है।

जो आपको लगता हो कि ‘मेरे जाने के पश्चात नकुलमाता संतानों को पाल नहीं पाएगी, या घरगृहस्थी चला नहीं पाएगी’ — तो आपको ऐसा नहीं देखना चाहिए। मैं सूत कातने में, उलझे ऊन की सफाई-धुनाई करने में निपुण हूँ। आपके जाने के पश्चात मैं संतानों को पाल सकती हूँ, घरगृहस्थी चला सकती हूँ। इसलिए गृहपति, मरते हुए चिंतित न हो! चिंतित के लिए मौत पीड़ादायक होती है। भगवान ने चिंतित होकर मरने की आलोचना की है।

जो आपको लगता हो कि ‘मेरे जाने के पश्चात नकुलमाता दूसरे पति के घर चली जाएगी’ — तो आपको ऐसा नहीं देखना चाहिए। आप जानते है और मैं भी कि कैसे पिछले सोलह वर्षों से मैने ‘गृहस्थी ब्रह्मचर्य’ [=वफ़ादारी] का एक जैसे पालन किया है। इसलिए गृहपति, मरते हुए चिंतित न हो! चिंतित के लिए मौत पीड़ादायक होती है। भगवान ने चिंतित होकर मरने की आलोचना की है।

जो आपको लगता हो कि ‘मेरे जाने के पश्चात नकुलमाता को भगवान से जाकर मिलने की, अथवा भिक्षुसंघ से जाकर मिलने की कोई इच्छा नहीं रह जाएगी’ — तो आपको ऐसा नहीं देखना चाहिए। आपके जाने के पश्चात मुझे भगवान से जाकर मिलने की, अथवा भिक्षुसंघ से जाकर मिलने की इच्छा अधिक होगी। इसलिए गृहपति, मरते हुए चिंतित न हो! चिंतित के लिए मौत पीड़ादायक होती है। भगवान ने चिंतित होकर मरने की आलोचना की है।

जो आपको लगता हो कि ‘मेरे जाने के पश्चात नकुलमाता शील परिपूर्ण नहीं करेगी’ — तो आपको ऐसा नहीं देखना चाहिए। जहाँ तक भगवान की ऐसी श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ उपासिकाएँ हैं, जो शील परिपूर्ण करती हैं, मैं उनमें एक हूँ! जो किसी को शंका या संदेह हो, जाकर भगवान अर्हंत सम्यकसम्बुद्ध से पूछे, जो इस समय भग्गों के साथ भेसकला मृगवन में रह रहे हैं। इसलिए गृहपति, मरते हुए चिंतित न हो! चिंतित के लिए मौत पीड़ादायक होती है। भगवान ने चिंतित होकर मरने की आलोचना की है।

जो आपको लगता हो कि 'मेरे जाने के पश्चात नकुलमाता को आंतरिक चित्त प्रशान्ति प्राप्त नहीं होगी' — तो आपको ऐसा नहीं देखना चाहिए। जहाँ तक भगवान की ऐसी श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ उपासिकाएँ हैं, जिन्हें आंतरिक चित्त प्रशान्ति प्राप्त होती हैं, मैं उनमें एक हूँ! जो किसी को शंका या संदेह हो, जाकर भगवान अर्हंत सम्यकसम्बुद्ध से पूछे, जो इस समय भग्गों के साथ भेसकला मृगवन में रह रहे हैं। इसलिए गृहपति, मरते हुए चिंतित न हो! चिंतित के लिए मौत पीड़ादायक होती है। भगवान ने चिंतित होकर मरने की आलोचना की है।

जो आपको लगता हो कि 'मेरे जाने के पश्चात नकुलमाता को इस धर्म-विनय में आधार नहीं मिलेगा, नींव नहीं प्राप्त होगी, तसल्ली नहीं मिलेगी, शंका नहीं हटेगी, संदेह नहीं मिटेगा, निडरता नहीं प्राप्त होगी, या वह शास्ता के शासन में स्वावलंबी नहीं हो पाएगी [=श्रोतापति लक्षण का प्रामाणिक वर्णन] — तो आपको ऐसा नहीं देखना चाहिए। जहाँ तक भगवान की ऐसी श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ उपासिकाएँ हैं, जिन्हें इस धर्म-विनय में आधार मिला हैं, नींव प्राप्त हुई हैं, तसल्ली मिली हैं, शंका हटी हैं, संदेह मिटा हैं, निडरता प्राप्त हुई हैं, और शास्ता के शासन में स्वावलंबी हो चुकी हैं, मैं उनमें एक हूँ! जो किसी को शंका या संदेह हो, जाकर भगवान अर्हंत सम्यकसम्बुद्ध से पूछे, जो इस समय भग्गों के साथ भेसकला मृगवन में रह रहे हैं। इसलिए गृहपति, मरते हुए चिंतित न हो! चिंतित के लिए मौत पीड़ादायक होती है। भगवान ने चिंतित होकर मरने की आलोचना की है।"

जब नकुलमाता गृहस्थ नकुलपिता को यह कह रही थी, तो उस उपदेश से उसका तुरंत रोग शान्त हुआ, बीमारी ख़त्म हुई, और तबियत ठीक हो गई। इस तरह नकुलपिता उस गंभीर रोग से छूट गया।

तब तबियत ठीक होने पर वह छड़ी के सहारे चलता हुआ भगवान के पास गया, और अभिवादन कर एक-ओर बैठ गया। तब भगवान ने कहा:

"गृहस्थ! तुम्हें बड़ा लाभ हुआ! बड़ा सुलभ हुआ, जो तुम्हें नकुलमाता जैसी अनुकम्पक एवं हितकारक सलाहकार, उपदेशक प्राप्त हुई है। जहाँ तक मेरी ऐसी श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ उपासिकाएँ हैं, जो शील परिपूर्ण करती हैं, उनमें वह एक है! जहाँ तक मेरी ऐसी श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ उपासिकाएँ हैं, जिन्हें आंतरिक चित्त प्रशान्ति प्राप्त होती हैं, उनमें वह एक है! जहाँ तक मेरी ऐसी श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ उपासिकाएँ हैं, जिन्हें इस धर्म-विनय में आधार मिला हैं, नींव प्राप्त हुई हैं, तसल्ली मिली हैं, शंका हटी हैं,

संदेह मिटा हैं, निडरता प्राप्त हुई हैं, और शास्ता के शासन में स्वावलंबी हो चुकी हैं, उनमें वह एक है! तुम्हें बड़ा लाभ हुआ, गृहस्थ! बड़ा सुलभ हुआ, जो तुम्हें नकुलमाता जैसी अनुकम्पक एवं हितकारक सलाहकार, उपदेशक प्राप्त हुई है।"

«अंगुत्तरनिकाय ६:१६ : नकुलपितुसुत्त»

**देवपुत्र उत्तर** ने भगवान के आगे एक-ओर खड़े होकर गाथा कही:

"बह जाता है जीवन, न आयु कोई मिले!
बुढ़ापे में बहते को, न आश्रय कोई मिले!
खतरा भांपते हुए मृत्यु में,
पुण्यकार्य करें, जो सुख लाएँ!"

**[भगवान:]**

"बह जाता है जीवन, न आयु कोई मिले!
बुढ़ापे में बहते को, न आश्रय कोई मिले!
खतरा भांपते हुए मृत्यु में,
लोक-आमिष गिरा कर, शान्ति खोजें।"

«संयुत्तनिकाय २:१९ : उत्तरसुत्त»

**"अनवस्सुतचित्तस्स, अनन्वाहतचेतसो।**
**पुञ्ञपापपहीनस्स, नत्थि जागरतो भयं।।"**
चित्त न जिसका भीगा हो, न हो आहत हृदय।
पुण्य-पाप छोड़ जागृत को, न हो कोई भय।।

«धम्मपद चित्तवग्गो ३९»

**"योध पुञ्ञञ्च पापञ्च, उभो सङ्गमुपच्चगा।**
**असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।"**
जो योद्धा लांघ ले, पुण्य – पाप का संगम।
अशोक निर्मल शुद्ध वह; उसे मैं कहता ब्राह्मण।।

«धम्मपद ब्राह्मणवग्गो ४१२»

।। समाप्त ।।

# आवाहन

दुनिया ने अचानक एक बड़ा मोड़ लिया है और उत्क्रांति के नए चरण में प्रवेश किया है। अब तेजी से आ रहे बदलाव नाटकीय स्तर पर हैं — कल्पना से परे। अब जलवायु परिवर्तन के प्रमाण झुठलाए नहीं जा सकते, जो दुनिया के कोने-कोने में साफ़ उभर आए हैं।

चिलचिलाती गर्मी की लहरें अब लंबे समय तक आती हैं, और नगरों को तपती भट्टी में तब्दील कर सहनशक्ति की परीक्षा लेती हैं। वर्षा बिना सूचना दिए बादल फाड़कर बरसती है, और नदियां हमारे नगरों में घुसकर रौद्र रूप प्रकट करती हैं। तब मानव तथा उनके घर, वाहन और संसाधन भी माचिस की तीलियों की तरह बह जाते हैं। कहीं वर्षा सूचना देकर भी नहीं बरसती। तब कुपोषित नदियां हमें संसाधन जुटाने के लिए संघर्ष का कारण देती हैं। कहीं प्रचण्ड तूफान समुद्रतटों पर कहर बरपा रहे हैं, तो कहीं जंगल के वन नारकीय आग में धधकते हुए नष्ट हो रहे हैं, तो कहीं भूकंप तबाही मचा रहे हैं।

ऐसे में सामाजिक उन्माद और द्वेष भी सीमाएँ लांघते हुए नए रिकॉर्ड छू रहे हैं। पक्ष और विपक्ष दोनों में ही तीखे कड़क अंदाज़ वाले सज्जनों की, तथा भड़काऊ कटु बोलने वाले महानुभावों की बड़ी मांग है। ऐसे समय क्रूर नफ़रती नेताओं की लोकप्रियता बढ़ना आम बात है, जो मात्र अपने समुदाय विशेष की बात करते हैं। पुरानी-सी लगती बातें, जैसे "नम्रता आदर संयम, राहत शान्ति संतुष्टी, उदारता समावेशिता एकता" का आकर्षण दुनिया भर में कम ही नहीं हुआ, बल्कि प्रचलन से बाहर हो चुकी हैं। अब वैसी बात करने वाले को लल्लू-पंजू समझा जाता है। यहाँ तक कि "धर्म, न्याय और सत्य" के खरीददार भी अधिक नहीं बचे हैं। जबकि सनकी दुष्प्रचार का कारोबार दिन-दूना-रात-चौगुना तरक्की कर रहा है, जिसमें बड़े पैमाने पर भर्तियां निकलती हैं। सभ्य संवाद खत्म हो रहे हैं। अब तो टकराने पर उतारू वहशी भोले हुंकार भर रहे हैं, उकसा रहे हैं, लड़ने के बहाने ढूंढ रहे हैं।

> "धर्म पर मंडराता सबसे बड़ा ख़तरा दरअसल 'धार्मिक-राष्ट्रवाद' है। जिन अभागे लोगों के हृदय से धर्म का रंग उतर जाता है, तब उनकी विचारधारा 'धार्मिक-राष्ट्रवाद' की ओर झुकती है। 'धार्मिक-राष्ट्रवाद' की जीत ही धर्म की हार बनती है। और अंततः 'धार्मिक-राष्ट्रवाद' ही धर्म का अन्त करता है।"
>
> — आशिस नन्दी

देश-दुनिया और समाज के बिखरने के साथ-साथ अब घर-परिवार में भी दरारें पड़ चुकी हैं। दीर्घकाल तक साथ रहे लोग भी धैर्य खोने लगे हैं। आपसी संबंध बदल गए हैं। अधिकांश रिश्तों में मधुरता नहीं रही है, जो मात्र लेन-देन के रह गए हैं। जिन करीबियों से उम्मीद थी, लगता है जैसे वे ही नहीं समझते हैं, और मन के पूर्ण विपरीत व्यवहार करते हैं। दूसरी ओर, हमसे भी अनायास ही अति-प्रतिक्रिया निकलती है और करीबी आहत हो जाते हैं। साथ रहते हुए मानो एक द्वंद-सा चलता है, जो दूर जाने पर बेतुका और अनावश्यक लगता है। मानो, वातावरण में ऐसा रसायन-सा घुल गया हो, जो गलतफहमी और टकराव बढ़ा रहा है।

स्मरणशक्ति धुंधली हो गई है। साधारण बातें याद नहीं रहती हैं। पहले ही खोए-खोए से रहते हैं। ऊपर से शेष ध्यान चमकती स्क्रीनों द्वारा चुरा लिया जाता है। भीतर एक बेचैनी बनी रहती है। अक्सर असहाय, अकेलापन और फंसा हुआ-सा लगता है। कई लोगों को दिन भर थकान और कमजोरी महसूस होती है, जबकि दिन ढल जाने पर ताकत और उत्साह से भर जाते हैं। जैसे आकाशझूले में बैठा कोई ऊपर-नीचे ऊपर-नीचे चक्कर काटे, वैसे ही जीवन उल्लास-निराशा या उत्साह-अवसाद में झूलता हुआ लगता है। स्वास्थ्य एवं व्यवहार दोनों को अपनी मुट्ठी में रखना कठिन हो गया है। 'विश्वास और सम्मान' दूसरों पर से कम हुआ सो हुआ, स्वयं के प्रति भी न्यूनता छू रहा है। घटती श्रद्धा और बढ़ता रक्तचाप का अब नया सामान्य स्तर प्रकट हुआ है। कोई मोटापे से लड़ रहा है तो किसी का शरीर सिकुड़ते जा रहा है। कोई नींद न आने से परेशान है तो कोई अत्याधिक नींद से।

यह दिलचस्प है कि इनमें से कोई भी समस्या आपकी निजी नहीं है, बल्कि वह हाल के दिनों में दुनिया में फैली नकारात्मक ऊर्जा है, जिसे भीतर सोख लिया गया है।

विकसित देश हो अथवा विकासशील, अधिकांश जगह स्वस्थ और सभ्य जीवन अब सरल नहीं रहा। अप्रत्याशित तकनीकी उन्नति के साथ अप्रत्याशित मानवीय पतन जारी है।

जैसे मीठे जलाशय की मछली को समुद्रजल में डाला जाए, तो उसका दम घुटने लगता है। क्योंकि शुद्धजल हल्का, कम घनत्व का होता है, जबकि खारा समुद्रजल भारी, अधिक घनत्व का। उसी तरह यूं कहें कि दुनिया भी खारी और भारी होते जा रही है, और उसका घनत्व बढ़ते जा रहा है। जो जीव 'मीठे खुले और हल्के' वातावरण में पनपने वाले हो, वे विलुप्त हो रहे हैं। तथा जो जीव 'निष्ठुर कसे और भारी' वातावरण के लिए उपयुक्त हो, वे अवतर रहे हैं (जैसे कोरोना वायरस)।

कुछ समुद्रतटों पर अचानक किसी दिन हजारों मछलियाँ या दर्जनों व्हेल्स मृत बहकर साथ जमा हो जाती हैं, तो रिहायशी इलाकों में दहशत फैलती है। कुछ इलाकों में सैकड़ों पशु या पक्षी अचानक मृत[35] पड़े मिलते हैं, तो चकित विशेषज्ञ भी कारण ढूंढते रह जाते हैं। देश-विदेश में खेलते बच्चे, हष्टपुष्ट जवान और स्वस्थ लोग अचानक हृदय या सांस रुकने से मृत गिरते हैं, तो षड्यंत्र कथाएँ फैल जाती है। ऐसा लगता है मानो मीठी दुनिया सिमट रही हो, और सभी भीतर ही भीतर कसते जा रहे हो।

भगवान भविष्यवाणी करते हैं कि जब मानवलोक में कुछ तरह के पाप एक सीमा लांघते हैं, तब इसी तरह संपूर्ण पृथ्वी पर व्यापक असर पड़ता है, और दुनिया बदल जाती है। परिणामतः मनुष्यों की आयु घटती है, नए रोग उत्पन्न होते हैं, स्वास्थ्य बदतर हो जाता है, मानवीय सौंदर्यता विद्रूप होने लगती है (जैसे मोटापा या नाटापन बढ़ना)। तब सामान्य सुख-राहत खो जाती है, और टकराव एवं संघर्ष (युद्ध) बढ़ जाते हैं। भीतर से कसता हुआ मानवीय हृदय संकुचित और संकीर्ण होते जाता है। और मानव अधिक लोभी, उतावला और नफ़रती बनता है। तब एक नए पापी एवं हिंसक युग की शुरुआत होती है, जो तेज़ रफ़्तार में बुरे से बदतर होते चला जाता है। जैसे पहाड़ की चोटी पर से गोलाकार चट्टान खिसक पड़े, तो नीचे-नीचे टकराते-कुचलते लुढ़कते ही चली जाती है, जिसे थामना सरल नहीं होता। कुछ उसी तरह एक बार मानवलोक जो असंतुलित होकर लुढ़क पड़े, तो उसे थामना सरल नहीं होता। भगवान के अनुसार अच्छे दिन बीत गए।

---

[35] पिछले कुछ वर्षों से ऐसी घटनाएं आम हो रही हैं, जिन्हें विशेषज्ञ Mass Mortality Event (MME) कहते हैं। अर्थात्, किसी जीव-प्रजाति की सामुहिक मौत की घटना। दुनिया भर के विशेषज्ञ ख़ूब जाँच-पड़ताल करने के पश्चात भी आज-तक उनका सटीक कारण पता नहीं लगा पाए हैं।

ऐसे युग-परिवर्तन के दौर में धर्म सुनना और पुण्य करना, निश्चित ही एक क्रांतिकारी कदम है।

"मैं बताता हूँ कैसे, जागा संवेग मुझे।
छटपटाती दिखी जनता, गड्ढे में मछलियों जैसे।
— विरुद्ध एक-दूसरे के, देख भय लगा मुझे।
सारहीन पूर्णतः दुनिया, दिशाएँ बिखरी ऐसे-तैसे।
इच्छा करते भवन की, न मिला कुछ बिना पूर्वदावेदारी के।
न दिखा कुछ, बजाय स्पर्धा, असंतुष्टि महसूस की मैंने।
अंततः दिखा मुझे—एक तीर, जिसके दर्शन दुर्लभ बड़े।
हृदय बसते उस तीर से वशीभूत, सभी दिशाएँ आप भागते।
किंतु खिंच तीर बाहर, आप न भागते, न ही डूबते।"

— सुत्तनिपात ४:१५ : अत्तदण्डसुत्त

यदि कोई बुद्धिमान तमाम धर्मों की समीक्षा मात्र लोकिय-स्तर पर ही करे, तो उसे पता चलेगा कि किसी भी धर्म का लेनदेन अंततः स्वयं से ही है। धर्म का कार्यक्षेत्र 'अध्यात्म' ही है। जो करना है, भीतर ही करना है। जो बाहर करना है, वह भी इसलिए कि अंततः भीतर झाँकने के काम आयेगा। धर्म सत्य में है, शान्ति में है, स्थिरता में है, अंतर्ज्ञान में है, मुक्ति में है। धर्मों की मंज़िल भले ही भिन्न-भिन्न हो, किंतु सभी रास्ते 'सद्भावना, करुणा एवं अहिंसा' से ही होकर गुजरते हैं।

उदाहरण के लिए, पैगंबर 'मूसा' ने आज से तक़रीबन साढ़े तीन हज़ार वर्ष पूर्व **दस ईश्वरीय आज्ञाएँ** बताई थीं:

"१. मैं प्रभु तुम्हारा परमेश्वर हूँ। मेरे अलावा किसी दूसरे को ईश्वर न मानना।

२. अपने परमेश्वर का नाम व्यर्थ न लेना [दुरूपयोग न करना।]

३. धार्मिक दिवस [जैसे उपोसथ व्रत] का पालन करना।

४. माता-पिता का आदर करना।

५. मनुष्य की हत्या न करना।

६. व्यभिचार न करना।

७. चोरी न करना।

८. झूठी गवाही न देना। [झूठ न बोलना]

९. पर-स्त्री की लालसा न करना।

१०. पराए धन, संपत्ति की लालसा न करना।"

— यहूदी बाईबल : निर्गमन : अध्याय २०

कोई दोराय नहीं है कि अब्राहमी धर्मों (यहूदी, ईसाई एवं इस्लाम) के साथ-साथ अन्य धर्मपंथ भी दस ईश्वरीय आज्ञाओं का सम्मान करते हैं। ईश्वरीय आज्ञाएँ नहीं पालन करना चाहिए, ऐसा कोई क्यों कहेगा? किंतु प्रश्न है कि कौन उनका पालन करना चाहता है? कौन खुद पर लगाम कसना चाहता है? जाहिर है, भले ही ईश्वर प्रकट होकर कड़े शब्दों में आज्ञाएँ भी दें, किंतु मानव समय पाकर उससे बच निकलने के बहाने और उपाय ढूंढ ही लेता है।

उदाहरणार्थ, कुछ धर्मगुरु कहते हैं कि 'काल और स्थिति' देखकर शील-सदाचार ताक पर रखे जा सकते हैं, और पाप को जायज़ ठहराया जा सकता है। जैसे कोई अपनों के प्राण बचाने या 'व्यापक भलाई' के लिए हत्या करे या झूठ बोले, तो पाप नहीं होता। ज़ाहिर है यह सुनकर भीतर पाप पालकर रखने वाले लोग राहत महसूस करते हैं, और उनके भक्त बन जाते हैं। क्योंकि अब उन्हें धर्मानुसार ही छूट मिलती है कि आप जो पाप चाहे करे, बस उसे पश्चात किसी तरह सही साबित करे। अब यही चलन बन गया है। जितना चालबाज वक्ता हो, उतना ही भावपूर्ण तर्क देकर साबित करेगा। दुनिया के तमाम सिरफिरे इसी से प्रेरणा लेते हैं, और तिकड़म बुद्धि का उपयोग कर अपने पापों को 'धार्मिक कार्य' साबित करते हैं। कुछ कथाएँ तो सनकी और हिंसक व्यभिचारियों तक को 'कठोर कदम उठानेवाला धर्मवीर' दिखाकर खूब लोकप्रियता बटोरते हैं।

किंतु भगवान सीधे साफ़ अंदाज़ में कहते हैं कि बात आत्महित में हो, या परहित में, या पूर्णतः सभी के हित में — पञ्चशील तोड़ना पाप है तो पाप है! उसमें न 'किंतु परंतु' है, न ही कोई छूट! भगवान ने पञ्चशील तोड़ने का उपयुक्त अवसर किसी सूत्र में नहीं बताया, और न ही ऐसी कोई 'काल या स्थिति' उचित बताई। अर्थात्, जैसा भी भला कारण हो, पञ्चशील तोड़ना पाप है, और उस पाप से विरत रहना शील! अफ़सोस

कि पापियों को कोई राहत नहीं! सुनकर मज़ा न आए, तो जाएँ किसी और का भक्त बने! वैसे भी भगवान का धर्म अवसरवादी और सुविधा देखने वाले के लिए नहीं है।

यदि कोई महानुभाव स्पष्टीकरण देते हुए कहे कि "अरे भाई! धर्म को पुनर्स्थापित करने के लिए पहले 'हिंसा, नफ़रत और कपट' से ही होकर गुजरना पड़ता है। तभी पश्चात आपका 'धर्म, शान्ति और प्रेम' स्थापित होता है।" — तो शायद वह उस धर्म की बात नहीं कर रहा है, जिसकी बात सत्पुरुष महापुरुष करते हैं। कैसे? भगवान एक दिव्यप्रसंग द्वारा इन धर्मों में भेद करते हुए बताते हैं —

> "एक समय की बात है, भिक्षुओं। आपसी संग्राम के लिए देवता और असुर तैनात किए गए थे। तब असुर राज वेपचित्ति ने जाकर देवराज इंद्र से कहा, "चलों देवराज! [इस संग्राम में वाकस्पर्धा करें, और] जो सुभाषित हो [अच्छा बोले], वह जीतें!"
>
> देवराज इंद्र ने उत्तर दिया, "ठीक है वेपचित्ति! जो सुभाषित हो, वह जीतें!"
>
> तब देव-असुरों ने परिषद बिठाई, [सोचते हुए] 'यह लोग सुभाषित या दुर्भाषित होने का निर्णय करेंगे।' तब असुर राज वेपचित्ति ने कहा, "चलों देवराज! गाथा बोलो।" देवराज इंद्र ने कहा, "आप वरिष्ठ देव है, वेपचित्ति। आप गाथा बोलें।" तब असुर राज वेपचित्ति ने गाथा कही —
>
> "मूर्ख उठते हैं भड़क कर, रोकने वाला जो न हो।
> तो कड़ा डंडा थाम कर, रोकें धैर्यवान मूर्ख को।"
>
> जब वेपचित्ति ने यह गाथा कही, तब असुरों ने तालियां पीटीं, जबकि देवता मौन रहें। वेपचित्ति ने कहा, "देवराज, अब तुम गाथा बोलो।" तब देवराज इंद्र ने गाथा कही —
>
> "मूर्ख को रोकने के लिए, ऐसा लगता है मुझे,
> पराए को कुपित देख, स्मृतिमान शान्त हो लें।"

जब देवराज इंद्र ने यह गाथा कही, तब देवताओं ने तालियां पीटीं, जबकि असुर मौन रहें। इंद्र ने कहा, “वेपचित्ति, अब आप गाथा कहें।” तब असुरराज वेपचित्ति ने गाथा कही—

“ऐसे अति धैर्य में, वासव, मैं गलती देखूं।
सोचे मूर्ख, “भयभीत हो, धैर्य यह दिखा रहा।
बेवकूफ फिर सिर चढ़े, जैसे दौड़ाता सांड हो।”

जब वेपचित्ति ने यह गाथा कही, तब असुरों ने तालियां पीटीं, जबकि देवता मौन रहें। वेपचित्ति ने कहा, “देवराज, अब तुम गाथा बोलो।” तब देवराज इंद्र ने गाथाएँ कही —

“भले सोचते रहे मूर्ख, ‘भयभीत हो धैर्य दिखा रहा।’
सदात्महित ही परमार्थ है, धैर्य से बढ़कर कुछ नहीं।
धैर्य दिखाकर दुर्बल को, बलवान जो शान्त रहे,
उसे कहते परमधैर्य! दुर्बल तो सदैव शान्त ही रहे!
बल तो वह है अबल, जो बल है मूर्ख का बल।
धर्मरक्षा करता बलवान, उल्टापुल्टा न बोलता।
जो क्रुद्ध को कुपित करे, उससे बड़ा पाप करे।
क्रुद्ध को अक्रुद्ध रख, दुर्गम संग्राम जीत ले।
आपसी हित में चलता, आत्म और पराए के,
पराए को कुपित देख, स्मृतिमान शान्त हो ले।
जो आपसी इलाज करे, आत्म और पराए का,
जो जनता उसे मूर्ख कहें, कुछ धर्म न वह जाने।”

जब देवराज इंद्र ने यह गाथा कही, तब देवताओं ने खूब तालियां पीटीं, जबकि असुर मौन रहें। तब देव-असुर परिषद ने कहा, “असुर राज वेपचित्ति ने जो गाथाएँ कही — वे दण्डश्रेणी में आती हैं, शस्त्रश्रेणी में आती हैं, झगड़ा विवाद एवं कलह पूर्ण हैं। जबकि देवराज इंद्र ने जो गाथाएँ कही — वे न दण्डश्रेणी में आती हैं, न शस्त्रश्रेणी में आती हैं, न झगड़ा, न

विवाद, न ही कलह पूर्ण हैं। इसलिए सुभाषित होने की जीत देवराज इंद्र को मिलती है।”

और इस तरह भिक्षुओं, देवराज इंद्र सुभाषित होने से विजयी हुआ।”

— संयुत्तनिकाय ११:५ : सुभासितजयसुत्त

---

अर्थात्, भले ही किसी महानुभाव का ध्येय कमाल का हो और उसकी मंज़िल प्रशंसनीय, किंतु जो पहले ‘हिंसा नफ़रत और कपट’ से होकर गुजरे, तो वह भी दण्डश्रेणी शस्त्रश्रेणी में आएगा, तथा झगड़ा विवाद एवं कलहपूर्ण होगा — जो असुर धर्म है। प्रत्येक युग में सत्ता छीनने के लिए कुछ महानुभाव आते हैं, और विचित्र तर्क दे-देकर जनता को आपस में लड़ाते हैं। धर्म के ही नाम पर वे जनता से बेहिसाब ‘अधर्मचर्या विषमचर्या’ कराते हैं, और अपना असुरधर्म स्थापित कर उन्ही पर तानाशाही करते हैं। उनके राह पर चलते असंख्य भक्त अंततः असुरलोक अथवा नर्क पहुँचने पर भौंचक्का रह जाते हैं। जैसे भोला गंगामय्या देखने गंगोत्री जाना चाहे, और कपटी उसे गंगानगर (राजस्थान) की टिकट बेचकर भेज दे। आदिकाल से ही यह धोखा जनता के साथ होता रहा है।

मानव में सुर-असुर दोनों प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। रक्षक-भक्षक दोनों धर्मस्वभाव विद्यमान दिखते हैं। कोई बेसुध सज्जन किसी भी धर्मसमुदाय से हो या किसी भी जाति वर्ण से, जो मात्र अपने बावले मन की सुनता चला जाए, उस पर अमल करता जाए, तो कोई पाप अकृत न छोड़े। वह स्वयं ही अंधेरी दुनिया में खो जाए, और निचले-निचले दुर्गतिलोक में गिरता चला जाए। उसके दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम कारण है हमारा नैसर्गिक झुकाव। दीर्घकाल तक ‘राग द्वेष और मोह’ के स्वभाव-शिकंजे में फंसे हम मानवों को विषम रास्ता ही लुभाता है, सरल स्वाभाविक लगता है जिसमे मेहनत नहीं लगती, जो तुरंत ‘असत्य एवं हिंसा’ से गुजरकर मंज़िल तक पहुँचा देता है। और दूसरा कारण है कि हो सकता आपके मन के विचार दरअसल आपके न हो। थोड़ा धैर्य से समझें।

जैसे आप के पास टीवी मोबाइल या रेडियो हो, उस पर चलते चलचित्र या संगीत आप ने स्वयं निर्मित नहीं किए होते। हम जानते हैं कि कोई पराया उन्हें दूर से प्रसारित

कर रहा है। वे उपकरण केवल एक माध्यम है, जो पराए का सिग्नल पकड़कर उसे आप के आगे दृश्य या ध्वनि में प्रकट करते हैं। उसी तरह इस **मन** को भले ही आप स्वयं का मानते हो, किंतु उस पर आते प्रत्येक विचार, उमड़ते प्रत्येक स्वभाव, क्रौंधते प्रत्येक संकल्प आप के नहीं होते। संभव है उन्हें भी शायद कोई दूर से प्रसारित कर रहा हो। एक सूत्र से समझें —

> "तब पापी **मार** दूसी[36] को लगा, "इस संघ के भिक्षु शीलवान हैं, कल्याणकारी धर्मस्वभाव के है, किंतु [वे समाहित होने से] मुझे उनका आना-जाना [चित्त का स्टेशन] पता नहीं चलता। क्यों न मैं गांव के ब्राह्मण गृहस्थों का मन वश में करूँ, और तब शायद जानने का मौका मिले?"
>
> तब मार दूसी द्वारा वश किए जाने पर ब्राह्मण गृहस्थों ने भिक्षुसंघ को क्रोध-आक्रोश दिखाते हुए खूब गाली-गलौच और अपमान-परेशान किया। तब भगवान ककुसन्ध ने भिक्षुसंघ से कहा, "भिक्षुओं! पापी मार दूसी ने ब्राह्मण गृहस्थों का मन वश में किया है, ताकि [आपका चित्त विचलित होने पर] उसे आप का आना-जाना पता चलें। इसलिए भिक्षुओं, निर्बैर निर्द्वेष रहकर, विस्तृत विराट असीम सद्भाव चित्त... करुण चित्त... प्रसन्न चित्त... तटस्थ चित्त को तमाम दिशाओं में फैलाकर, संपूर्ण ब्रह्मांड में परिपूर्णतः व्याप्त करें।"

---

[36] इस कल्प के प्रथम अर्हंत सम्यक-सम्बुद्ध — भगवान 'ककुसन्ध' थे। उस समय 'दूसी' नामक सत्व 'मार' बना था। मार का अर्थ है, वह "जो अंततः मृत्यु का कारण बनता है" अथवा "जो अमृत धर्म (निर्वाण) से वंचित रखता है।" यह एक देवलोक में प्राप्त होने वाला पद है, जो उस पुण्यशाली यक्ष को मिलता है, जिसे कुछ विशेष महाऋद्धियां प्राप्त होती हैं। जिनसे वह तमाम सत्वों का मन पढ़कर उनकी निजी कमज़ोरियां जान लेता है। वह मन में विचार डालकर या शरीर में विशेष आस्रव ऊर्जा प्रवाहित कर, किसी को भी प्रेरित, प्रभावित तथा नियंत्रित कर सकता है। ऐसी महाशक्ति प्राप्त कर उसका चित्त दूषित हो जाता है, तथा उसे सत्ता की हवस जागती है। तब वह राजद्रोह कर अपनी शैतानी गैंग बनाता है, और ऐश्वर्यशाली महाब्रह्म के समानांतर अपनी काली सत्ता चलाने लगता है।

मार का उद्देश्य है, सभी को इस संसार में बांधकर रखना। क्योंकि सभी यदि मुक्त होने लगे, तो वह सत्ता किस पर चलाएगा? इसलिए वह सभी सत्वों के विराग धर्ममार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, तथा उन्हें फुसलाकर पुनः हिंसा तथा वासना के मिथ्याधर्म में प्रतिष्ठित करता है। कहते हैं कि मार का सूक्ष्म वश महाब्रह्म तक नहीं पहचान पाते। किंतु वह बुद्ध की आँखों से नहीं बच पाता। भगवान बुद्ध उस कृष्णप्रवृत्ति के मार को "कान्हा" अर्थात् काला भी पुकारते हैं।

[तब भिक्षुसंघ ने वैसा ही किया। और मार दूसी का प्रयास विफल रहा।] किंतु उन ब्राह्मण गृहस्थों में अधिकांश लोग मरणोपरांत पतन होकर दुर्गति हो, यातनालोक नर्क में उपजे।

तब पापी मार दूसी को लगा, "अब क्यों न मैं गांव के भिन्न ब्राह्मण गृहस्थों का मन वश में करूँ, और तब शायद जानने का मौका मिले?"

तब मार दूसी द्वारा वश किए जाने पर भिन्न ब्राह्मण गृहस्थों ने श्रद्धा से भावविभोर होकर भिक्षुसंघ का खूब आदर-सम्मान वंदन-पूजन किया। तब भगवान ककुसन्ध ने भिक्षुसंघ से कहा, "भिक्षुओं! पापी मार दूसी ने पुनः ब्राह्मण गृहस्थों का मन वश में किया है, ताकि [चित्त विचलित होने पर] उसे आप का आना-जाना पता चलें। इसलिए भिक्षुओं, अब काया का अनाकर्षक-पहलु देखें, आहार के प्रति विपरीत नज़रिया रखें, सभी लोक के प्रति निरस नज़रिया रखें, सभी रचनाओं का अनित्य-पहलू देखें, तथा मौत-नज़रिया प्रतिष्ठित करें।"

[तब भिक्षुसंघ ने वैसा ही किया। और मार दूसी का द्वितीय प्रयास भी विफल हुआ।] किंतु उन ब्राह्मण गृहस्थों में से अधिकांश लोग मरणोपरांत सद्गति होकर स्वर्ग में उपजे।

तब अगली सुबह, मार दूसी ने एक लड़के का मन वश में किया, जिसने पत्थर उठाकर भगवान के पीछे चलते अग्रश्रावक भन्ते विधुर के सिर पर दे मारा। उनका सिर फटकर रक्त बहने लगा। तब भगवान ककुसन्ध पलटकर पीछे मुड़े, और दूसी को 'हाथी की नज़र' से देखा [सोचते हुए], "यह मार दूसी मर्यादा नहीं जानता!" तब उस नज़र के साथ ही मार दूसी उसी समय उसी जगह पतन होकर महानर्क में गिर पड़ा, और लाखों वर्षों तक जलते रहा।"

— मज्झिमनिकाय ५० : मारतज्जनीयसुत्त

कहते हैं कि यदि कोई अलौकिक दिव्यचक्षु से ब्रह्मांड का 'एक्स रे' करे, तो पता चलेगा कि दुनिया में दो तरह की महाशक्तियां कार्यरत हैं। वे एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत एवं विरुद्ध होकर एक-दूसरे को संतुलित करती हैं। उनमें एक द्वंद चलता है। एक महाशक्ति सत्वों का आध्यात्मिक स्तर ऊँचा उठाने में जुटी है; जबकि दूसरी गिराने में। एक भीतरी कल्याणकारी प्रवृत्ति बढ़ाती है, तो दूसरी पापकारी। एक उजाले की ओर उठाती है, तो दूसरी अंधेरे की ओर दबाती। एक हृदय खोलती, शान्त करती, त्याग एवं प्रेम बढ़ाती है। जबकि दूसरी हृदय कसती, व्याकुल बनाती, स्वार्थ एवं अविश्वास बढ़ाती है। कई बार मन में भले और बुरे विचारों के बीच द्वंद-सा चलता है। अच्छाई या बुराई चुनने में उलझन होती है। तब संभव है कोई सत्व आप को समझाने या बहकाने का प्रयास कर रहा हो।

भोला को अपने मन के विचार जानते हुए लगेगा, मानो वह स्वयं ही सोच रहा है, और जीवन उसकी मुट्ठी में है। किंतु भोला का मन तो जैसे मंदिर का घंटा है, जिसे बार-बार कोई भी आकर बजा देता है। और उसका जीवन जैसे फुटबॉल है, जिसे लात मारकर कोई भी इस या उस गोलपोस्ट में भेज देता है। अर्थात् हमारे इस लोक में पापी मार के अलावा भी असंख्य सत्व मौजूद हैं, जो भोला के मन को कल्याणकारी या दुष्ट विचारों से भर सकते हैं, भले या बुरे संकल्पों से प्रेरित कर सकते हैं, तथा उसे स्वर्ग या नर्क भेज सकते हैं। द्वंद करती वह महाशक्तियां भोला के फुटबॉलरूपी जीवन को एक-दूसरे से छीनते हुए, आपसी खिलाड़ियों में पास करते हुए, इस या उस लोक में ले जाने का प्रयास करते हैं। जब तक यह खेल छिपकर अदृश्य रूप में होता है, तब तक ही चलता है। पर्दा उठ दृश्यमान हो जाने पर भला कौन वशीभूत होगा? यही कारण है कि सत्ता की असली बागडोर वाकई जिसके हाथों में हो, वे अक्सर आगे नहीं आते। वे छिपकर पीछे से डोर खिंचते रहते हैं, और गुलाम जनता नाचती रहती है।

तब मन से गहरा तादात्म्य भाव स्थापित करता, भोला 'भोला' नहीं रह पाता। वह मन में उमड़ते उल्टे-सीधे तर्क सुनते हुए, आत्महित एवं आत्मसुरक्षा के नाम पर अंधा बन — 'हत्या लूट और बलात्कार' में पीछे नहीं रहता, 'झूठ, फूट डालने और कटु बोलने' में नहीं हिचकिचाता, तथा नफ़रत और लालच करना भी न्यायसंगत मानता है। तब जान लें कि आड़ा-तिरछा चलता भोला, शैतान के वशीभूत हो, अब पापधर्म या 'असुर धर्म' पालन करता है।

दूसरी ओर, सतर्क मेधावी मन को 'टीवी रेडियो या मोबाइल' जैसा एक उपकरण मानता है। और उस पर टकराते विचार, स्वभाव एवं संकल्प को पराया सिग्नल! वह मन में दूषित कार्यक्रम चल पड़ते ही चैनल बदलकर 'संस्कारी' चैनल लगाने का प्रयास करता है। वह न बावले मन की सुनता है, न उस पर अमल करता है। बल्कि वह सद्धर्म सुनता है, सन्त अर्हंत एवं सत्पुरुष की सुनता है। अगर सुनी बात हिंसात्मक या अहितकारक हो तो उन्हें भी त्याग देता है। मन पर संयम, स्वयं पर काबू और हृदय को स्वच्छ करता है। बिना ऊँच-नीच का भेदभाव किए जनसेवा करता है। कोई बहाना न बनाते हुए लालच और द्वेष तुरंत त्यागता है, और सभी के साथ 'स्नेह सद्भाव एवं करुणा' से बर्ताव करता है। तब जान लें कि सीधा चलता वह मेधावी, देवताओं से रक्षित हो, अब वाकई कल्याणधर्म या 'सुर धर्म' पालन करता है।

खैर, कुछ महानुभाव धर्म का स्वांग नहीं करते। वे खुलकर मानते हैं कि नैतिकता एक कमजोरी है। चूंकि वे लक्ष्य पाने के लिए या मंजिल पर पहुँचने के लिए जो चाहे बेलगाम, बिना रोकटोक करना चाहते हैं, तथा अपनी काली भक्षकप्रवृत्ति का बेहिसाब उपयोग करना चाहते हैं। इसलिए नैतिकता उन्हें तर्कहीन अर्थहीन सी लगती हैं, एक अनावश्यक भार-सा लगता है। नीच कर्मों में मज़ा लेते हुए उन्हें न लज्जा थामती है, न भय रोकता है। बल्कि उन्हें अपनी छलकपट, षड्यंत्रकला और दुष्टशक्ति का अहंकार होता है। अपना पतन भी उन्हें 'पहुँच' जैसा दिखता है।

जबकि सत्यनिष्ठ लोग आत्मभूति से जानते हैं कि नैतिकता वाकई एक सर्वशक्तिशाली बल है। भगवान 'हिरी ओतप्प' को 'लोकपाल' का दर्जा देते हैं। अर्थात् **लज्जा एवं भय**, जो दरअसल संपूर्ण दुनिया का रक्षण करती है, आधार देती है। वही पाप का रोकथाम करती है, और मदहोश होते भले लोगों को एक स्तर के नीचे गिरने से थाम लेती हैं। वही कर्मों के कुछ ख़ास द्वार बंद करती है, जो निचले लोक में खुलते हो। लज्जा एवं भय से संपन्न लोग, अपना लक्ष्य पाने या मंज़िल पर पहुँचने के लिए तो छोड़िए, आत्मबचाव में भी बेलगाम होकर दूसरों का अहित नहीं करते।

भगवान एक उदाहरण देते हैं —

> "एक समय की बात है, भिक्षुओं। देव-असुरों में संग्राम छिड़ा था, जिसमे असुर विजयी हुए और देवता पराजित। पराजित देवतागण [देवराज इंद्र के पीछे हजारों रथों में] उत्तर-दिशा में

पलायन करने लगे, और असुर उनका पीछा करने लगे। [तब रथों की भागदौड़ से रेशमवन के घोसलों में पंछियों का कोलाहल मचा।] तब देवराज इंद्र ने सारथी मातलि से गाथाओं में कहा,

“रथ की फाल से, ओ मातलि
रेशमवन के घोंसले उधेड़ो ना।
असुरों को मैं प्राण सौंप दूं।
बजाय पंछियों को बेघर करूँ।”

“ठीक है, महामहिम!” कह कर मातलि ने रथ को घुमाकर विपरीत दिशा में दौड़ाया। हजारों अश्वरथों में भागते देवतागण भी उनके पीछे हो लिए।

यह देख असुरों को लगा, “देवराज इंद्र ने अपने रथ के साथ हजारों रथों को घुमा दिया हैं। अब देवताओं से दोबारा संग्राम होगा!” भयभीत असुर तुरंत विपरीत घूमकर पलायन करते हुए असुरलोक लौट गए। और इस तरह भिक्षुओं, देवराज इंद्र ‘कर्तव्य’ का पालन करने से विजयी हुआ।”

— संयुत्तनिकाय ११:६ : कुलावकसुत्त

---

भगवान का दिया उदाहरण आज के बुलडोज़र-युग (और इसराइली दृष्टिकोण) में विसंगत लगता है, और असुरों को खटकता है। किंतु यह सच है कि भले ही देवतागण युद्ध जैसी आपातकाल स्थिति में हो, और बुरी तरह पराजित होकर पलायन कर रहे हो, तब भी वे आत्मबचाव के नाम पर निरपराध को कुचलना तो छोड़िए, पंछियों का घोंसला तक उजड़ने नहीं देते — चाहे जान ही क्यों न चली जाए! इसे **देवप्रवृत्ति** कहते हैं!

जो स्वयं निष्पाप हो, उसे ही मासूम से सहानुभूति होगी। जिसकी अंतरात्मा जीवित हो, उसे ही जीवन की कीमत समझेगी। जिसके हृदय में सच्चाई हो, उसे ही निरपराध की पीड़ा महसूस होगी। और वही पशुता लांघ कर ‘मानवीय’ कर्तव्य निभाएगा। जो उसे देखकर समर्थन करे, वह भी उसके कल्याणकारी पुण्य में परोक्ष-रूप

से भागीदार बनता है। संभव है, वह भी देवप्रवृत्ति से जुड़कर देवलोक जाए। क्योंकि यही धर्म की नियमितता है कि उच्च धातु का उच्च धातु से समागम होता है।

जबकि दूसरी ओर, अपनी भड़ास निकालने में किसी के पाप की सज़ा किसी और को देना — राक्षसी कदम है! एक का कृत्य पूर्ण जमात पर मढ़ना, और सभी को सामूहिक दण्ड देना — विनाशकाले विपरीत बुद्धि है! इसे **असुरप्रवृत्ति** कहते है।

जो स्वयं पापी हो, उसे पापी कदम ही न्यायसंगत लगेगा। जिसकी अंतरात्मा मर चुकी हो, उसे मासूम को दण्ड देने में रूह नहीं कापेगी। जिसके हृदय में झूठ हो, नफ़रत और हिंसा भरी हो, उसे निरपराध की पीड़ा में संतुष्टि मिलेगी। जो परपीड़न देखकर समर्थन करे, वह भी उसके राक्षसी पाप में परोक्ष-रूप से भागीदार बनता है। संभव है, वह भी असुरप्रवृत्ति से जुड़कर नर्क या असुरलोक जाए। क्योंकि यही धर्म की नियमितता है कि नीच धातु का नीच धातु से समागम होता है।

उन देवप्रवृत्ति और असुरप्रवृत्ति के लोगों में भेद कैसे करें? कैसे उन्हें पहचाने?

मेरी मातृभाषा मराठी में, सन्त तुकाराम का अमर अभंग सैकड़ों वर्षों से मार्गदर्शन कर रहा है:

**"जे का रंजले गांजले, त्यासी म्हणे जो आपुलें**

**तोचि साधु ओळखावा, देव तेथेंची जाणावा**

**मृदु सबाह्य नवनीत, तैसे सज्जनांचे चित्त**

**ज्यासी आपंगिता नाही, त्यासी धरी जो हृदयी**

**दया करणें जें पुत्रासी, तेची दासा आणि दासी**

**तुका म्हणे सांगू किती, त्याची भगवंताच्या मूर्ति"**

"जो दबे-कुचले पीड़ित हो, उन्हें जो अपना माने,

उसे ही सत्पुरुष मानें, उसमें ही ईश्वर जानें।

भीतर-बाहर मृदु मक्खन, वैसा सत्पुरुष का चित्त

जिनका नहीं कही कोई, उन्हें हृदय से लगाएँ वही।

जो दयाभाव संतान प्रति, वही दास-दासी प्रति।

तुका कहे कितना बताऊँ, वही भगवान की मूर्ति।"

— सन्त तुकाराम

अर्थात्, **भले लोग** हमेशा असहाय, दबे-कुचले पीड़ित की ओर से खड़े दिखेंगे, तथा 'समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुता' की आवाज़ बुलंद करेंगे। उन्हें किसी भी तरह की 'विषमता' अन्यायपूर्ण लगती है, चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक हो। विवाद खड़ा होने पर वे एक-तरफा बातें सुनकर दूसरे को धिक्कारने नहीं लगते, बल्कि दोनों ही पक्षों की दलील बड़े धैर्य से सुनते हैं, गहराई से समझते हैं, और तब उस पर निष्पक्ष रूप से शांतिपूर्ण समाधान निकालते हैं। वे अक्सर सांसारिक रूप से महत्वाकांक्षी नहीं होते, तथा अपनी मंज़िल पर पहुँचने के लिए कभी विषम रास्ता नहीं अपनाते। वे स्वयं के कृत्यों पर अधिक चिंतन करते हैं, और अपनी भूल को नम्रता से स्वीकारते हैं। ऐसे दुर्लभ, देवप्रवृत्ति के लोग भरोसेमंद होते हैं। उन्हीं के आधार पर दुनिया अब भी टिकी हुई है।

दूसरी ओर, **महानुभाव** हमेशा सत्ताधारी या निर्दयी उत्पीड़क का समर्थन करते दिखेंगे। वे ऊँचे तबके के साधनसंपन्न लोगों के साथ खड़े होकर 'भेदभाव, गुटबाजी एवं बहिष्कार' की आवाज़ बुलंद करते हैं। वे अपना मंसूबा पूरा करने के लिए नीचता की कोई सीमा लांघने से नहीं कतराते, तथा मंज़िल पर पहुँचने के लिए कोई भी विषममार्ग अपनाते हैं। उनकी कथनी और करनी में एक विचित्र-सा अंतर दिखता है, बातों में विरोधाभास और दोहरा मापदंड दिखता है। कहने के लिए वे हिंसा, असमानता आदि दुष्ट प्रवृत्तियों का अस्वीकार ही करेंगे, किंतु पश्चात कोई कुतर्क देकर उसे किसी तरह उचित साबित भी करेंगे। पोल खुलने पर मुद्दा भटका देंगे या आक्रमक हो जाएँगे। न वे अपने कृत्यों की ज़िम्मेदारी लेते हैं, न जवाबदेह होते हैं, और न ही उन्हें कभी पछतावा होता है। भले ही वे किसी का अहित करते हुए दिख भी पड़ें, तब भी उसे पीड़ित के ही मत्थे फोड़ते हैं। उनके अनुसार उत्पीड़क की कोई भूल नहीं होती, सारी गलती पीड़ित की ही होती है, जिसने ज़रूर उसे अपना उत्पीड़न करवाने के लिए उकसाया होगा।

> "यदि आप सतर्क न रहें, तो अख़बार और मीडिया आपको उन लोगों से नफ़रत करने पर मजबूर कर देगी, जिन पर अत्याचार हो रहा है। और उन लोगों से प्रेम करने पर विवश कर देगी, जो अत्याचार कर रहे हैं।"
>
> — मैल्कम एक्स

मेरे भाई ने बचपन में एक दिन मज़ाक से कहा था, “गरीबी मिटाने का सरल उपाय है, गरीबों को मिटाओ। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।” दुर्भाग्यवश अब यही दुष्ट मज़ाक कुछ सरकारों की नीति बन गई है। गरीब, पीड़ित या हाशिए पर रहने वाले समुदायों के प्रति जनता की सहानुभूति ख़त्म करने के लिए उन्हें ‘नक्सली, आतंकी या देशद्रोही’ उत्पीड़क बताया जा रहा है। दूसरी ओर ऊँचे तबके के साधनसंपन्न उत्पीड़क स्वयं को ही पीड़ित बता रहे हैं। उनकी अगुवाई में जनता की पापी वृत्तियां उफान पर है, और उसी आँच पर सत्ता की रोटियां सेकी जा रही है। ऐसा होता है राक्षसी-उपाय! ऐसे महानुभावों की बातों पर विश्वास न रख, मात्र उनके कृत्य तथा उपजे परिणाम देखना चाहिए। संभवतः उनसे दूर रहना चाहिए, तथा उन्हें सत्ता से भी दूर रखना चाहिए। वर्ना सामूहिक विनाश दूर नहीं रहता। भगवान एक प्रसंग बताते हैं —

> “एक समय की बात है, भिक्षुओं! एक कुरूप, भद्दा-सा यक्ष आकर देवराज इंद्र के राजआसन पर बैठ गया। तब तैतीस देवतागण रूठकर, चिढ़कर, शिकायत करने लगे, “कमाल है, श्रीमान! आश्चर्य है! कैसे यह कुरूप, भद्दा-सा यक्ष आकर देवराज इंद्र के राजआसन पर बैठ गया!” किंतु जैसे-जैसे देवतागण रूठकर, चिढ़कर, अधिक शिकायत करने लगे, वैसे-वैसे वह यक्ष अधिक रूपवान, आकर्षक और विश्वसनीय दिखने लगा।
>
> तब तैतीस देवतागण देवराज इंद्र के पास गए और कहा, “अभी अभी श्रीमान, एक कुरूप, भद्दा-सा यक्ष आकर आपके राजआसन पर बैठ गया। तब हम देवतागण रूठकर, चिढ़कर, शिकायत करने लगे। किंतु जैसे-जैसे हम देवतागण रूठकर, चिढ़कर, अधिक शिकायत करने लगे, वैसे-वैसे वह यक्ष अधिक रूपवान, आकर्षक और विश्वसनीय दिखने लगा।”
>
> देवराज इंद्र ने कहा, “तब श्रीमानों! ज़रूर वह क्रोधभक्षी यक्ष होगा!”

तब देवराज इंद्र उस क्रोधभक्षी यक्ष के पास गया और पहुँच कर बाहरी वस्त्र को एक कंधे पर ले, भूमि पर एक घुटना टिका, हाथ जोड़कर अंजलिबद्ध मुद्रा में, अत्यंत नम्रतापूर्ण तीन बार अपना नाम घोषित किया, "श्रीमान, मैं देवेन्द्र सक्क (अर्थात् 'सक्षम', इंद्र का व्यक्तिगत नाम) हूँ! श्रीमान, मैं देवेन्द्र सक्क हूँ! श्रीमान, मैं देवेन्द्र सक्क हूँ!" जैसे-जैसे देवराज इंद्र ने अत्यंत नम्रतापूर्ण स्वयं का नाम घोषित किया, वैसे-वैसे वह यक्ष पुनः कुरूप, भद्दा दिखने लगा। अंततः वह विकृत होते-होते विलुप्त हो गया।

तब देवराज इंद्र अपने राजआसन पर विराजमान हुआ, और उस अवसर पर, तैतीस देवतागण को संतुष्ट करती गाथाएँ बोली,

"तुरंत क्रोध-चित्त न होता मैं,
न भंवर में खींचा जाता हूँ।
दीर्घकाल न क्रुद्ध होता मैं,
न क्रोध बनाए रखता हूँ।
क्रुद्ध हो, न कटु बोलता मैं,
न स्वधर्म की बढ़ाई करता हूँ।
काबू में स्वयं को रखता मैं,
आत्महित भी देखता हूँ।"

— संयुत्तनिकाय ११:२२ : दुब्बण्णियसुत्त

---

तैतीस देवलोक की इस घटना से भले मानव सीख ले सकते हैं। आप जितना अधिक रूठेंगे, चिढ़ेंगे, हवा में हाथ उछाल-उछाल कर शिकायत करेंगे, उतना ही राजआसन पर बैठा वह कुरूप भद्दा-सा पापी — अधिक रूपवान, आकर्षक और विश्वसनीय दिखने लगेगा, अधिक शक्तिशाली और अपराजेय होने लगेगा। क्योंकि दरअसल भीतर से वह एक क्रोधभक्षी यक्ष ही है। क्रोध और नकारात्मक भाव ही उसका मुख्य आहार है, जो वह दिन में दो किलो खाता है। जितनी गालियां दो, उतना चमकता

है। उसे देवराज इंद्र जैसे उसके आहार से वंचित रखें। और तब उस पर पुरानी अप्रचलित बातें — जैसे 'नम्रता आदर संयम, राहत शान्ति संतुष्टी, उदारता समावेशिता एकता' की तब तक बौछार करते रहें, जब तक वह परास्त होकर विलुप्त नहीं हो जाता। कंबख्त पर वही दवा असर करती है, और आपका पुण्य भी खूब होता है। ऐसा होता है देव-उपाय! साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

असुरधर्म जब भी इस धरती पर घने कोहरे की तरह उतरता है, तो सच्चे धर्म के साथ-साथ इतिहास और सामान्य ज्ञान को भी ढक देता है। तब जनता के आगे धार्मिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं का विकृत स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है, ताकि सच्चाई पर से उनका विश्वास उठ जाए। बुद्ध और सच्चे सन्तों के सिद्धांतों को झुठला कर, उनके पवित्र स्थानों पर कब्ज़ा कर, उनके प्रतीकों का स्वरूप बदल दिया जाता है। असुरी शक्तियों को दैवी शक्तियों के रूप में दिखाया जाता है। राक्षसी आचरण को देव आचरण का आदर्श बताया जाता है। सच्चे धार्मिक-राजाओं और नेताओं की बदनामी की जाती है। और बड़ी चपलता से कथाएं गढ़कर देवराज इंद्र के व्यक्तित्व को असुरराज से बदल दिया जाता है। इस मास्टरस्ट्रोक से जनता की दृष्टि उलट जाती है, धर्म-अधर्म का सारा भेद मिट जाता है, और लोगों के आराध्य देव असुरों से बदल जाते हैं।

अंततः ऐसी व्यवस्था तैयार होती है कि भोला को महाब्रह्म या देवराज इंद्र पर श्रद्धा नहीं जागती। कैसे जागेगी, जब वे अनैतिक और बदचलन दिखे? या बेचारा अंधश्रद्धा में उनका नाम जपने पर भी नीच असुरलोक ही पहुँचे! नाम में क्या रखा है जब हृदय का समागम नीच धातु से हो?

कुछ दिनों पूर्व दिल्ली और हरियाणा में मुसलमान परिवारों पर हुए हमलों के दौरान, चंद सिख भाइयों ने उन्हें अपनी जान पर खेलकर बचाया। बीबीसी द्वारा पूछे जाने पर कि उन्होंने "ऐसा क्यों किया", तो जवाब मिला, "हमें सिर्फ़ ये पता था कि जान बचाना हमारा सबसे बड़ा कर्तव्य है। हम बस अपने धर्म का पालन कर रहे थे।[37]"

यह पढ़कर मेरी बड़ी बहन बोल पड़ी, "भला हो सिख लोगों का! असली हीरो हैं वे! कितनी प्रेरणा दी है! कितना पुण्यशाली कर्म किया है! लेकिन भन्ते, दूसरी ओर हमारे (बहुसंख्यक) भाईयों की दया आती है। हे भगवान! क्या हाल हो गया है उनका! बेचारे अभागे, कितना उलझा दिए गए हैं! धर्म-अधर्म का सारा भेद मिटा दिया गया। खिचड़ी हो गई! अब हाथ को हाथ नहीं सूझता! अब तो कोई आकर दोबारा सीधा-सीधा

---

[37] https://www.bbc.com/hindi/articles/cd1xj0l0kr1o

बताएँ कि पुण्य क्या होता है, पाप क्या होता है? वर्ना अन्त में नर्क जाने वाली भोली जनता की लम्बी बारात निकलेगी।”

एक प्रसंग ईसा मसीह ने बताया था — “एक भला सामरी”

> “एक बार की बात है, एक आदमी धार्मिक तीर्थयात्रा कर अपने गांव लौट रहा था। रास्ते में उसे लुटेरों ने लूट लिया और मार-पीट कर अधमरा छोड़ दिया।
>
> तब एक पुजारी वहाँ से गुजरा और उस आदमी को पड़ा देखा, लेकिन वह दूसरी ओर से निकल गया। फिर एक संन्यासी वहाँ से गुजरा और उस आदमी को पड़ा देखा, लेकिन वह भी दूसरी ओर से निकल गया।
>
> तब एक (अल्पसंख्यक) सामरी वहाँ से गुजरा और उसने उस आदमी को देखा, और उसे दया आई। उसने उस आदमी के घावों पर पट्टी बांधी, अपने गधे पर बैठाया, और एक धर्मशाला में ले गया। उसने आदमी की तब तक देखभाल की, जब तक कि वह ठीक नहीं हो गया, और फिर उसने धर्मशाला के मालिक को पैसे दिए और अपने रास्ते पर चल पड़ा।”
>
> — पवित्र बाईबल : लूक १०:२५–३७

ईसा मसीह कहते है कि “ईश्वर का असली बंदा वह सामरी था, न कि पुजारी या संन्यासी। उसने इंसानियत दिखाकर सच्चा धर्म निभाया।” उस समय बहुसंख्यक यहुदियों के मन में अल्पसंख्यक सामरियों के प्रति वैसी ही नफ़रत थी, जैसे आज दुनिया भर में अल्पसंख्यकों के प्रति फैली है। किंतु उस सामरी के दयालु कृत्य ने उस समय बहिष्कार और उत्पीड़न झेल रहें सामरियों का नाम सदा के लिए अमर कर दिया। वह सामरी कौन था, आज कोई नहीं जानता। किंतु आज भी जब पश्चिमी देशों में कोई अजनबी की मदद करता है, तो लोग तुरंत कह पड़ते हैं, “S/He's a good Samaritan!” “भला सामरी है!” हजारों वर्षों से यह कहानी मानवता को प्रेरित करती रही है कि हमें सभी के प्रति दयालु होना चाहिए, उनकी रक्षा करनी चाहिए। अपने

दुश्मनों की भी। बहिष्कार, उत्पीड़न और नरसंहार का खतरा झेल रहे अल्पसंख्यकों के प्रति हमें अपनी बुरी सोच, बुरा नज़रिया त्यागकर, मानव को मानव की तरह देखना चाहिए। इंसानियत के नाते हर जरूरतमंद की मदद करना हमारा कर्तव्य है, जिसके लिए हमें सदैव तैयार रहना चाहिए।

कुछ वर्षों पूर्व फासीवाद पर अनुसंधान करते मनोवैज्ञानिक जर्मनी पहुँचे। वहां वे ऐसे बूढ़े नागरिकों से मिले, जो उस समय नाज़ी समर्थक थे। उन्होंने स्वयं हिंसा तो नहीं की थी, किंतु राष्ट्रप्रेम के मारे बतौर नागरिक, उत्पीड़क सत्ताधारियों को मुफ़्त सेवाएँ दी थी। ऐसे अनेक साक्षात्कार में कह पड़े, "हे ईश्वर! ये हम क्या कर बैठें! ऐसा (यहुदियों का नरसंहार) हमने कैसे होने दिया? पता नही, उस समय सभी में क्या घुस गया था! तब हिटलर युगपुरुष लगता था, देवता का अवतार लगता था। उसकी सारी ही बातें सही लगती थी! आज सोचता हूँ तो यकीन नहीं आता! शायद वह एक सामूहिक पागलपन का दौर था!"

ऐसे ही उन्मादी युद्ध समाप्त हो जाने पश्चात उसमे शामिल अनेक फ़ौजी पश्चाताप से भर जाते हैं, और गहरे अवसाद में गिर जाते हैं। उनमें कई पागल हो जाते हैं, कोई गोलीबारी कर हत्याएं करते हैं, तो कई आत्महत्या कर बैठते हैं। ऐसा ही एक पराक्रमी फ़ौजी जिसे अनेक चक्रों से नवाज़ा गया था, वर्षों पश्चात आकर उसने एक भन्ते से कहा, "भन्ते! एक दिन (उस युद्ध में) थकान के मारे मैने संयम खोकर एक १३-१४ साल की बच्ची पर गोली चला दी थी। दशक बीत चुके हैं लेकिन उसकी चीख नहीं भुला पा रहा हूँ। आज भी आँखें बंद करता हूँ तो उसी की मासूम, मृत आँखें दिखती है।" उसने कुछ देर के लिए आँखें बंद की और तब अचानक फूट-फूटकर रो पड़ा, "भन्ते! अपनी सारी धनदौलत लुटा दूं! सब कुछ सौंप दूं! कोई मुझे उस लम्हें में दोबारा ले जाए, और मैं खुद को ट्रिगर दबाने से रोक दूं!"

अफ़सोस, ऐसा नहीं होता! बीता समय लौट नहीं आता! चलाया तीर वापस नहीं होता। हमें अपने कर्मों के साथ ही जीना पड़ता है, और परलोक के लिए तैयार होना पड़ता है — यही दर्दनाक सच्चाई है। इसलिए इलाज से बेहतर रोकथाम है। अर्थात्, बेहतर यही है कि अहित करने पूर्व रुक जाना, निरस्त्र हो जाना। ऐसे सामूहिक पागलपन और उन्माद के दौर में हमें पञ्चशील डूबने से बचाती है। मेधावी उसे लाइफ़-जैकेट की भांति कसकर पहन लेता है और किसी कीमत पर नहीं उतारता। इस तरह पररक्षा करते हुए वह आत्मबचाव करता है, और भविष्य के अनन्त दुःखों से बचता है।

छिप-छिप कर हिंसा या नफ़रत करने के बजाय, छिप-छिप कर करुणा या सद्भावना करना उचित है। कोई नफ़रती वीडियो देखते हुए आप चाहे जितना बुरा देख ले या सुन ले, किंतु याद रखें कि आप वहाँ मौजूद नहीं थे, और उन तस्वीरों के पीछे की सच्चाई आप स्वयं नहीं जानते। मात्र संदेह के आधार पर किसी को दण्डित करना सर्वथा अन्याय होगा। तब 'बेनिफिट ऑफ द डाउट' देकर छोड़ देना उचित होगा। वैसे भी पापियों को उनके पाप की सज़ा पश्चात मिलती ही हैं। इस लोक में कोई छूट भी जाए, परलोक में छूटना असंभव है। आप को जल्लाद बनने की ज़रूरत नहीं है।

और एक आख़िरी बात। आजकल बहुत से सज्जन स्वधर्म के अहंकार में परधर्म, उनके धर्मगुरुओं या समुदाय का अनादर या अपमान करने से परहेज नहीं करते। भले ही आप ही का धर्म सद्धर्म हो, और दूसरे का नितांत अधर्म, तब भी आपको थोड़ा सतर्क रहना चाहिए। भगवान चेताते हुए कहते हैं,

> "ब्राह्मण धम्मिक! बहुत समय पूर्व, सुनेत्र... मूगपक्खो... अरनेमि... कुद्दालक... हत्थीपाल... जोतीपाल नामक गुरु थे, अन्य धर्म समुदायों के संस्थापक, जो वीतरागी थे। उन गुरु के कई सैकड़ों श्रावक थे। वह अपने श्रावकों को ब्रह्मलोक के साथ संवास करने का धर्म सिखाते थे। जब वह ऐसा धर्म सिखा रहे थे, तो जिन्होंने उन पर विश्वास नहीं रखा, वे मरणोपरांत पतन होकर दुर्गति हो, यातनालोक नर्क में उपजे। किंतु जिन्होंने विश्वास रखा, पश्चात सद्गति हो स्वर्ग में उपजे।
>
> तो क्या लगता है, ब्राह्मण धम्मिक? यह छह गुरु, धर्म समुदायों के संस्थापक, जो काम वीतरागी थे, जिनके हजारों श्रावक थे, यदि कोई दूषित चित्त से उनका या उनके श्रावकसंघ का अनादर या अपमान करे, तो क्या उसका बहुत अपुण्य [पाप] इकट्ठा होगा?"
>
> "हाँ, भन्ते!"

"निश्चित ही, ब्राह्मण धम्मिक! यदि कोई दूषित चित्त से उन छह गुरुओं या उनके श्रावकसंघ का अनादर या अपमान करे, तो उसका बहुत अपुण्य इकट्ठा होगा।

सुनेत्र, मूगपक्ख, अरनेमि थे ब्राह्मण।
कुद्दालक एवं हत्थीपाल गुरु थे तरुण।
जोतीपाल गोविन्द, सात के राजपुरोहित।
— छह गुरु कीर्तिमान थे, वे अहिंसक अतीत।
निःदुर्गंधी, कामबन्धन त्यागी, करुणा-अधिमुक्त।
कामराग थे मिटा चुके, जाने वाले ब्रह्मलोक।
श्रावक उनके भी अनेक, कई सैकड़ों में।
निःदुर्गंधी, कामबन्धन त्यागी, करुणा-अधिमुक्त।
कामराग थे मिटा चुके, जाने वाले ब्रह्मलोक।
ऐसे बाहरी ऋषियों का, वीतरागी समाहित का,
द्वेषचित्त से संकल्प कर, जो उनका अपमान करे,
स्वयं के लिए अपार अपुण्य उत्पन्न भी वो करे।"

— अंगुत्तरनिकाय ६:५४ : धम्मिकसुत्त

जब समाज की नसों में नफ़रत का ज़हर इस क़दर फैल जाए, तो उसका अन्त कभी सुखद नहीं होता! ऐसे विस्फोटक माहौल में स्थिति किसी भी समय विकट हो सकती है। तब दुष्ट लोग रक्त के प्यासे बनेंगे, तथा भले लोग अपनी जान की आहुति देकर निरपराध लोगों का बचाव करेंगे। अच्छा होगा जो बीच में फंसे बहुसंख्यक सामान्यजन निर्णय लें कि उन्हें क्या करना हैं। शानदार पुण्य कमाने का ऐसा भव्य अवसर हमेशा नहीं मिलता है। कहते हैं कि सच्चे पुण्यशाली की सत्यक्रिया से गंगा भी विपरीत दिशा में बहने लगती है। अपनी अध्यात्मिक शक्ति पहचानें। भले ही दुनिया एक-ओर झुक चुकी हो, किंतु अब भी चंद भले लोगों के आधार पर बनी हुई है। आप दान, शील और भावना से हृदय खोलने की एक नई शुरुवात कर सकते है। इस दुनिया को शानदार पुण्य के धक्के देकर पुनः संतुलित करने का दायित्व पूरा कर सकते है। संतुलित हो तो अच्छा, वर्ना कोई बात नहीं — पुण्य मुबारक!

“कितना सुखद हम जीते हैं, बैरियों में न बैर किए।
शत्रुता से भरे मनुष्यों में, निर्बैर जो हम रहते हैं।
कितना सुखद हम जीते हैं, बेचैनों में न बेचैन हुए।
व्याकुलता से भरे मनुष्यों में, निर्व्याकुल जो हम रहते हैं।
कितना सुखद हम जीते हैं, उन्मादियों में न उन्माद किए।
उत्तेजना से भरे मनुष्यों में, निरुत्तेजित जो हम रहते हैं।”

— धम्मपद १९७ - १९९ : सुखवग्गो

**भवतु सब्ब मङ्गलं!**

— भिक्खु कश्यप

(दिसंबर २०२३)